सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

अमर क्रान्तिकारी

राम प्रसाद बिस्मिल

की

आत्मकथा

thearyasamaj.org

प्रकाशक

वैदिक प्रकाशन

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (रजि.)

15, हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001

Website : www.thearyasamaj.org

E-mail : aryasabha@yahoo.com

नवीन संस्करण : 2015 **मूल्य : 100/-**

शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा

क्रांतिकारी चेतना का रोमांचकारी दस्तावेज

भारत स्वतंत्रता आंदोलन का वह दूसरा प्रस्थान बिन्दु था जब उत्तर भारत के क्रांतिकारी संगठनकर्त्ताओं योगेशचन्द्र चटर्जी और शचीन्द्रनाथ सान्याल ने मिलकर एक नए अखिल भारतीय क्रांतिकारी दल की रूपरेखा तैयार की और उसका नाम रखा 'भारतीय प्रजातंत्र संघ'। इस दल ने अपनी नीतियों और आदर्शों का एक घोषणापत्र भी जारी किया जिसे 'पीला पर्चा' कहा गया। वह गांधी के असहयोग आंदोलन की असफलता के बाद का समय था जब क्रांतिकारियों ने घोषित किया था कि वे एक ऐसे समाज का निर्माण करने के लिए प्रतिबद्ध हैं जिसमें एक मनुष्य के द्वारा दूसरे मनुष्य का और एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण संभव नहीं होगा। स्पष्टतः उस समय के क्रांतिकारी संगठनों ने, स्वतंत्रता के अपने लक्ष्य के साथ ही प्रजातंत्र और शोषणमुक्त समाज की अपनी परिकल्पना को आकार देना शुरू कर दिया था।

इसी संगठन में क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मल एक नए नेता के रूप में सामने आए। उनके पास प्रसिद्ध मैनपुरी षड्यंत्र केस (1918-1919) का जीवंत अनुभव था जिसमें उन्हें लंबा और कठिन फरारी जीवन बिताना पड़ा। सरकार की ओर से घोषित आम माफी के बाद वे सार्वजनिक तौर पर प्रकट हुए और काकोरी काण्ड की योजना में लग गए। 9 अगस्त 1925 को लखनऊ और आलमनगर के मध्य काकोरी रेलवे स्टेशन के निकट दस नौजवानों के साथ ट्रेन रोककर सरकारी खजाने को हथियाने की उनकी योजना ब्रिटिश सरकार को सीधी चुनौती थी, जिसमें हुई धर-पकड़ में वे अपने अनेक क्रांतिकारी साथियों के साथ पुलिस की गिरफ्त में आ गए। 18 महीने तक लखनऊ में 'सरकार बनाम रामप्रसाद' नाम से चले मुकदमे को तब बहुत प्रसिद्धि मिली थी जिसमें उन्हें अपने तीन अन्य साथियों अश्फ़ाकउल्ला और रोशनसिंह के साथ 19 दिसम्बर 1927 को फांसी क्रमशः गोरखपुर,

फैजाबाद, इलाहाबाद और गोंडा की जेलों में फांसी पर चढ़ा दिया गया जबकि इस मामले में तीसरे साथी राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी को अकारण ही 17 दिसम्बर को गोंडा जेल में फांसी दे दी गई। अन्य क्रांतिकारियों को लंबी सजाएं मिलीं।

काकोरी की यह घटना भारतीय क्रांतिकारी संग्राम का एक ऐतिहासिक पड़ाव है। इस अर्थ में भी इसे अपने पूर्ववर्ती क्रांतिकारी युद्ध से सर्वथा पृथक करके देखा जा सकता है कि पहली बार भारतीय क्रांतिकारियों ने विभिन्न छोटे-छोटे क्रांतिकारी संगठनों और अपनी छापेमार लड़ाईयों से हटकर अखिल भारतीय स्तर पर एक बड़े दल को खड़ा करने की दिशा में मजबूती से अपने कदम बढ़ाए थे और विचार के स्तर पर देश में शोषणमुक्त जनतंत्र की स्थापना का सपना देखा था। 1921 के असयोग आंदोलन को स्वतंत्रता संग्राम में सर्वथा नए प्रयोग के नाते भारतीय क्रांतिकारियों ने उसे असीम धैर्य के साथ देखा ही नहीं था, बल्कि उस अवधि के लिए अपने संघर्ष को विराम भी दे दिया था। भविष्य के अनेक क्रांतिकारी यथा चन्द्रशेखर आजाद, रोशन सिंह और मन्मथनाथ गुप्त सरीखे नौजवान 'असहयोग आन्दोलन' के सिपाही बन कर क्रांतिकारी संग्राम से जुड़े और उन्होंने ऊंचाइयां हासिल कीं। लेकिन असहयोग की निराशजनक समाप्ति के बाद भारतीय राजनीति में जो एक खालीपन व्याप्त हो गया था, उसे अपने अभियान से भरने में काकोरी की इस घटना ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसने देश का ध्यान तब साम्प्रदायकिता से संग्राम की ओर मोड़ा तथा देश की आजादी के लिए नए सिरे से नौजवानों में बलिदान की भावना को भरने में योगदान दिया। काकोरी शहीदों का बलिदान देश की सर्वाधिक रोमांचकारी घटना बनी और इस संघर्ष में अश्फ़ाकउल्ला की उपस्थिति और सक्रियता ने उसे ऐसी मिलीजुली शहादत का दर्जा दे दिया जो पूर्व में दुर्लभ था तथा उसने भविष्य के क्रांतिकारी संग्राम के लिए नई इबारत रच दी। अर्थात् रामप्रसाद बिस्मिल और अश्फ़ाकउल्ला भिन्न धार्मिक आस्थाओं के होते हुए देश की आजादी के लिए एक मार्ग के राही बने। ऐसे में उनके मज़हबी आचार-विचार कहीं बाधक नहीं बने बल्कि यह सवाल ही बहुत दूर बना रहा कि कौन किस सम्प्रदाय का है और यदि स्वतंत्रता प्राप्ति के रास्ते में धर्म बाधक बनता है तो वे उसे भी एक ओर रखने में कोताही नहीं करते। बिस्मिल थे आर्यसमाजी और अशफ़ाकलउल्ला

मुसलमान। पर दोनों में गजब की दोस्ती। दोनों एक शहर के निवासी। बिस्मिल के पास क्रांतिकारी संघर्ष का अनुभव था पर अश्फ़ाक एकदम नए थे जब वे काकोरी के अभियान में भाग लेने के लिए आगे बढ़े। वे कोशिश करके क्रांतिकारी दल में सम्मिलित हुए थे। इसलिए कि उन दिनों उनके धर्म के किसी व्यक्ति की देश के क्रांतिकारी संघर्ष में हिस्सेदारी नहीं थी। ऐसे में वे बिस्मिल को बहुत भरोसे में लेकर उस संग्राम से जुड़ सके। वे अपने को साबित करना चाहते थे कि देशभक्ति के लिए बलिदान देने में वे किसी से पीछे नहीं हैं और अंततः उस पूरे अभियान में उन्होंने स्वयं को एक खरा क्रांतिकारी सिद्ध करते हुए अपने प्राणों की बलि दे दी। बिस्मिल को उन पर नाज़ था और स्वयं अशफाक भी उन्हें अपना नेतृत्वकर्त्ता और बड़ा भाई मानते थे।

बिस्मिल ने अपनी आत्मकथा गोरखपुर में फांसीघर में बैठकर लिखी थी। जहां कुछ भी लिपिबद्ध करने के लिए सर्वथा विपरीत परिस्थितियां थी। काल कोठरी की तंग और तनाव देने वाली तनहाई। साम्राज्यवाद की पुलिस का कड़ा पहरा और आंखों के सामने झूलता फांसी का क्रूर फंदा। ऐसे में कुछ भी कमलबंद करना एक निर्भीक, स्थिरचित्त और संतुलित मस्तिष्क का कारनामा ही हो सकता है जिसने गहराई से जीवन का अर्थ समझ लिया हो और जो अपने सम्पूर्ण जीवन ही नहीं बल्कि उस पूरे क्रांतिकारी अभियान को जिसमें उसने दीर्घ अवधि तक सघन हिस्सेदारी की, उसे एक आलोचनात्मक दृष्टि से दखने-परखने का माद्दा भी रखता हो। रजिस्टर के आकार के कागजों पर पेंसिल से छिपते-छिपाते अपने शब्दों और विचार-श्रृंखला को उकेरना गहरे जीवट का काम था। पर बिस्मिल इसमें सफल हुए और अपने लिखे को तीन खेपों में देशभक्त जेल वार्डरों के मार्फत उन्होंने जेल से बाहर गोरखपुर के दशरथ प्रसाद द्विवेदी के पास पहुंचवाया और इस तरह उस क्रांतिकारी की वह आत्मरचना गणेश शंकर विद्यार्थी के पास पहुंची। 19 दिसम्बर बिस्मिल की फांसी का दिन निर्धारित था यानी उस दिन सवेरे ही उन्हें शहादत के मार्ग पर चले जाना था और अपनी इस जीवनकथा को वे 17 दिसम्बर तक लिपिबद्ध करते रहे। सिर्फ अपने लिए नहीं, बल्कि उस नई पीढ़ी के लिए भी जिसे भविष्य के क्रांतिकारी संग्राम के सपने ही नहीं बुनने थे अपितु अपने को उस कण्टकीर्ण मार्ग पर चलने का अभ्यस्त भी बनाना था।

रामप्रसाद बिस्मिल की यह आत्मकथा भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का सर्वाधिक विचारपूर्ण दस्तावेज है। इस मायने में इसका महत्व और भी बढ़ जाता है कि इसमें 1921 के असहयोग आंदोलन से पहले उत्तर भारत के क्रांतिकारियों पर चलाए गए मैनपुरी षड्यंत्र केस की अनोखी अनुगूंजें हैं। इतिहास को यह बताने के लिए पर्याप्त है कि मैनपुरी का वह मामला उत्तर भारत का पहला ऐसा षड्यंत्र केस था जिस पर बंगाली क्रांतिकारियों को कोई प्रभाव नहीं था। इससे पहले चले बनारस षड्यंत्र केस में अधिकांश बंगाली क्रांतिकारी ही थे और वही प्रभावी थे। मैनपुरी के मामले को इसलिए भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि उसके नेता गेंदालाल दीक्षित बिस्मिल के क्रांतिकारी गुरु थे और यदि बिस्मल उनके त्याग और बलिदान पर कलम न चलाते तब हम उनके संघर्षमय जीवन के बारे में इतना नहीं जान पाते। दूसरे यह कि इस मामले में सारी कोशिशों के बाद भी कोई और बड़ा क्रांतिकारी नेता तब सरकार के हाथ नहीं आया और स्वयं गेंदालाल पुलिस की गिरफ्त से न केवल निकल भागे बल्कि वे एक मुखबिर रामनारायण को भी धमका कर जेल से बाहर लाने में कामयाब हो गए। इससे मुकदमा और कमजोर पड़ गया। यह सरकार की बहुत बड़ी विफलता थी। ऐसे में उसे बहुत विवश होकर आम माफी की घोषणा करनी पड़ी क्योंकि सरकार का काफी धन व्यय हो चुका था और प्रायः बड़े क्रांतिकारी पकड़ से बाहर बने हुए थे। बिस्मिल आम माफी के ऐलान के बाद ही गुप्त जीवन से बाहर आए। लेकिन वे चुप नहीं बैठे। वे दल के पुर्गठन में जी-जान से जुट गए। उन्हें योगेशचन्द्र चटर्जी जैसा क्षमतावान और भरोसेमंद क्रांतिकारी नेतृत्व मिला तथा शचीन्द्रनाथ सान्याल जैसे अनुभवी क्रांतिकारी का संग-साथ भी। बिस्मिल सर्वथा नए लोगों को भी दल में लाए जो विश्वसनीय साबित हुए। इनमें अशफाकउल्ला, मन्मथनाथ गुप्त और चन्द्रशेखर आजाद जैसे लोग थे।

फांसीघर में बैठकर बिस्मिल ने अपने जीवन और सम्पूर्ण क्रांतिकारी संघर्ष का बहुत निष्पक्षता से मूल्यांकन किया है। वे क्रांतिकारी संग्राम को जनआंदोलन का रूप देना चाहते थे। ऐसी उनकी आकांक्षा थी जो उनके अभियान के चलते पूरी नहीं हो पाई। वे जनता के निकट जाना चाहते थे। देखना होगा कि काकोरी के ऐक्शन से पूर्व धनी और देशद्रोही व्यक्तियों के

घरों में डकैतियां डालने के क्रांतिकारी अभियानों पर उन्होंने स्वयं ही प्रतिबंध लगा दिया था क्योंकि इनमें अकारण ही अनेक बार नर हत्याएं हो जाती थीं जो निजी तौर पर उनके लिए अत्यंत पीड़ादायक होता था। बिस्मिल जानते थे कि स्वतंत्रता के युद्ध को आगे बढ़ाने और उसे गति देने के लिए हथियार ही नहीं, बल्कि प्रचार और साहित्य एक जरूरी माध्यम है। कई बार तो यह उन्हें अपने संघर्ष की प्राथमिक कार्यवाही लगता था। जनचेतना के विकास के लिए इसकी आवश्यकता को उन्होंने अपनी आत्मरचना में बार-बार रेखांकित किया है। बिस्मल का यह आजमाया हुआ नुस्खा था। वे स्वयं कलम के धनी थे और उसका इस्तेमाल करना जानते थे। अपने जीवन काल में उन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की। आत्मकथा के अतिरिक्त उनकी जो भी रचनाएं लिखी और छपीं वे सब अत्यंत कठिनाई के दौर में उनकी साहसपूर्ण कार्यवाही थी। इनमें उनके क्रांतिकारी जीवन के घटनाक्रम और चिंतन के पक्ष को जानने की भी हमें सहूलियत हो सकती है।

बिस्मिल एक निरंतर जलने वाली मशाल थे। उनके क्रांतिकारी जीवन की छटा को देख-जानकर कोई भी उनके संघर्ष के प्रति नतमस्तक हो सकता है। वह सिर्फ उनके जीवन-युद्ध का ही लेखा-जोखा नहीं है बल्कि वहां मैनपुरी के जमाने से लेकर असहयोग और फिर काकोरी के रोमांचकारी घटनाक्रम की ऐसी तस्वीरें हैं जिनसे उस पूरे युग को जानने-समझने की दृष्टि को हासिल करके हम भविष्य के क्रांतिकारी संग्राम की नींव और काकोरी के समय के वैचारिक संघर्ष की रूपरेखा से हमारा आमना-सामना होता है। हम यह भी देख-जान पाते हैं कि किस तरह उन्होंने अशफाकउल्ला के रूप में एक मुसलमान युवक को अपने संग्राम से जोड़कर अपने क्रांतिकारी अभियान और विचार को कौमी एकता की अनोखी विरासत सौंपी जिस पर आने वाली पीढ़ियां हमेशा गर्व करती रहेंगी। क्या यह जान-समझ नहीं लिया जाना चाहिए कि बिस्मिल के समय में क्रांतिकारी दल के संविधान में जिस शोषणमुक्त प्रजातांत्रिक समाज निर्माण की बात कही गई थी, आगे चलकर काकोरी की शहादतों के बाद चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिंह के युग में दल के नाम के साथ 'समाजवादी' शब्द जोड़ने के बाद भी पार्टी के संविधान में कोई तब्दीली नहीं की गई।

अपनी आत्मकथा में बिस्मिल ने अशफाकउल्ला पर जो कुछ लिखा है वह बहुत कवितामय है। उन्हें अशफाक पर कलम चलाते हुए गर्व भी महसूस होता है और वे यह उल्लेख करना नहीं भूलते कि उन्होंने मुसलमानों में से एक नौजवान को निकालकर यह दिखा दिया कि इस कौम पर भरोसा किया जा सकता हैं अशफाकउल्ला का फांसी के फंदे तक अडिग बने रहना उन्हें बहुत आत्मतोश प्रदान करता है। बिस्मिल अपनी आत्मरचना में कतिपय उन मतभेदों का भी जिक्र करते हैं जो उत्तर भारतीय और बंगाली क्रांतिकारियों के मध्य विद्यमान बने रहे और जिनके चलते क्रांतिकारी संघर्ष की कोई बहुत अच्छी तस्वीर नहीं बनती। कहना न होगा कि बिस्मिल और अशफाकउल्ला की जिस क्रांतिकारी जोड़ी ने अपने समय में क्रांति के साथ ही विचार के जिस धरातल को निर्मित किया, वही भविष्य के क्रांतिकारी संघर्ष की आधारभूमि बना।

रामप्रसाद बिस्मिल की यह आत्मकथा फांसी के मुहाने पर बैठे एक ऐसे क्रांतिकारी का हलफनामा है जो क्रांतिकारी संग्राम को उस हद तक कामयाब देखना चाहता है जब तक कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश न हो जाए। भले अपने धार्मिक विश्वासों के चलते वे पुनर्जन्म लेकर देश की मुक्ति के उस सपने को उस हद तक पूरा करना चाहते हैं जहां वे दलितों का उद्धार कर सकें। बिस्मिल का यह जिंदगीनामा एक आर्यसमाजी का निरंतर उग्र बनते क्रांतिकारी के रूप में रूपातंरण का अनोखा उदाहरण है जो चीजों और विचारों का कठोरता से अतिक्रमण करता है। बनारस षड्यंत्र केस और लाहौर षड्यंत्र के मामले के मध्य के क्रांतिकारी संग्राम के दौर से उसके अविचल अभियान और विचार संपदा के साथ पूर्णता में जानने के लिए यह विशिष्ट ऐतिहासिक कृति भी है। यह सच है कि अपनी आत्मरचना में बिस्मिल विभिन्न क्रांतिकारी घटनाओं और व्यक्तियों का निर्भीकता से उल्लेख नहीं कर सके हैं। इसका सीधा-सा कारण यही है कि जो परिस्थितियों क्रांतिकारी आंदोलन के सम्मुख उस समय उपस्थित थीं, उन पर बिस्मिल के खुलासे से विपरीत प्रभाव पड़ने की संभावना थी। बावजूद इसके इस पुस्तक का साहित्यिक महत्व भी निर्विवाद है।

यह हिंदी की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथाओं में से एक है जिसे पढ़े जाने का

अर्थ क्रांतिकारी संघर्ष की चेतना से परिचित होने के साथ ही उन शहीदों की स्वतंत्रता और समाजवादी समाज के निर्माण की अधूरी लड़ाई को आकार देने की मुहिम के लिए अपने को तैयार करना है।

-सुधीर विद्यार्थी
6, पवन विहार, फेज-5 (विस्तार)
पो. रूहेलखंड विश्वविद्यालय
बरेली-243006
मो-9760875491, 8439077677

thearyasamaj.org

अनुक्रम

1. क्रांति दौर (कलकत्ता) 11
2. आत्मकथा का इतिहास 15
3. कलम और पिस्तौल का पुरोधा 'बिस्मिल' 19
4. 'बिस्मिल' की तड़प 23
5. निज जीवन की एक छटाः आत्मचरित्र 26
6. स्वदेश-प्रेम 52
7. स्वतंत्र जीवन 66
8. वृहद् संगठन 75
9. मेरी डायरी का एक पृष्ठः शिव वर्मा 124
10. मेरे भाई बिस्मिल : शास्त्री देवी 127
11. बिस्मिल की गजलें और कविताएं 138

thearyasamaj.org

अश्फ़ाकुल्ला ख़ान

(बिस्मिल के साथ आखरी रात)

''जाऊंगा खाली हाथ मगर ये दर्द साथ ही जायेगा,
जाने किस दिन हिन्दोस्तान आज़ाद वतन कहलायेगा?''
बिस्मिल हिन्दू हैं, कहते हैं ''फिर आऊंगा, फिर आऊंगा''
फिर आकर के ऐ भारत मां तुझको आज़ाद कराऊंगा''
जी करता है मैं भी कह दूं पर मजहब से बंध जाता हूं,
हां खुदा अगर मिल गया कहीं, अपनी झोली फैला दूंगा,
और जन्नत के बदले उससे, एक पुर्नजन्म ही मांगूंगा।''

क्रांति दौर
(कलकत्ता)

सन् 1757 में प्लासी के युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद ही अंग्रेजों के पांव भारत में सही रूप से जमने प्रारंभ हुए। यूं 31 दिसम्बर सन् 1600 को ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथे ने 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' को भारत में व्यापार करने की अनुमति दे दी थी और तब से वे भारत में व्यापार कर भी रहे थे। वह समय भारत के राजनैतिक उथल-पुथल का था। एक राजा दूसरे राजा को नीचा दिखा कर उसका राज्य हड़पने में लगा हुआ था। या परिवार के ही सदस्य स्वयं अधिपत्य स्थापित करके राज हड़पना चाहते थे। उसी परिपेक्ष्य में ब्रिटिश नायक क्लाइव ने, बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के विरुद्ध युद्ध किया जिसमें अंग्रेजों की सहायता सिराजुद्दौला के रिश्तेदार मीरज़फर ने की। प्लासी के मैदान में दोनों ओर की सेनाएं लगभग आठ घण्टे तक युद्ध करती रहीं। इस युद्ध में दोनों के केवल 23 सैनिक ही मारे गये।

सैनिकों के मरते ही सिराजुदौला मैदान छोड़ कर भाग गया, क्योंकि उसके अत्यंत करीबी रिश्तेदार मीरज़फर ने अंग्रेजों के कहने पर तोपों में रेत भरवा दी। तोपें चली नहीं अतः इस लड़ाई में सारे बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर अंग्रेजों का अधिपत्य हो गया।

1857 में देश ने फिर करवट ली। आजादी की प्रथम चिंगारी फूटी परंतु यह भी आपसी फूट और स्वार्थ के कारण शांत हो गयी।

स्वतंत्रता प्रेमी राष्ट्र पर जान न्यौछावर करते रहे। छुट-पुट क्रांति की घटनाएं हुई जिन्हें अंग्रेजों ने दृढ़ता से दबा गयी।

बीसवीं सदी के प्रारंभ में फिर क्रांतिकारी जुटने लगे। बंगाल फिर जाग उठा। राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए खुदीराम बोस ने 1908 में फांसी का फंदा चूमा।

राष्ट्र के विभिन्न भागों से देश की स्वतंत्रता के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले जुझारू क्रांतिकारी सक्रिय होने लगे। वे सशस्त्र क्रांति के माध्यम से देश को स्वतंत्र कराने का प्रयास करने लगे। अंग्रेज सरकार ने उन्हें आतंकी कहकर सम्बोधित किया।

सन् 1915 में महात्मा गांधी के भारत लौटने पर कांग्रेस में राजैनतिक परिवर्तन हुआ। गांधीजी अहिंसा में विश्वास रखते थे। उन्होंने सन् 1920 में उग्रवादी विचार धारा के युवकों से अपील की कि वे सालभर तक हिंसा त्याग दें और एक साल में ही देश आजाद हो जाएगा। गांधी जी कांग्रेस के अगुवा थे, प्रथम विश्व युद्ध के बाद, गांधी जी की यह सोच व्यर्थ गई। अंग्रेज सरकार भारतीयों के प्रति अधिक कठोर हो गई उसने 'रोल्ट एक्ट' पास किया जिसके अन्तर्गत किसी की भी बिना वारंट, बिना कारण बताये गिरफ्तारी हो सकती थी, उसमें जमानत भी नहीं हो सकती थी।

उत्तरी भारत में क्रांतिकारी गांधीजी के असहयोग आन्दोलन के विफल होने के बाद पुनः एकत्रित होने लगे। वे भारतीय जन-मानस के बीच में अपनी वीरता के कारण अत्यंत लोकप्रिय हो गये और आज तक लोकप्रिय हैं। क्रांतिकारी नौजवान थे और उनमें 'राष्ट्रवाद' कूट-कूट कर भरा था और राष्ट्रवाद ही उन्हें अपने प्राणों का बलिदान देश पर करने के लिए प्रेरित करता था। गांधी उनके कठोर आलोचक थे। उनका मत था कि 'क्रांतिकारियों की विचारधारा किसी चिन्तन का दर्शन नहीं है।' गांधी के शब्दों में क्रांतिकारी 'विवेकहीन' देशभक्त थे।

क्रांतिकारियों के सभी प्रयास देश को आजाद कराने के लिए थे। लेकिन उनकी गतिविधियां गोपनीय होने के कारण देश की जनता को उनके कार्यकलापों और विचारधारा की सीधी जानकारी नहीं मिल रही थी।

पैम्फम्फलेटों, पोस्टरों, वक्तव्यों के माध्यम से क्रांतिकारियों ने अपने विचारों का प्रचार-प्रसार अपने सीमित साधनों द्वारा किया, लेकिन वह बहुत अधिक प्रचारित एवं प्रसारित नहीं हो सका।

वास्तव में 1883 में महाराष्ट्रीय क्रांतिकारी वासुदेव बलवन्त फड़के से ही क्रांतिकारी गतिविधियां प्रारंभ हो गयी थी, जिन्हें अंग्रेजों ने फांसी की सजा दी थी।

सन् 1921 में सशक्त क्रांतिकारी आन्दोलन के प्रार्दुभाव का कारण वे क्रांतिकारी आन्दोलन थे जो पहले हो चुके थे, जैसे प्रथम विश्व युद्ध के दौरान रासबिहारी बोस और शचीन्द्रनाथ सान्याल द्वारा चलाया गया आन्दोलन लार्ड हार्डिंग पर चांदनी चौक दिल्ली में फेंके गये बम का मामला, गदर आन्दोलन, मैनपुरी षड्यन्त्र और लाहौर का प्रथम षड्यन्त्र केस

आदि-आदि, जिनके पीछे बंगाल, पंजाब, महाराष्ट्र और यूरोप के क्रांतिकारी आन्दोलनों की पृष्टभूमि भी थी।

नये क्रांतिकारी आन्दोलन के लगभग सभी सदस्यों ने सन् 1920 के गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया था। असहयोग आन्दोलन में भाग लने वाले सुप्रसिद्ध सदस्य योगेशचन्द्र चटर्जी, चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह, सुखदेव, जतिनदास, भगवतीचरण वोहरा, यशपाल, डॉ. गया प्रसाद, शिव वर्मा और जयदेव कपूर आदि अनेकों युवा क्रांतिकारी थे।

इन सब क्रांतिकारियों के साथ अनेकों युवाओं ने, गांधीजी के आह्वान पर अपने स्कूल, कॉलिज यहां तक कि अपने परिवार को भी छोड़ कर, असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। वकीलों ने, अपनी प्रेक्टिस छोड़ दी, लोगों ने अपनी सरकारी नौकरी तक छोड़ दी।

परन्तु जब गांधी जी ने यकायक असहयोग वापिस ले किया तो देश के नवयुवक स्तब्ध रह गये, वे अपने को कांग्रेस के मुखिया गांधी जी द्वारा ठगा हुआ महसूस करने लगे।

जिस प्रकार गांधी जी ने आन्दोलन को वापस लिया उससे पूरे देश में असन्तोष फैल गया। यहां तक कि पं. मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चितरंजनदास ने भी गांधी जी की आलोचना की।

युवा क्रांतिकारियों को गांधी जी के नेतृत्व में देश की स्वतंत्रता के लिए अपनायी गई रणनीति और उसको प्रेरित करने वाली गांधीवादी राजनीतिक विचारधारा दोषपूर्ण एवं पाखंडी दिखाई देने लगी।

गांधीवाद को अस्वीकार करने के बाद वे दूसरे विकल्पों की तलाश में लग गये। इसी तलाश ने उन्हें पुनः सशस्त्र क्रांति के मार्ग पर धकेल दिया, धीरे-धीरे क्रांतिकारी समूह और क्रांतिकारी विचारधारा के लोग एकजुट होने लगे।

सन् 1924 में समस्त भारत के पुराने क्रांतिकारी एकजुट हो गये। उनमें प्रमुख थे श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल, श्री योगेशचन्द्र चटर्जी और रामप्रसाद बिस्मिल। इन तीनों ने मिलकर 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' की स्थापना की।

'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' से युवा क्रांतिकारियों को प्रेरणा मिली, और वे इस संस्थान से जुड़ने लगे। जिनमें प्रमुख थे भगतसिंह, शिव

वर्मा, सुखदेव और चन्द्रशेखर आजाद आदि।

'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' के तीन जन्म दाताओं में एक रामप्रसाद 'बिस्मिल' भी थे। जिनकी आत्मकथा अगले पृष्ठों में आपके सम्मुख है:-

thearyasamaj.org

आत्मकथा का इतिहास

9 अगस्त सन् 1925 की शाम के धुंधलके में रामप्रसाद 'बिस्मिल' अश्फ़ाक उल्ला खां, राजेन्द्र लाहिड़ी, चन्द्रशेखर आजाद सहित दस क्रांतिकारियों ने हरदोई लखनऊ लाइन पर काकोरी रेलवे स्टेशन के निकट एक पैसेन्जर ट्रेन को रोक कर, उसमें ले जाया जा रहा रेलवे का सरकारी खजाना लूट लिया।

खजाना रामप्रसाद 'बिस्मिल' के नेतृत्व में लूटा गया। खोजबीन के बाद 26 सितम्बर, 1925 को गिरफ्तारियां प्रारंभ हुई और चन्द्रशेखर आजाद व मुरारी शर्मा को छोड़कर सभी क्रांतिकारी आगे-पीछे गिरफ्तार कर लिए गये सिर्फ आज़ाद ही फरार रहे।

लखनऊ में इन क्रांतिकारियों पर मुकदमा चला जो भारत में आजादी की सशस्त्र लड़ाई में 'काकोरी षडयंत्र केस' के नाम से सुप्रसिद्ध है।

आरोपियों के विरुद्ध आरोप सिद्ध करने के लिए अंग्रेजी सरकार की ओर से जगत नारायण मुल्ला और उनके बेटे आनन्द नारायण मुल्ला व हरिशचन्द्र गुप्त को वकील नियुक्त किया गया।

क्रांतिकारियों की ओर से (बचाव पक्ष) श्री गोविन्द वल्लभ पंत (अन्तरिम सरकार के संयुक्त प्रांत के प्रथम मुख्य मंत्री तथा स्वाधीन भारत के प्रथम गृह मंत्री) श्री चन्द्रभानु गुप्त (पूर्व मुख्य मंत्री उ.प्र.) श्री अजीत प्रसाद जैन (स्वाधीन भारत के खाद्य मंत्री) श्री मोहनलाल सक्सेना तथा कलकत्ता से वैरिस्टर बी.के. चौधरी आदि वकीलों ने मुकदमा लड़ा।

4 जनवरी 1926 को मुकद्मा प्रारंभ हुआ इस मुकद्में के लिए एक स्पेशल मजिस्ट्रेट मिस्टर अइनुद्दीन साहब को नियुक्त किया गया। बाद में यह मुकदमा अगली अदालत सेशन जज हेमिल्टन के यहां चला। क्रांतिकारियों पर भारतीय दफा 120 की जगह 121 'ए' लगाई गई। (सरकार के खिलाफ लड़ाई छेड़ने की) तैयारी 120 'ब' (राजनैतिक साजिश) और 396 (डकैती में कत्ल) की दफाएं लगाई गईं।

चूंकि मुकद्मा शुरू होने से पहले ही सरकार ने, क्रान्ति के इन दीवानों की सजायें मुकर्रर कर ली थीं, अतः स्पेशल मजिस्ट्रेट और स्पेशल जज हेमिल्टन ने 'प्रोसीडिंग्स' केवल दिखावे के तौर पर की। सारे देश की

जनता की भावनाओं पर कुठाराघात करते हुए, 6 अप्रैल, 1927 को अपना फैसला सुना दिया।

रामप्रसाद बिस्मिल, अश्फ़ाक उल्ला खां, रोशन सिंह तथा राजेन्द्र लाहिड़ी को सजाए-मौत दी गई।

कमाल तो यह है कि सरकारी वकील जगत नारायण मुल्ला ने, उस रोशन सिंह को भी फांसी की सजा दिलवा दी जिसने न तो 'काकोरी केस' में भाग लिया था न उसके विरुद्ध हत्या का आरोप था।

कुछ क्रान्तिकारियों को 3 वर्ष से लेकर 10 वर्ष की कैद की सजा मिली, चार क्रान्तिकारियों को आजन्म कारावास का दण्ड मिला।

उच्च न्यायालयों में अपील तथा दयायाचिका के बावजूद चारों क्रांतिकारियों को मौत की सजा बरकरार रखते हुए 19 दिसम्बर 1927 को फांसी की सजा का आदेश दिया गया।

दिसम्बर 1927, के प्रथम सप्ताह में रामप्रसाद बिस्मिल ने किसी तरह जेल से बाहर यह सन्देशा भेजा कि मुझे अपनी आत्मकथा लिखनी है, अतः किसी साथी को गोरखपुर भेजा जाये जो मुझसे जेल में भेंट करके मेरे लिए एक पुस्तक और लिखने लायक सामग्री, मेरे पास पहुंचा सके।

जिस क्रांतिकारी साथी को इस काम के लिए उपयुक्त और सक्षम समझा गया, वे थे श्री मुनीश्वर अवस्थी उन्हें कानपुर से गोरखपुर भेजा गया ताकि वह पं. रामप्रसाद बिस्मिल से जेल में भेंट करके उन्हें लेखन सामग्री दे सकें।

फलतः श्री मुनीश्वर अवस्थी गोरखपुर आये तो जीवन यापन के लिए 'स्वदेश' पत्र में सह सम्पादक का दायित्व सम्भाला। पत्र के सम्पादक थे सुप्रसिद्ध नेता श्री दशरथ प्रसाद द्विवेदी।

उन्हें पत्रकारिता का अच्छा अनुभव था वे 'स्वदेश' पत्र में सह सम्पादक से पहले, एक संस्कृत पत्र के सह सम्पाद कभी रह चुके थे।

कौन थे वे मुनीश्वर अवस्थी? ये वे क्रांतिकारी थे जो देश की स्वतन्त्रता के नींव के पत्थर थे, उनका नाम क्रांतिकारी इतिहास में छूट गया है। वे उत्तर प्रदेश के ही एक नगर बिल्लहौर के निवासी थे, और चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह के दल में शुरू से ही सक्रिय रहते हुए काशी में संस्कृत पढ़ रहे 'शिवराम हरि राजगुरु' जिसे भगतसिंह के साथ फांसी की

सजा हुई थी को कानपुर लाकर पार्टी से जोड़ा था। श्री मुनीश्वर अवस्थी संस्कृत, हिन्दी, बंगला व अंग्रेजी भाषा के विद्वान थे।

रामप्रसाद 'बिस्मिल' से अवस्थीजी जेल में एक पारिवारिक सम्बन्धी होने का परिचय देकर समय-समय पर मिलते रहे और बिस्मिल द्वारा लिखित 'आत्म कथा' की सामग्री 'स्वदेश' के मुख्य सम्पादक श्री दशरथ प्रसाद द्विवेदी तक पहुंचाते रहे। आत्मकथा रजिस्टर के आकार के कागजों में पेन्सिल से लिखी हुई तीन भागों में बाहर आई रामप्रसाद बिस्मिल ने, अपनी आत्मकथा 'निज जीवन की छटा' (एकादश वर्षीय क्रांतिकारी जीवन) के नाम से लिखी थी। इस पुस्तक का अन्तिम भाग 'अंतिम समय की बातें' शीर्षक से 16 दिसम्बर, 1927 को लिखकर मुनीश्वर अवस्थीजी के हाथों बाहर भिजवाया।

आत्मकथा' की समाप्ति के तीन दिन पश्चात् 19 दिसम्बर 1927 को गोरखपुर जेल में प्रातः साढ़े छह बजे उन्हें फांसी दे दी गई।

कुछ विद्वानों ने लिखा है 'स्वदेश' पत्र के सम्पादक श्री दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने बिस्मिल की 'आत्मकथा' साप्ताहिक 'प्रताप' (कानपुर) के सम्पादक श्री गणेश शंकर विद्यार्थी को सौंपी थी परंतु शोधपूर्ण खोज प्रमाणित करती है कि 'आत्मकथा' की मूल पाण्डुलिपि 'स्वदेश' पत्र के सह-सम्पादक श्री मुनीश्वर अवस्थी जी ने वह मूल आत्मकथा कानपुर में गणेश शंकर विद्यार्थी को सौंपी थी क्योंकि श्री मुनीश्वर अवस्थीजी को इसी कार्य के लिए क्रांतिकारी दल ने कानपुर से गोरखपुर भेजा था। श्री गणेश शंकर 'विद्यार्थी' के जीवन काल में इस पूरी आत्मकथा का प्रकाशन नहीं हो पाया था। परंतु सन् 1939 के मार्च के महीने में प्रथम बार 'प्रताप' प्रेस कानपुर से पूरी आत्मकथा प्रकाशित हुई और प्रकाशित होते ही तत्कालीन सरकार द्वारा जब्त कर ली गई, इससे पहले गणेश शंकर 'विद्यार्थी' ने अपने जीवन काल में 'काकोरी के शहीद' नाम की पुस्तक में आत्मकथा के कुछ अंश प्रकाशित किये थे। इस पुस्तक को भी तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया था और इस पर रोक लगा दी थी।

'आत्मकथा' के बारे में रामप्रसाद बिस्मिल के ही शब्द-

''इस कोठरी में यह सुयोग्य प्राप्त हो गया कि अपनी कुछ अन्तिम बात लिखकर देशवासियों को अपर्ण कर दूं। सम्भव है कि मेरे जीवन के अध्ययन

से किसी आत्मा का भला हो जाये, बड़ी कठिनता से यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ।''

'बिस्मिल' ने आत्म चरित्र का प्रारंभ इन पंक्तियों से किया-

''क्या ही लज्ज़त है कि रग-रग से आती है यह सदा।
दम न ले तलवार जब तक जान 'बिस्मिल' में रहे।।''

और अन्त इन शब्दों में किया है-

'मरते 'बिस्मिल' 'रोशन 'लहरी' अश्फ़ाक अत्याचार से होंगे पैदा सैकड़ों इनकी रुधिर की धार से''

'आज 16 दिसम्बर 1927 ई को निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूं जबकि 19 दिसम्बर, 1927 ई. सोमवार (पौष कृष्ण 11 सम्वत् 1984 वि.) को साढ़े छः बजे प्रातः काल इस शरीर को फांसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी है। अतएव नियत समय पर इहलीला संवरण करनी होगी।''

19 दिसम्बर, 1927 को गोरखपुर जेल में प्रातः साढ़े छः बजे, बिस्मिल फांसी के तख्ते की ओर वन्दे मातरम और भारत माता की जय का उद्घोष करते हुए बढ़े।

फांसी के तख्ते पर बिस्मिल ने गुन गुनाया-

''मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूं, न मेरी आरजू रहे।
जब तक कि तन में जान, रगों में लहू रहे
तेरा ही जिक्र या तेरी जुस्तजु रहे।''

तत्पश्चात् उन्होंने कहा-

"I Wish the down fall of the British Empire"

(मैं ब्रिटिश साम्राज्य का विनाश चाहता हूं)

रामप्रसाद बिस्मिल का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल 11 सवंत, 1954 तदनुसार 11 जून, 1897 को शाहजहांपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ था तथा उन्होंने राष्ट्र पर अपने जीवन का बलिदान गोरखपुर जेल में 19 दिसम्बर, 1927 को दिया। इस प्रकार केवल 30 वर्ष 6 माह और 8 दिन में स्वतंत्रता की मशाल को प्रज्ज्वलित करके वह महान क्रांतिकारी राष्ट्र के इतिहास में अपना अमिट स्थान छोड़ गया।

कलम और पिस्तौल का पुरोधा 'बिस्मिल'

रामप्रसाद 'बिस्मिल' बचपन से ही विद्या व्यसनी थे तथा छुटपन में ही कविताएं, शायरी और राष्ट्रीय विचारधारा के लेखन करने लगे थे।

शाहजहांपुर में वह आर्य समाज की विचारधारा से जुड़ गये थे, उस समय शाहजहांपुर आर्य समाज के मंदिर में स्वामी सोमदेवजी आर्य विद्वान थे। स्वामीजी से बिस्मिल की प्रगाढ़ता बढ़ी और जब भी वे कोई नई रचना लिखते स्वामीजी को अवश्य सुनाते। स्वामीजी बिस्मिल का उत्साह वर्धन करते।

बिस्मिल घण्टों मंदिर में बैठकर स्वामीजी से देश की दुर्दशा पर विचार-विमर्श करते। स्वामीजी हिन्दी के अतिरिक्त उर्दू और फारसी के भी प्रकांड विद्वान थे। उनके सहचर्य में बिस्मिल ने भी हिन्दी फारसी और उर्दू में पारंगता प्राप्त की।

प्रथम लाहौर-षड्यंत्र में भाई परमानंदजी की खबर बिस्मिल ने अखबार में पढ़ी तो अत्यंत उत्तेजित हो गये, क्योंकि स्वामीजी भाई परमांनदजी में अत्यन्त श्रद्धा रखते थे। ऐसे में, उन्होंने हिन्दी में एक लम्बी कविता लिखी 'मेरा जन्म'।

बिस्मिल ने, वह कविता स्वामी सोमदेवजी को पढ़ने को दी। सोमदेव कविता को पढ़ कर चौंक गये क्योंकि कविता का भाव था। ''इन दुष्ट अंग्रेजों का वध करने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है और मैं इस अंग्रेजी शासन का विनाश करके ही शांत हूंगा।'' रामप्रसाद बिस्मिल राष्ट्र प्रेम की कविताएं और गीत लिखते व स्वामी सोमदेवजी को पढ़ने के लिए देते।

स्वामी सोमदेव के एक मित्र 'श्री रामचन्द्र भारद्वाज पेशावरी' थे जो अमेरिका में 'गदर पार्टी' के 'अखबार' 'अखबार' 'गदर' के सम्पादक थे। सोमदेव जी 'बिस्मिल' की रचनाएं रामचन्द्र भारद्वाज 'पेशावरी' के पास अमेरिका में 'गदर' अखबार में छपने के लिए भेज देते थे।

रामचन्द्र भारद्वाज 'पेशावरी' उन रचनाओं को गदर अखबार में 'अज्ञात' और 'राम' उपनाम से प्रकाशित करते थे। बाद में 'गदर की गूंज'

पुस्तक में भी रामचन्द्र पेशावरी ने इन कविताओं को सम्मलित किया।

उन दिनों संयुक्त प्रान्त (उ.प्र.) में पंडित गेंदालाल दीक्षित 'क्रांतिकारी' गुरु थे। रामप्रसाद बिस्मिल उनके सम्पर्क में आये। उनके क्रांतिकारी संगठन का नाम 'शिवाजी समिति' था।

दीक्षितजी स्कूल में अध्यापन कार्य के साथ-साथ देश की स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र क्रांति के कार्य में भी सक्रिय थे। एक दिन स्कूल देर से पहुंचे तो नौकरी ही छूट गई। अब वे पूर्णरूपेण क्रांतिकारी संगठन को मजबूत करने लगे।

संगठन के लिए हथियारों की आवश्यकता थी। बिस्मिल ने सुझाव दिया कि वह एक पुस्तक लिखेंगे 'अमेरिका की स्वतंत्रता का इतिहास' और पुस्तक के बेचने से जो धन प्राप्त हो उससे हथियार खरीदे जाये।

पुस्तक के लेखन में स्वामी सोमदेव जी ने भी पूरी सहायता की। पुस्तक के प्रकाशन के लिए रामप्रसाद बिस्मिल ने अपनी माता मूलमती से 400 रुपये लिये। पुस्तक का प्रकाशन लखनऊ से हुआ और प्रकाशक का नाम 'सोमदेव सिद्ध गोपाल शुक्ल' दिया। रामप्रसाद बिस्मिल और स्वामी सोमदेवजी की सोच थी कि अंग्रेजी सरकार लेखक और प्रकाशक का पता न लगा सके।

किताब की चर्चा चारों ओर होने लगी, सरकार ने पुस्तक को जब्त कर लिया कुछ पुस्तकें बिस्मिल ने एक सूखे कुएं में छिपा दीं। इसी कुएं में 'शिवाजी समिति' के क्रांतिकारी सदस्यों के हथियार भी छिपाये जाते थे।

एक दुर्भाग्य पूर्ण घटना के बाद दीक्षितजी को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया तथा बिस्मिल घटना स्थल से भागकर एक नदी में कूद गये।

शाहजहांपुर आकर बिस्मिल ने 'मातृवेदी' नामक एक और गुप्त क्रांतिकारी संस्था बना ली और वह कुछ दिन अपनी बहन की ससुराल कोसमां में नौकर बन कर रहे तथा कुछ दिन दादाजी के गांव बरबाई में जाकर खेती की, बाद में आभास हुआ कि सरकार उन्हें गिरफ्तार कर सकती है तो नेपाल चले गये।

इस दौरान बिस्मिल ने दो-तीन पुस्तकें लिखीं। कुछ समय बाद वह पिनाहट (आगरा) आ गये और यहीं पर उन्होंने 'सुशील माला' नाम का प्रकाशन संस्थान प्रारंभ किया।

' सुशीला माला' प्रकाशन से पहली पुस्तक 'वोल्शेविकों की करतूत' छपी यह रूस के क्रांतिकारियों के जीवन पर बिस्मिल का लिखा उपन्यास था।

फिर ''कैथेराइन' नामक पुस्तक लिखी। यह भी रूस की आजादी से सम्बन्धित थी।

एक अन्य पुस्तक 'मन की लहर' राष्ट्रीय गीतों का संकलन है। इस पुस्तक के प्रकाशन की आर्थिक सहायता शाहजहांपुर की तहसील तिलहर में बाबू रघुनाथ सहाय एडवोकेट ने दी थी अतः बिस्मिल ने अपनी यह पुस्तक उन्हें ही समर्पित की थी।

रामप्रसाद 'बिस्मिल' द्वारा लिखित पुस्तकें क्रमानुसार इस प्रकार हैं।

1. मैनपुरी षड्यंत्र - 22 जनवरी, 1919 को बिस्मिल के साथ प्रयाग में एक ऐसी अप्रत्याशित घटना हुई जिसमें उन्हें आभास हुआ कि साथियों ने विश्वासघात किया है। इसी घटनाचक्र को मध्य में रखकर उन्होंने यह पहली पुस्तक कोसमा (जिला मैनपुरी) में लिखी थी, कुछ लोगों के मतानुसार बिस्मिल ने यह पुस्तक आर्य भास्तकर प्रेस, आगरा से उस समय प्रकाशित कराई थी जब वह पिनाइट (आगरा) में रह रहे थे।

2. अमेरिका का स्वतंत्रता का इतिहास- इस पुस्तक के लेखन में स्वामी सोमदेवजी का भी सहयोग बिस्मिल को प्राप्त हुआ था।

3. वोल्शेविकों की करतूत- (रूस के वोल्शेविक क्रांति पर आधारित उपन्यास) इसे बिस्मिल ने प्रो. राम के छदम् नाम से प्रकाशित कराया था।

4. मन की लहर- यह राष्ट्रीय कविताओं का संकलन है।

5. कैथेराइन या स्वाधीनता की देवी- बिस्मिल की इस पुस्तक को राष्ट्रीय ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, कलकत्ता से सन् 1922 में उमादत्त शर्मा ने प्रकाशित किया था।

6. स्वदेशी रंग- कभी यह पुस्तक आर्य समाज भवन शाहजहांपुर में थी।

7. क्रांतिकारी जीवन- बिस्मिल की इस पुस्तक के कुछ ही अंश उपलबध हैं।

8. यौगिक साधन- बिस्मिल ने अरविन्द घोष की बंगला पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद किया था।

9. चीन षड्यंत्र- (चीन की राजक्रान्ति)।

10. क्रांति गीतान्जलि- इसमें देशप्रेम के गीत और गजलें हैं।

11. निज जीवन की एक छटा- आत्म कथा जो इस समय आप के हाथ में है।

thearyasamaj.org

'बिस्मिल' की तड़प

हैफ! जिसपे कि हम तैयार थे मर जाने को
यक-ब-यक हमसे छुड़ाया उसी काशाने को
आस्मां! क्या यही बाक़ी था सितम ढाने को
लाके गुर्बत में जो रक्खा हमें तड़पाने को
क्या कोई और बहाना न था तरसाने को?

फिर न गुलशन में हमें लायगा सैय्याद कभी
क्यों सुनेगा तू हमारी कोई फरियाद कभी
याद आएगा किसे यह दिले-नाशाद कभी
हम भी इस बाग़ में थे क़ैद से आजाद कभी
अब तो काहे को मिलेगी ये हवा खाने को!

दिल फ़िदा करते हैं कुर्बान जिगर करते हैं
पास जो कुछ है वो माता की नज़र करते हैं
खाना वीरान कहां देखिये घर करते हैं
खुश रहो अह्ले वतन! हम तो सफ़र करते हैं
जाके आबाद करेंगे किसी वीराने को!

देखिये कब ये असीराने-मुसीबत छूटें
मादरे-हिन्द के अब भाग खुलें या फूटें
देश-सेवक सभी अब जेल में मूंजें कूटें
वे वहां ऐश से दिन-रात बहारे लूटें
क्यों न तरजीह दें इस जीने पर मर जाने को!

कोई माता की उम्मीदों पे न डाले पानी
जिन्दगी-भर को हमें भेज के काले पानी
मुंह में जल्लाद हुए जाते हैं छाले पानी
आबे-खंजर को पिला करके दुआ ले पानी
भर न क्यों पाएं हम इस उम्र के पैमाने को!

हम भी आराम उठा सकते थे घर पर रहकर
हमको भी पाला था मां-बाप ने दुःख सह-सहकर

वक़्ते-रुख़सत उन्हें इतना भी न आए कहकर
गोद में अश्क जो टपकें कभी रुख से बहकर
तिफ़्ल उनको ही समझ लेना जी बहलाने को।

देश-सेवा का ही बहता है लहू नस-नस में
अब तो खा बैठे हैं चितौड़ के गढ़ की कसमें
सरफ़रोशी की अदा होती है यूं ही रस्में
भाई खंजर से गले मिलते हैं अब आपस में
बहनें तैयार चिताओं से लिपट जाने को।

नौजवानो! जो तबीयत में तुम्हारी खटके
याद कर लेना कभी हमको भी भूले-भटके
आपके अज्चे-बदन होवें जुदा कट-कट के
और सद चाक हो जाता हो कलेजा फट के
पर न माथे पे शिकन आए क़सम खाने को।

अपनी क़िस्मत में अजल से ये सितम रक्खा था
रंज रक्खा था, मुहिम रक्खी थी, गम रक्खा था
किसको परवाह थी और किसमें ये दम रक्खा था
हमने जब वादिए-गुर्बत में कदम रक्खा था
दूर तक यादे-वतन आई थी समझाने को।

अपना कुछ ग़म नहीं लेकिन यह ख़्याल आता है
मादरे-हिन्द पे कब तक ये ज़वाल आता है
हरदयाल आता है योरोप से न लाल आता है
क़ौम अपनी पे तो रह रह के मलाल आता है
मन्तज़र रहते हैं हम ख़ाक में मिल जाने को।

मैक़दा किसका है यह जामे-सबू किसका है
वार किसका है मेरी जां! ये गुलू किसका है
जो बहे क़ौम की खातिर वो लहू किसका है
आस्मां! साफ़ बता दे तू अदू किसका है
क्यों नये रंग बदलता है जो तड़फाने को।

दर्दमन्दों से मुसीबत की हलावत पूछो
मरने वालों से ज़रा लुत्फ़े-शहादत पूछो

चश्मे-मुश्ताक से कुछ दीद की हसरत पूछो
कुश्तए-नाज़ से ठोकर की कयामत पूछो
सोज़ कहते हैं किसे पूछ लो परवाने को।

बाद तो तब है कि इस बात की हम जिद ठानें
देश के वास्ते कुरबान करेंगे जानें।
लाख समझाए कोई एक न उसकी मानें
कहता है खून से मत अपना गरेबां सानें
नासेहा आग लगे इस तेरे समझाने को।

न मयस्सर हुआ राहत में कभी मेल हमें
जान पर खेल के भाया न कोई खेल हमें
एक दिन को भी न मंजूर हुई 'बेल' हमें
याद आएगा बहुत लखनऊ का जेल हमें
लोग तो भूल ही जाएंगे इस अफ़साने को।

अब तो हम डाल चुके अपने गले में झोली
एक होती है फकीरों की हमेशा बोली
खून से फ़ाग रचाएगी हमारी टोली
जब से बंगाल में खेले हैं कन्हैया होली
कोई उस दिन से नहीं पूछता बरसाने को।

नौजवानों! यही मौका है उठो खुल खेलो
खिदमते-क़ौम में आए जो बला तुम झेलो
देश के सदके में सब अपनी जवानी दे दो
फिर मिलेंगी न ये माता की दुआएं ले लो
देखें, कौन आता है यह फर्ज़ बजा लाने को।

निज जीवन की एक छटा
आत्मचरित्र

क्या ही लज्जत है कि रग-रग से यह आती है सदा।
दम न ले तलवार जब तक जान 'बिस्मिल' में रहे।।

तोमरघाट में चम्बल नदी के किनारे पर दो ग्राम आबाद हैं, जो ग्वालियर राज्य में बहुत ही प्रसिद्ध हैं, क्योंकि इन ग्रामों के निवासी बड़े उदण्ड हैं। वे राज्य की सत्ता की कोई चिन्ता नहीं करते। जमींदारों का यह हाल है कि जिस साल उनके मन में आता है राज्य को भूमि कर देते हैं और जिस साल उनकी इच्छा नहीं होती, मालगुजारी देने से साफ इंकार कर देते हैं। यदि तहसीलदार या कोई और राज्य का अधिकारी आता है तो ये जमींदार बीहड़ में चले जाते हैं और महीनों बीहड़ में ही पड़े रहते हैं। उनके पशु भी वहीं रहते हैं और भोजनादि भी बीहड़ों में ही होता है। घर पर कोई ऐसा मूल्यवान पदार्थ नहीं छोड़ते, जिसे नीलाम करके मालगुज़ारी न वसूल की जा सके। एक जमींदार के सम्बन्ध में कथा प्रचलित है कि मालगुज़ारी देने के कारण ही उनको कुछ भूमि माफी में मिल गई। पहले तो कई साल तक भागे रहे। एक बार धोखे से पकड़ लिए गए तो तहसील के अधिकारियों ने उन्हें बहुत सताया। कई दिनों तक बिना खाना-पानी के बंधा रहने दिया। अन्त में जलाने की धमकी दे, पैरों पर सूखी घास डालकर आग लगवा दी। किन्तु जमींदार महोदय ने भूमि-कर देना स्वीकार न किया और यही उत्तर दिया कि ग्वालियर महाराज के कोष में मेरे कर न देने से ही घाटा न पड़ा जाएगा। संसार क्या जानेगा कि अमुक व्यक्ति उद्दण्डता के कारण ही अपना समय व्यतीत करता है। राज्य को लिखा गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उतनी भूमि उन महाशय को माफी में दे दी गई। इसी प्रकार एक समय इन ग्रामों के निवासियों को एक अद्भुत खेल सूझा। उन्होंने महाराज के रिसाले के साठा ऊंट चुराकर बीहड़ों में छिपा दिए। राज्य को लिखा गया, जिस पर राज्य की ओर से आज्ञा हुई कि दोनों ग्राम तोप लगाकर उड़वा दिये जाएं। न जाने किस प्रकार समझाने-बुझाने से वे ऊंट वापस किए गए और अधिकारियों को समझाया गया कि इतने बड़े राज्य में थोड़े-से वीर लोगों का निवास है, इनका विध्वंस न करना ही उचित होगा। तब तोपें लौटाई गई और ग्राम उड़ाये जाने

से बचे। ये लोग अब राज्य-निवासियों को तो अधिक नहीं सताते, किन्तु बहुध ा अंग्रेजी राज्य में आकर उपद्रव कर जाते हैं और अमीरों के मकानों पर छापा मारकर रात ही रात बीहड़ में दाखिल हो जाते हैं। बीहड़ में पहुंच जाने पर पुलिस या फौज कोई भी उनका बाल-बांका नहीं कर सकती। ये दोनों ग्राम अंग्रेजी राज्य की सीमा से लगभग पन्द्रह मील की दूरी पर चम्बल नदी के तट पर हैं। यहीं के एक प्रसिद्ध वंश में मेरे पितामह श्री नारायण लालजी का जन्म हुआ था। वह कौटुम्बिक कलह और अपनी भाभी के असहनीय दुर्व्यवहार के कारण मजबूर हो अपनी जन्मभूमि छोड़ इधर-उधर भटकते रहे। अन्त में अपनी धर्मपत्नी और दो पुत्रों के साथ वह शाहजहांपुर पहुंचे। उनके इन्हीं दो पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र श्री मुरलीधरजी मेरे पिता हैं। उस समय इनकी अवस्था आठ वर्ष और उनके छोटे पुत्र-मेरे चाचा-(श्रीकल्याणमल) की उम्र छः वर्ष की थी। इस समय यहां दुर्भिक्ष का भयंकर प्रकोप था।

दुर्दिन

अनेक प्रयत्न करने के पश्चात् शाहजहांपुर में एक अत्तार महोदय की दुकान पर श्रीयुत नारायणलालजी को तीन रुपये मासिक वेतन की नौकरी मिली। तीन रुपये मासिक में दुर्भिक्ष के समय चार प्राणियों का किस प्रकार निर्वाह हो सकता था? दादी जी ने बहुत प्रयत्न किया कि अपने आप केवल एक समय आधे पेट भोजन करके बच्चों का पेट पाला जाए, किन्तु फिर भी निर्वाह न हो सका। बाजरा, कुकनी, सामा, ज्वार इत्यादि खाकर दिन काटने चाहे, किन्तु फिर भी गुजारा न हुआ। तब आधा बथुआ, चना या कोई दूसरा साग, जो सबसे सस्ता हो उसको लेकर, सबसे सस्ता अनाज उसमें आध ा मिलाकर थोड़ा था नमक डालकर उसे स्वयं खाती, लड़कों को चना या जौ की रोटी देती और इसी प्रकार दादाजी भी समय व्यतीत करते थे। बड़ी कठिनता से आधे पेट खाकर दिन तो कट जाता, किन्तु पेट में घोंटू दबाकर रात काटना कठिन हो जाता। यह तो भोजन की अवस्था थी, वस्त्र तथा रहने के स्थान का किराया कहां से आता? दादीजी ने चाहा कि भले घरों में कोई मज़दूरी ही मिल जाए, किन्तु अनजान व्यक्ति का, जिसकी भाषा भी अपने देश की भाषा से न मिलती हो, भले घरों में, सहसा कौन विश्वास कर सकता था? कोई मज़दूरी पर अपना अनाज भी पीसने को न देता था। डर था कि दुर्भिक्ष का समय है, खा लेगी। बहुत प्रयत्न करने के बाद दो-एक महिलाएं

अपने घर पर अनाज पिसवाने पर राज़ी हुई, किन्तु पुरानी काम करने वालियों को कैसे जवाब दें? इसी प्रकार अड़चनों के बाद पांच-सात सेर अनाज पीसने को मिल जाता, जिसकी पिसाई उस समय एक पैसा प्रति पंसेरी थी। बड़ी कठिनता से आधे पेट एक समय भोजन करके तीन-चार घण्टों तक पीसकर एक पैसा या डेढ़ पैसा मिलता। फिर घर पर आकर बच्चों के लिए भोजन तैयार करना पड़ता। दो-तीन वर्ष तक यही अवस्था रही। बहुधा दादाजी देश को लौट चलने का विचार प्रकट करते किन्तु दादीजी का यही उत्तर होता कि जिनके कारण देश छूटा, धन-सामग्री सब नष्ट हुई और ये दिन देखने पड़े अब उन्हीं के पैरों में सिर रखकर दासत्व स्वीकार करने से इसी प्रकार प्राण दे देना कहीं श्रेष्ठ है, ये दिन सदैव न रहेंगे। सब प्रकार के संकट सहे, किन्तु दादीजी देश को लौटकर न गई।

चार-पांच वर्ष में जब कुछ सज्जन परिचित हो गए और जान लिया कि स्त्री भले घर की है, कुसमय पड़ने से दीन-दशा को प्राप्त हुई है, तब बहुत सी महिलाएं विश्वास करने लगीं। दुर्भिक्ष भी दूर हो गया था। कभी-कभी किसी सज्जन के यहां से कुछ दान मिल जाता, कोई ब्राह्मण भोजन करा देता। इसी प्रकार समय व्यतीत होने लगा। कई महानुभावों ने जिनके कोई सन्तान न थी और धनादि पर्याप्त था, दादीजी के अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए कि वह अपना एक लड़का उन्हें दे दें और जितना धन मांगें उनकी भेंट किया जाएगा। किन्तु दादीजी आदर्श माता थीं, उन्होंने इस प्रकार के प्रलोभनों की किंचित्-मात्र भी परवाह न की और अपने बच्चों का किसी न किसी प्रकार पालन करती रहीं।

मेहनत-मजदूरी तथा ब्राह्मण-वृत्ति द्वारा कुछ धन एकत्रित हुआ। कुछ महानुभावों के कहने से पिताजी को किसी पाठशाला में शिक्षा पाने का प्रबन्ध कर दिया गया। श्री दादाजी ने भी कुछ प्रयत्न किया, उनका वेतन भी बढ़ गया और वह सात रुपये मासिक पाने लगे। इसके बाद उन्होंने नौकरी छोड़ पैसे तथा दुअन्नी, चवन्नी इत्यादि बेचने की दुकान की। पांच-सात आने रोज पैदा होने लगे। जो दुर्दिन आये थे, प्रयत्न तथा साहस से दूर होने लगे। इसका सब श्रेय पूज्यनीय दादीजी को ही है। जिस साहस व धैर्य से उन्होंने काम लिया वह वास्तव में किसी दैवी-शक्ति की सहायता ही कही जाएगी। अन्यथा एक अशिक्षित ग्रामीण महिला की क्या सामर्थ्य है कि वह नितान्त

अपरिचित स्थान में जाकर मेहनत-मजदूरी करके अपना तथा अपने बच्चों का पेट पालन करते हुए उनको शिक्षित बनाये और फिर ऐसी परिस्थितियों में, जबकि उसने कभी अपने जीवन में घर से बाहर पैर न रखा हो और जो ऐसे कट्टर देश की रहने वाली हो कि जहां पर प्रत्येक हिन्दू प्रथा का पूर्णतया पालन किया जाता हो, जहां के निवासी अपनी प्रथाओं की रक्षा के लिए प्राणों की किंचित-मात्र भी चिन्ता न करते हों। किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य की कुलवधू का क्या साहस, जो डेढ़ हाथ का घूंघट निकाले बिना एक घर से दूसरे घर चली जाए। शूद्र जाति की वधुओं के लिए भी यह नियम है कि वे रास्ते में बिना घूंघट निकाले न जाएं। शूद्रों का पहनावा ही अलग है, ताकि उन्हें देखकर ही दूर से पहचान लिया जाए कि यह किसी नीच जाति की स्त्री है। ये प्रथाएं इतनी प्रचलित हैं कि उन्होंने अत्याचार का रूप धारण कर लिया है। एक समय किसी चमार की वधू जो अंग्रेज राज्य से विवाह करके गई थी, कुल-प्रथानुसार जमींदार के घर पैर छूने के लिए गई। वह पैरों में बिछुवे (नूपुर) पहने हुई थी और सब पहनावा चमारों का पहने थी। जमींदार महोदय की निगाह उसके पैरों पर पड़ी। पूछने पर मालूम हुआ कि चमार की बहू है। ज़मींदार साहब जूता पहनकर आए और उसके पैरों पर खड़े होकर इस जोर से दबाया कि उसकी अंगुलियां कट गई। उन्होंने कहा कि यदि चमारों की बहुएं बिछुवे पहनेंगी तो ऊंची जाति के घर की स्त्रियां क्या पहनेंगी? ये लोग नितान्त अशिक्षित तथा मूर्ख है, किन्तु जाति-अभिमान में चूर रहते हैं। गरीब-से-गरीब अशिक्षित ब्राह्मण या क्षत्रिय, चाहे वह किसी आयु का हो, यदि शूद्र जाति की बस्ती में से गुजरे तो चाहे कितना ही धनी या वृद्ध कोई शूद्र क्यों न हो, उसको उठकर पालागन या जुहार करनी ही पड़ेगी। यदि ऐसा न करे तो उसी समय वह ब्राह्मण या क्षत्रिय उसे जूतों से मार सकता है और सब शूद्र का ही दोष बताकर उसका तिरस्कार करेंगे। यदि किसी कन्या बहू पर व्यभिचारिणी होने का सन्देह किया जाए तो उसे बिना किसी विचार के मारकर चम्बल में प्रवाहित कर दिया जाता है। इसी प्रकार यदि किसी विधवा पर व्यभिचार या किसी प्रकार आचरण-भ्रष्ट होने का दोष लगाया जाए तो चाहे वह गर्भवती ही क्यों न हो, उसे तुरन्त ही काटकर चम्बल में पहुंचा दें और किसी को कानों कान भी खबर न होने दें। वहां के मनुष्य भी सदाचारी होते हैं। वे सबकी बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझते हैं। स्त्रियों

की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए प्राण देने में भी कभी नहीं हिचकिचाते। इस प्रकार के देश में विवाहित होकर सब प्रकार की प्रथाओं को देखते हुए भी इतना साहस करना यह दादीजी का ही काम था।

परमात्मा की दया से दुर्दिन समाप्त हुए। पिताजी कुछ शिक्षा पा गए और एक मकान भी श्री दादाजी ने खरीद लिया। दरवाजे-दरवाजे भटकने वाले कुटुम्ब को शांन्तिपूर्वक बैठने का स्थान मिल गया और फिर श्री पिताजी के विवाह करने का विचार हुआ। दादीजी, दादाजी तथा पिताजी के साथ अपने मायके गई। वहीं पिताजी का विवाह कर दिया। वहां दो-चार मास रहकर सब लोग वधू की विदाई करा कर साथ लिवा लाएं।

गृहस्थ जीवन

विवाह हो जाने के पश्चात् पिताजी म्युनिसिपैलिटी में पन्द्रह रुपये मासिक वेतन पर नौकर हो गए। उन्होंने कोई बड़ी शिक्षा प्राप्त न की थी। पिताजी को यह नौकरी पसंद न आई। उन्होंने एक-दो साल के बाद नौकरी छोड़कर स्वतंत्र व्यवसाय आरंभ करने का प्रयत्न किया और कचहरी में सरकारी स्टाम्प बेचने लगे। उनके जीवन का अधिक भाग इसी व्यवसाय में व्यतीत हुआ। साधारण श्रेणी के गृहस्थ बनकर उन्होंने इसी व्यवसाय द्वारा अपनी सन्तानों को शिक्षा दी, अपने कुटुम्ब का पालन किया और अपने मौहल्ले के गणमान्य व्यक्तियों में गिने जाने लगे। वे रुपये का लेन-देन भी करते थे। उन्होंने तीन बैलगाड़ियां भी बनाई थी, जो किराये पर चला करती थी। पिताजी को व्यायाम से प्रेम था। उनका शरीर बड़ा सुदृढ़, सुडौल था। वह नियमपूर्वक अखाड़े में कुश्ती लड़ा करते थे।

पिताजी के गृह में एक पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु वह मर गया। उसके एक साल बाद लेखक (श्री रामप्रसाद) ने ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष 11 सम्वत् 1954 विक्रमी को जन्म लिया। बड़े प्रयत्नों से मानता मानकर अनेक गंडे, ताबीज तथा कवचों द्वारा श्री दादाजी ने इस शरीर की रक्षा के लिए प्रयत्न किया। स्यात् बालकों का रोग गृह में प्रवेश कर गया था। अतएव जन्म लेने के एक या दो मास पश्चात् ही मेरे शरीर की अवस्था भी पहले बालक जैसी होने लगी। किसी ने बताया कि सफेद खरगोश को मेरे शरीर पर घुमाकर जमीन पर छोड़ दिया जाए, यदि बीमारी होगी तो खरगोश तुरन्त मर जाएगा। कहते है। हुआ भी ऐसा ही। एक सफेद खरगोश मेरे शरीर पर घुमाकर जमीन पर

छोड़ा गया, जैसे ही उसने तीन-चार चक्कर काटे और मर गया। मेरे विचार में किसी अंश में वह सम्भव भी है, क्योंकि औषधि तीन प्रकार की होती है- (1) दैविक, (2) मानुषिक, (3) पैशाचिक। पैशाचिक औषधियों में अनेक प्रकार के पशु या पक्षियों के मांस अथवा रुधिर का व्यवहार होता है, जिनका उपयोग वैद्यक के ग्रंथों में पाया जाता है। इनमें से एक प्रयोग बड़ा ही कौतूहलोत्पादक तथा आश्चर्यजनक यह है कि जिस बच्चे को जभोखे (सूखा) की बीमारी हो गई हो, यदि उसके सामने चमगादड़ चीरकर लाया जाए तो एक-दो मास का बालक चमगादड़ को पकड़कर उसका खून चूस लेगा और बीमारी जाती रहेगी। बड़ी उपयोगी औषधि है और एक महात्मा की बतलाई हुई है।

जब मैं सात वर्ष का हुआ तो पिताजी ने स्वयं ही मुझे हिन्दी अक्षरों का बोध कराया और एक मौलवी साहब के मकतब (पाठशाला) में उर्दू पढ़ने के लिए भेज दिया। मुझे भली-भांति स्मरण है कि पिताजी अखाड़े में कुश्ती लड़ने जाते थे और अपने बलिष्ठ तथा शरीर में डेढ़ गुने पट्ठे को पटक देते थे। कुछ दिनों बाद पिताजी का एक बंगाली (श्री चटर्जी) महाशय से प्रेम हो गया। चटर्जी महाशय की अंग्रेजी दवा की दुकान थी। वे बड़े भारी नशाबाज थे। एक समय में आधा छटांक चरस की चिलम उड़ाया करते थे। उन्हीं की संगति में पिताजी ने भी चरस पीना सीख लिया, जिसके कारण शरीर नितान्त नष्ट हो गया। दस वर्ष में ही सम्पूर्ण शरीर सूखकर हड्डियां निकल आई। चटर्जी महाशय सुरापान भी करने लगे। अतएव उनका कलेजा बढ़ गया और उसी से उनका शरीर अंत हो गया। मेरे बहुत-कुछ समझाने पर पिताजी ने अपनी चरस पीने की आदत को छोड़ा, किन्तु बहुत दिनों बाद। मेरे बाद पांच बहनों और तीन भाइयों का जन्म हुआ। दादीजी ने बहुत कहा कि कुल की प्रथा के अनुसार कन्याओं को मार डाला जाए, किन्तु माताजी ने इसका विरोध किया और कन्याओं के प्राणों की रक्षा की। मेरे कुल में यह पहला ही समय था कि कन्याओं का पोषण हुआ। पर इनमें से दो बहनों और दो भाइयों का देहान्त हो गया। शेष एक भाई, जो इस समय (1927 ई.) दस वर्ष का है और तीन बहनें बचीं। माताजी के प्रयत्न से तीनों बहनों को अच्छी शिक्षा दी गई और उनके विवाह बड़ी धूमधाम से किए गए। इसके पूर्व हमारे कुल की कन्याएं किसी को नहीं ब्याही गई, क्योंकि वे जीवित ही नहीं रखी

जाती थीं।

दादाजी बड़ी सरल प्रकृति के मनुष्य थे। जब तक वे जीवित रहे, पैसे बेचने का ही व्यवसाय करते रहे। उनको गाय पालने का बहुत बड़ा शौक था। स्वयं ग्वालियर जाकर बड़ी-बड़ी गायें खरीद लाते थे। वहां की गायें काफी दूध देती हैं। अच्छी गाय दस या पन्द्रह सेर दूध देती है। ये गायें बड़ी सीधी भी होती हैं। दूध दोहन करते समय उनकी टांगे बांधने की आवश्यकता नहीं होती और जब जिसका जी चाहे बिना बच्चे के दूध दोहन कर सकता है। बचपन में मैं बहुधा जाकर गाय के थन में मुंह लगाकर दूध पिया करता था। वास्तव में वहां की गायें दर्शनीय होती हैं।

दादाजी मुझे जब दूध पिलाया करते थे। उन्हें अट्ठारह गोटी (बघिया बग्घा) खेलने का बड़ा शौक था। सायंकाल के समय नित्य शिव-मन्दिर में जाकर दो घण्टे तक परमात्मा का भजन किया करते थे। उनका लगभग पचपन वर्ष की आयु में स्वर्गारोहण हुआ।

बाल्यकाल से ही पिताजी मेरी शिक्षा का अधिक ध्यान रखते थे और जरा-सी भूल करने पर बहुत पीटते थे। मुझे अब भी भली-भांति स्मरण है कि जब मैं नागरी के अक्षर लिखना सीख रहा था तो मुझे 'उ' लिखना न आया। मैंने बहुत प्रयत्न किया। पर जब पिताजी कचहरी चले गए तो मैं भी खेलने चला गया। पिताजी ने कचहरी से आकर मुझसे 'उ' लिखवाया, मैं न लिख सका। उन्हें मालूम हो गया कि मैं खेलने चला गया था, इस पर उन्होंने मुझे बन्दूक के लोहे के गज से इतना पीटा कि गज टेढ़ा पड़ गया। मैं भागकर दादाजी के पास चला गया, तब बचा मैं छोटेपन से ही बहुत उदण्ड था। पिताजी के पर्याप्त शासन रखने पर भी बहुत उदण्डता करता था। एक समय किसी के बाग में जाकर आडू के वृक्षों मे से सब आडू तोड़ डाले। माली पीछे दौड़ा, किन्तु मैं उसके हाथ न आया। माली ने सब आडू पिताजी के सामने ला रखे। उस दिन पिताजी ने मुझे इतना पीटा कि मैं दो दिन तक उठ न सका। इसी प्रकार खूब पिटता था, किन्तु उदण्डता अवश्य करता था। शायद उस बचपन की मार से ही यह शरीर बहुत कठोर तथा सहनशील बन गया।

मेरी कुमारावस्था

जब मैं उर्दू का चौथा दर्जा पास करके पांचवें में आया, उस समय मेरी अवस्था लगभग चौदह वर्ष की होगी। इसी बीच मुझे पिताजी के सन्दूक

से रुपए पैसे चुराने की आदत पड़ गई थी। इन पैसों से उपन्यास खरीदकर खूब पढ़ता। पुस्तक-विक्रेता महाशय पिताजी के जान-पहचान के थे। उन्होंने पिताजी से मेरी शिकायत की। अब मेरी कुछ जांच होने लगी। मैंने उन महाशय के यहां से किताबें खरीदना ही छोड़ दिया। मुझ में दो-एक खराब आदतें पड़ गई। मैं सिगरेट पीने लगा। कभी-कभी भंग भी जमा लेता था। कुमारावस्था में स्वतन्त्रतापूर्वक पैसे हाथ आ जाने से उर्दू के प्रेम-रसपूर्ण उपन्यासों तथा ग़ज़लों की पुस्तकों ने आचरण पर भी अपना कुप्रभाव दिखाना आरम्भ कर दिया। घुन लगना आरम्भ हुआ ही था कि परमात्मा ने बड़ी सहायता की । मैं एक रोज भंग पीकर पिता जी की संदूकची में से रुपये निकालने लगा। नशे की हालत में होश ठीक न रहने के कारण संदूकची खटक गई। माताजी को सन्देह हुआ। उन्होंने मुझे पकड़ लिया। चाभी पकड़ी गई। मेरे सन्दूक की तलाशी ली गई, बहुत से रुपए निकले और सारा भेद खुल गया। मेरी किताबों में अनेक उपन्यासादि पाए गए जो उसी समय फाड़ डाले गए।

परमात्मा की कृपा से मेरी चोरी पकड़ ली गई, नहीं तो दो-चार वर्ष में न दीन का रहता न दुनिया का। इसके बाद भी मैंने बहुत घातें लगाई, किन्तु पिताजी ने सन्दूकची का ताला बदल दिया था। मेरी कोई चाल न चल सकी। अब जब कभी मौका मिल जाता तो माताजी के रुपयों पर हाथ फेर देता था, इसी प्रकार की कुटेवों के कारण दो बार उर्दू मिडिल की परीक्षा में उर्तीण न हो सका तब मैंने अंग्रेजी पढ़ने की इच्छा प्रकट की। पिताजी मुझे अंग्रेजी पढ़ाना नहीं चाहते थे और किसी व्यवसाय में लगाना चाहते थे, किन्तु माताजी की कृपा से मैं अंग्रेजी पढ़ने भेजा गया। दूसरे वर्ष जब मैं उर्दू मिडिल की परीक्षा में फेल हुआ, उसी समय पड़ोस के देव-मन्दिर में, जिसकी दीवार मेरे मकान से मिली थी, एक पुजारी जी आ गए। ये बड़े ही सच्चरित्र व्यक्ति थे। मैं उनके पास उठने-बैठने लगा।

मैं मन्दिर में आने-जाने लगा। कुछ पूजा-पाठ भी सीखने लगा। पुजारीजी के उपदेशों का मुझ पर बड़ा उत्तम प्रभाव हुआ। मैं अपना अधिकतर समय स्तुति-पूजन तथा पढ़ने में व्यतीत करने लगा। पुजारीजी मुझे ब्रह्मचर्य पालन का खूब उपदेश देते थे। वे मेरे पथ-प्रदर्शक बने। मैंने एक दूसरे सज्जन की देखा-देखी व्यायाम करना भी आरम्भ कर दिया। अब तो

मुझे भक्ति-मार्ग में कुछ आनन्द प्राप्त होने लगा और चार-पांच महीने में ही व्यायाम भी खूब करने लगा। मेरी सब बुरी आदतें और कुभावनाएं जाती रहीं। स्कूलों की छुट्टियां समाप्त होने पर मैंने मिशन स्कूल के अंग्रेजी के पांचवें दर्जे में नाम लिखा लिया। इस समय तक मेरी और सब कुटेवें तो छूट गई थीं, किन्तु सिगरेट पीना न छूटता था। मैं सिगरेट बहुत पीता था। एक दिन में पचास-साठ सिगरेट भी पी डालता था। मुझे बड़ा दुःख होता था कि मैं इस जीवन में सिगरेट पीने की कुटेव को न छोड़ सकूंगा। स्कूल में भर्ती होने के थोड़े दिनों बाद ही सहपाठी श्रीयुत सुशीलचन्द सेन से कुछ विशेष स्नेह हो गया। उन्हीं की दया के कारण मेरा सिगरेट पीना भी छूट गया।

देव-मंदिर में स्तुति-पूजा करने की प्रवृत्ति को देखकर श्रीयुत मुंशी इन्द्रजीतजी ने मुझे संध्या करने का उपदेश दिया। मुंशीजी उसी मंदिर में रहने वाले किसी महाशय के पास आया करते थे। व्यायामादि करने के कारण मेरा शरीर बड़ा सुगठित हो गया था और रंग निखर आया था। मैंने जानना चाहा कि संध्या क्या वस्तु है। मुंशीजी ने आर्य-समाज सम्बन्धी कुछ उपदेश दिए। इसके बाद मैंने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा। इससे तख्ता ही पलट गया। सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया। मैंने उसमें उल्लिखित ब्रह्मचर्य के कठिन नियमों का पालन करना आरम्भ कर दिया। मैं एक कम्बल को तख्त पर बिछाकर सोता और प्रातः काल चार बजे से ही शय्या-त्याग कर देता। स्नान-संध्यादि से निवृत्त होकर व्यायाम करता, किन्तु मन की वृत्तियां ठीक न होती। मैंने रात्रि के समय भोजन करना त्याग दिया। केवल थोड़ा-सा दूध ही रात को पीने लगा। सहसा ही बुरी आदतों को छोड़ा था, इस कारण कभी-कभी स्वप्न दोष हो जाता। तब किसी सज्जन के कहने पर मैंने नमक खाना भी छोड़ दिया। केवल उबालकर साग या दाल का एक समय भोजन करता। मिर्च-खटाई तो छूता भी न था। इस प्रकार पांच वर्ष तक बराबर नमक न खाया। नमक के न खाने से शरीर के दोष दूर हो गए और मेरा स्वास्थ्य दर्शनीय हो गया। सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते थे।

मैं थोड़े दिनों में ही बड़ा कट्टर आर्य-समाजी हो गया। आर्यसमाज के अधिवेशन में जाता-आता। संन्यासी-महात्माओं के उपदेशों को बड़ी श्रद्धा से सुनता। जब कोई संन्यासी आर्यसमाज में आता तो उसकी हर प्रकार से

सेवा करता, क्योंकि प्राणायाम सीखने में मेरी बड़ी उत्कट इच्छा थी। जिस संन्यासी का नाम सुनता शहर में तीन-चार मील उनकी सेवा के लिए जाता, फिर वह संन्यासी चाहे जिस मत का अनुयायी होता। जब मैं अंग्रेजी के सातवें दर्जे में था तब सनातनधर्मी पण्डित जगत प्रसादजी शाहजहांपुर पधारे। उन्होंने आर्य समाज का खण्डन करना प्रारंभ किया। आर्य समाजियों ने भी उसका विरोध किया और पं. अखिलानन्दजी को बुलाकर शास्त्रार्थ कराया। शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ। जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ। मेरे कामों को देखकर मुहल्ले वालों ने पिताजी से मेरी शिकायत की। पिताजी ने मुझे कहा कि आर्यसमाजी हार गए अब तुम आर्य समाज से अपना नाम कटा दो। मैंने पिताजी से कहा कि आर्यसमाज के सिद्धान्त सार्वभौम हैं, उन्हें कौन हरा सकता है? अनेक वाद-विवाद के पश्चात् पिताजी जिद पकड़ गए कि आर्यसमाज से त्यागपत्र न देगा तो तुझे रात को सोते समय मार दूंगा, या तो आर्यसमाज से त्याग पत्र दे दे या घर छोड़ दे। मैंने भी विचारा कि पिताजी का क्रोध अधिक बढ़ गया और उन्होंने मुझ पर कोई वस्तु ऐसी दे पटकी कि जिससे बुरा परिणाम हुआ तो अच्छा न होगा। अतएव घर त्याग देना ही उचित है। मैं केवल एक ही कमीज पहने खड़ा था और पाजामा उतारकर धोती पहन रहा था। पाजामे के नीचे लंगोट बंधा था। पिताजी ने हाथ से धोती छीन ली और कहा, 'घर से निकल।' मुझे भी क्रोध आ गया। मैं पिताजी के पैर छूकर गृह त्याग कर चला गया। कहां जाऊं, कुछ समझ में न आया। शहर में किसी से जान-पहचान न थी कि जहां छिपा रहता। मैं जंगल की ओर चला गया। एक रात और एक दिन बाग में पेड़ पर बैठा रहा। भूख लगने पर खेतों में से हरे चने तोड़ कर खाए, नदी में स्नान किया और जलपान किया। दूसरे दिन संध्या समय पं. अखिलानन्दजी का व्याख्यान आर्यसमाज मंदिर में था। मैं आर्यसमाज मंदिर में गया। एक पेड़ के नीचे एकान्त में खड़ा व्याख्यान सुन रहा था कि पिताजी दो मनुष्यों को लिये हुए आ पहुंचे। वे उसी समय पकड़कर स्कूल के हैडमास्टर के पास ले गए। हैडमास्टर साहब ईसाई थे। मैंने उन्हें सब वृतान्त कह सुनाया। उन्होंने पिताजी को ही समझाया कि समझदार लड़के को मारना-पीटना ठीक नहीं। मुझे बहुत कुछ उपदेश दिया। उस दिन से पिताजी ने कभी भी मुझ पर हाथ नहीं उठाया, क्योंकि मेरे घर से निकल जाने पर घर में बड़ा क्षोभ रहा। एक रात एक दिन

किसी ने भोजन नहीं किया, सब बड़े दुःखी हुए कि अकेला पुत्र न जाने नदी में डूब गया या रेल से कट गया। पिताजी के हृदय को बड़ा भारी धक्का पहुंचा। उस दिन से वे मेरी प्रत्येक बात सहन कर लेते थे, अधिक विरोध न करते थे। मैं पढ़ने का बड़ा प्रयत्न करता था और अपने दर्जे में उत्तीर्ण होता था। यह अवस्था आठवें दर्जे तक रही। जब मैं आठवें दर्जे में था, उसी समय स्वामी श्री सोमदेवजी सरस्वती आर्यसमाज, शाहजहांपुर में पधारे। उन व्याख्यानों को जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव हुआ कुछ सज्जनों के अनुरोध से स्वामी जी कुछ दिनों के लिए शाहजहांपुर आर्यसमाज मंदिर में ठहर गए। स्वामजी की तबियत भी कुछ खराब थी, इसी कारण शाहजहांपुर की जलवायु लाभदायक देखकर वहां ठहरे थे। उनके पास जाया-आया करता था। प्राणपण से मैंने स्वामीजी महाराज की सेवा की और इसी सेवा के परिणामस्वरूप मेरे जीवन में नवीन परिवर्तन हो गया। मैं रात को दो-तीन बजे तक और दिनभर उनकी सेवा सुश्रूषा में उपस्थित रहता। अनेक प्रकार की औषधियों का प्रयोग किया कतिपय सज्जनों ने बड़ी सहानुभूति दिखलाई, किन्तु रोग का शमन न हो सका। स्वामी जी मुझे अनेक प्रकार के उपदेश दिया करते थे। उन उपदेशों को मैं श्रवण कर कार्य रूप में परिणित करने का पूरा प्रयत्न करता। वास्तव में वे मेरे गुरुदेव तथा पथ-प्रदर्शक थे। उनकी शिक्षाओं ने ही मेरे जीवन में आत्मिक-बल का संचार किया। जिनके सम्बन्ध ा में मैं पृथक् वर्णन करूंगा।

कुछ नवयुवकों ने मिलकर आर्यसमाज मंदिर में आर्य कुमार सभा खोली थी, जिसके साप्ताहिक अधिवेशन प्रत्येक शुक्रवार को हुआ करते थे। वहीं पर धार्मिक पुस्तकों का पठन, विषय विशेष पर निबन्ध लेखन और पठन तथा वाद-विाद होता था। कुमार सभा से ही मैंने जनता के सम्मुख बोलने का अभ्यास किया। बहुधा कुमार सभा के नवयुवक मिलकर शहर के मेलों में प्रचारार्थ जाया करते थे। ऐसा करते-करते मुसलमानों से मुबाहसा होने लगा। अतएव पुलिस ने झगड़े का भय देखकर बाजारों में व्याख्यान देना बद करा दिया। आर्य-समाज के सदस्यों ने कुमार-सभा के प्रयत्न को देखकर उस पर अपना शासन जमाना चाहा, किन्तु कुमार किसी का अनुचित शासन कब मानने वाले थे। आर्य समाज के मंदिर में ताला डाल दिया गया कि कुमार-सभा वाले आर्य समाज के मन्दिर में अधिवेशन न करें। यह भी कहा

गया कि यदि वे वहां अधिवेशन करेंगे, तो पुलिस को बुलाकर उन्हें मंदिर से निकलवा दिया जाएगा। कई महीनों तक हम लोग मैदान में अपनी सभा का अधिवेशन करते रहे, किन्तु बालक ही तो थे, कब तक इस प्रकार कार्य चला सकते थे? कुमार सभा टूट गई। तब आर्य-समाजियों को शांति हुई। कुमार-सभा ने अपने शहर में तो नाम पाया ही था। जब लखनऊ में कांग्रेस की सभा हुई तो भारतवर्षीय कुमार सम्मेलन का भी वार्षिक अधिवेशन वहां हुआ। उस अवसर पर सबसे अधिक पारितोषिक लाहौर और शाहजहांपुर की कुमार-सभाओं ने पाए थे, जिनकी प्रशंसा समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई थी। उन्हीं दिनों में मिशन स्कूल के एक विद्यार्थी से मेरा परिचय हुआ। वे कभी-कभी कुमार-सभा में आ जाया करते थे। मेरे भाषण का उन पर अधिक प्रभाव हुआ। वैसे तो वे मेरे मकान के निकट रहते थे, किन्तु आपस में कोई मेल न था। बैठने-उठने में आपस में प्रेम बढ़ गया। वे एक ग्राम के निवासी थे। जिस ग्राम में उनका घर था, वह ग्राम बड़ा प्रसिद्ध है। वहां का प्रत्येक निवासी अपने घर में बिना लाईसेंस अस्त्र-शस्त्र रखता है। बहुत से लोगों के यहां बन्दूक तथा तमंचे भी रहते हैं, जो ग्राम में ही बन जाते हैं। ये सब टोपीदार होते हैं। उन महाशय के पास भी एक नाली का छोटा सा पिस्तौल था जिसे वह अपने साथ शहर में रखते थे। जब मुझसे अधिक प्रेम बढ़ा तो उन्होंने वह पिस्तौल मुझे रखने के लिए दिया। इस प्रकार के हथियार रखने की मेरी उत्कृष्ट इच्छा थी, क्योंकि मेरे पिता के कई शत्रु थे, जिन्होंने पिताजी पर अकारण ही लाठियों का प्रहार किया था। मैं चाहता था कि यदि पिस्तौल मिल जाए तो मैं पिताजी के शत्रुओं को मार डालूं। यह एक नाली का पिस्तौल वह महाशय अपने पास रखते तो थे, किन्तु उसको चलाकर न देखा था। मैंने उसे चलाकर देखा तो वह नितान्त बेकार सिद्ध हुआ। मैंने उसको ले जाकर एक कोने में डाल दिया। उन महाशय से स्नेह इतना बढ़ गया कि सायंकाल को मैं अपने घर से खीर की थाली ले जाकर उनके साथ-साथ उनके मकान पर ही भोजन किया करता था। वह मेरे साथ श्री स्वामी सोमदेवजी के पास जाया करते थे। उनके पिता जब शहर आए तो उनको यह बड़ा बुरा मालूम हुआ। उन्होंने मुझसे अपने लड़के के पास न आने या उसे कहीं साथ न ले जाने के लिए बहुत ताड़ना की और कहा कि यदि मैं उनका कहना न मानूंगा तो वह ग्राम से आदमी लाकर मुझे पिटवाएंगे। मैंने

उनके पास जाना-आना त्याग दिया, किन्तु वह महाशय मेरे यहां आते-जाते रहें।

लगभग अट्ठारह वर्ष की उम्र तक मैं रेल में न चढ़ा था। मैं इतना दृढ़ सत्यवक्ता हो गया था कि एक समय रेल पर चढ़कर तीसरे दर्जे का टिकट खरीदा था, पर इण्टर क्लास में बैठकर दूसरों के साथ-साथ चला गया। इस बात से मुझे बड़ा खेद हुआ। मैंने अपने साथियों से अनुरोध किया कि यह तो एक प्रकार की चोरी है। सबको मिलकर इण्टर क्लास का भाड़ा स्टेशन मास्टर को दे देना चाहिए। एक समय मेरे पिताजी दीवानी में किसी पर दावा करके वकील से कह गए थे कि जो काम हो वह मुझसे करा लें। कुछ आवश्यकता पड़ने पर वकील साहब ने मुझे बुलावा भेजा और कहा कि मैं पिताजी के हस्ताक्षर वकालतनामे पर कर दूं। मैंने तुरंत उत्तर दिया कि यह तो धर्म के विरुद्ध होगा, इस प्रकार का पाप मैं कदापि नहीं कर सकता। वकील साहब ने बहुत-बहुत समझाया कि एक सौ रुपये से अधिक का दावा है, मुकदमा खारिज हो जाएगा। किन्तु मुझ पर कुछ भी प्रभाव न हुआ, मैंने हस्ताक्षर नहीं किए। अपने जीवन में सर्वप्रकारेण सत्य का आचरण करता था, चाहे कुछ हो जाए, सत्य बात कह देता था।

मेरी माता मेरे धर्म-कार्यों में तथा शिक्षादि में बड़ी सहायता करती थीं। वे प्रातः काल चार बजे ही मुझे जगा दिया करती थीं। मैं नित्य-प्रति नियमपूर्वक हवन किया करता था। मेरी छोटी बहन का विवाह करने के निमित्त माताजी और पिताजी ग्वालियर गए। मैं और श्री दादीजी शाहजहांपुर में ही रह गए, क्योंकि मेरी वार्षिक परीक्षा थी। परीक्षा समाप्त करके मैं भी बहन के विवाह में सम्मिलित होने को गया। बारात आ चुकी थी। मुझे ग्राम के बाहर ही मालूम हो गया कि बारात में वेश्या आई हैं। मैं घर न गया और न बारात में सम्मिलित हुआ। मैंने विवाह में कोई भी भाग न लिया। मैंने माताजी से थोड़े रुपये मांगे। माताजी ने मुझे लगभग 125 रुपए दिए, जिनको लेकर मैं ग्वालियर गया। यह अवसर रिवाल्वर खरीदने का अच्छा हाथ लगा। मैंने सुन रखा था कि रियासत में बड़ी आसानी से हथियार मिल जाते हैं। बड़ी खोज की। टोपीदार बन्दूक तथा पिस्तौल तो मिलते थे, किन्तु कारतूसी हथियारों का कहीं पता नहीं लगा। पता लगा भी तो एक महाशय ने मुझे ठग लिया और 75 रुपये में टोपदार पांच फायर करने वाला एक रिवाल्वर

दिया। रियासत की बनी बारूद और थोड़ी सी टोपियां दे दीं। मैं इसी को लेकर बड़ा प्रसन्न हुआ। सीधा शाहजहांपुर पहुंचा। रिवाल्वर को भर कर चलाया तो गोली केवल पन्द्रह या बीस गज पर ही गिरी, क्योंकि बारूर अच्छी न थी। मुझे बड़ा खेद हुआ। माताजी जब लौट कर शाहजहांपुर आई तो उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या लाए? मैंने कुछ कह कर टाल दिया। रुपये सब खर्च हो गए। शायद एक गिन्नी बची थी, सो मैंने माताजी को लौटा दी। मुझे जब किसी बात के लिए धन की आवश्यकता होती तो मैं माता जी से कहता और वे मेरी मांग पूरी कर देती थीं। मेरा स्कूल घर से एक मील दूर था। मैंने माताजी से प्रार्थना की कि मुझे साईकिल ले दें। उन्होंने लगभग एक सौ रुपये दिए। मैंने साईकिल खरीद ली। उस समय मैं अंग्रेजी के नवें दर्जे में आ गया था। किसी धार्मिक या देश सम्बन्धी पुस्तक पढ़ने की इच्छा होती तो माताजी से ही दाम ले जाता। लखनऊ कांग्रेस जाने के लिए मेरी बड़ी इच्छा थी। दादाजी और पिताजी तो बहुत विरोध करते रहे, किन्तु माताजी ने मुझे खर्च दे ही दिया। उसी समय शाहजहांपुर में सेवा समिति का आरंभ हुआ था। मैं बड़े उत्साह के साथ सेवा-समिति में सहयोग देता था। पिताजी और दादीजी को मेरे इस प्रकार के कार्य अच्छे न लगते थे, किन्तु माताजी मेरा उत्साह भंग न होने देती थीं, जिसके कारण उन्हें बहुधा पिताजी की डांट-फटकार तथा दण्ड भी सहन करना पड़ता था। वास्तव में मेरी माताजी तथा गुरुदेव श्री सोमदेवजी की कृपाओं का ही परिणाम है। दादीजी और पिताजी मेरे विवाह के लिए बहुत अनुरोध करते, किन्तु माताजी यही कहतीं कि शिक्षा पा चुकने के बाद ही विवाह करना उचित होगा। माताजी के प्रोत्साहन तथा सद्व्यवहार ने मेरे जीवन में वह दृढ़ता उत्पन्न की कि किसी आपत्ति तथा संकट के आने पर भी मैंने अपने संकल्प को न त्यागा।

मेरी मां

ग्यारह वर्ष की उम्र में माताजी विवाह कर शाहजहांपुर आई थी। उस समय वे नितान्त अशिक्षित एक ग्रामीण कन्या के सदृश थीं। शाहजहांपुर आने के थोड़े दिनों बाद श्री दादीजी ने अपनी छोटी बहन को बुला लिया। उन्होंने माताजी को गृह-कार्य की शिक्षा दी। थोड़े दिनों में माताजी ने घर के सब काम-काज को समझ लिया और भोजनादि का ठीक-ठीक प्रबन्ध करने लगीं। मेरे जन्म होने के पांच या सात वर्ष बाद उन्होंने हिन्दी पढ़ना आरंभ

किया। पढ़ने का शौक उन्हें खुद ही पैदा हुआ था। मुहल्ले की सखी-सहेली जो घर में आया करती थीं, उन्हीं मे जो कोई शिक्षित थीं, माताजी उनसे अक्षर-बोध करतीं। इस प्रकार घर का सब काम कर चुकने के बाद जो कुछ समय मिल जाता, उसमें पढ़ना-लिखना करतीं। परिश्रम के फल से थोड़े दिनों में ही वे देवनागरी पुस्तकों का अवलोकन करने लगीं। मेरी बहनों को छोटी आयु में, माताजी ही उन्हें शिक्षा दिया करती थी। जब से मैंने आर्य समाज में प्रवेश किया, तब से माताजी से खूब वार्तालाप होता। उस समय की अपेक्षा अब उनके विचार भी कुछ उदार हो गए हैं। यदि मुझे ऐसी माता न मिलतीं, तो मैं भी अति साधारण मनुष्यों की भांति संसार-चक्र में फंसकर जीवन निर्वाह करता। शिक्षादि के अतिरिक्त क्रांतिकारी जीवन में भी उन्होंने मेरी वैसी ही सहायता की है, जैसे मेज़िनी की उनकी माता ने की थी। यथासमय मैं उन सारी बातों का उल्लेख करूंगा। माताजी का सबसे बड़ा आदेश मेरे लिए यही था कि प्राण-हानि न हो। उनका कहना था कि अपने शत्रु को भी कभी प्राण-दण्ड न देना। उनके इस आदेश की पूर्ति करने के लिए मुझे मजबूरन दो-एक बार अपनी प्रतिज्ञा भंग भी करनी पड़ी थी।

जन्मदात्री जननी! इस जीवन में तो तुम्हारा ऋण-परिशोध के प्रयत्न करने का भी अवसर न मिला। इस जन्म में तो क्या यदि अनेक जन्मों में भी सारे जीवन प्रयत्न करूं तो भी तुमसे उऋण नहीं हो सकता। जिस प्रेम तथा दृढ़ता के साथ तुमने इस तुच्छ जीवन का सुधार किया हैं; वह अवर्णनीय हैं। मुझे जीवन की प्रत्येक घटना का स्मरण है कि तुमने किस प्रकार अपनी देव-वाणी का उपदेश करके मेरा सुधार किया तुम्हारी दया से ही मैं देश सेवा में संलग्न हो सका। धार्मिक जीवन में भी तुम्हारे ही प्रोत्साहन ने सहायता दी। जो कुछ शिक्षा मैंने ग्रहण की, उसका भी श्रेय तुम्ही को है। जिस मनोहर रूप से तुम मुझे उपदेश करती थीं, उसका स्मरण कर तुम्हारी मंगलमयी मूर्ति का ध्यान आ जाता है और मस्तक नत हो जाता है। तुम्हें यदि मुझे ताड़ना भी देनी हुई, तो बड़े स्नेह से हर बात को समझा दिया। यदि मैंने धृष्टतापूर्ण उत्तर दिया तब तुमने प्रेम-भरे शब्दों में यही कहा कि तुम्हें जो अच्छा लगे, वह करो, किन्तु ऐसा करना ठीक नहीं, इसका परिणाम अच्छा न होगा। जीवनदात्री! तुमने इस शरीर को जन्म देकर केवल पालन-पोषण ही नहीं किया किन्तु आत्मिक, धार्मिक तथा सामाजिक उन्नति में तुम्ही मेरी सदैव

सहायक रहीं। जन्म-जन्मांतर परमात्मा ऐसी ही माता दें।

महान से महान संकट में भी तुमने मुझे अधीर नहीं होने दिया। सदैव अपनी प्रेम-भरी वाणी को सुनाते हुए मुझे सान्त्वना देती रहीं। तुम्हारी दया की छाया में मैंने अपने जीवन भर में कोई कष्ट अनुभव न किया। इस संसार में मेरी किसी भी भोग-विलास तथा ऐश्वर्य की इच्छा नहीं। केवल एक तृष्णा है, वह यह कि एक बार श्रद्धापूर्वक तुम्हारे चरणों की सेवा करके अपने जीवन को सफल बना लेता। किन्तु यह इच्छा पूर्ण होती नहीं दिखाई देती और तुम्हें मेरी मृत्यु का दुःख संवाद सुनाया जाएगा। मां! मुझे विश्वास है कि तुम यह समझ कर धैर्य धारण करोगी कि तुम्हारा पुत्र माताओं की माता भारत माता की सेवा में अपने जीवन को बलि वेदी की भेंट कर गया और उसने तुम्हारी कुक्ष को कलंकित न किया, अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा। जब स्वाधीन भारत का इतिहास लिखा जाएगा, तो उसके किसी पृष्ठ पर उज्जवल अक्षरों में तुम्हारा भी नाम लिखा जाएगा। गुरू गोविन्द सिंह जी की धर्मपत्नी ने जब अपने पुत्रों की मृत्यु का संवाद सुना था, तो बहुत हर्षित हुई थीं। जन्मदात्री! वर दो कि अंतिम समय में मेरा हृदय किसी प्रकार विचलित न हो और तुम्हारे चरण कमलों को प्रणाम कर मैं परमात्मा का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करूं।

मेरे गुरुदेव

माताजी के अतिरिक्त जो कुछ शिक्षा मैंने प्राप्त की वह पूज्यपाद श्री 108 स्वामी सोमदेवजी की कृपा का परिणाम है। आपका नाम श्रीयुत ब्रजपाल चोपड़ा था। पंजाब के लाहौर शहर में आपका जन्म हुआ था। आपका कुटुम्ब प्रसिद्ध था, क्योंकि आपके दादा महाराजा रणजीत सिंह के मंत्रियों में से एक थे। आपके जन्म के कुछ समय पश्चात् आपकी माता का देहांत हो गया था। आपकी दादी ने आपका पालन-पोषण किया था। आप अपने पिता की अकेली संतान थे। जब आप बढ़े तो चाचियों ने दो-तीन बार आपको जहर देकर मारने का प्रयत्न किया, ताकि उनके लड़कों को ही जायदाद का अधिकार मिल जाय। आपके चाचा आप पर बड़ा स्नेह रखते थे और शिक्षादि की ओर विशेष ध्यान रखते थे। अपने चचेरे भाईयों के साथ-साथ आप भी अंग्रेजी स्कूल में पढ़ते थे। जब आपने एण्ट्रेन्स की परीक्षा दी तो परीक्षा फल प्रकाशित होने पर आप यूनिवर्सिटी में प्रथम आए और

चाचा के लड़के फेल हो गए। घर में बड़ा शोक मनाया गया, दिखाने के लिए भोजन तक नहीं बना। आपकी प्रशंसा तो दूर, किसी ने उस दिन भोजन करने को भी न पूछा और बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखा। आपका हृदय पहले से ही घायल था, इस घटना से आपके जीवन को और भी बड़ा आघात पहुंचा। चाचाजी के कहने-सुनने पर कॉलिज में नाम लिखा तो लिया, किन्तु बड़े उदासीन रहने लगे। आपके हृदय में दया बहुत थी। बहुधा अपनी किताबें तथा कपड़े दूसरे सहपाठियों को बांट दिया करते थे। नए कपड़े बांटकर पुराने कपड़े स्वयं पहना करते थे। एक-दो बार चाचाजी से दूसरे लोगों ने कहा कि ब्रजलाल को भी नए कपड़े आप क्यों नहीं बनवा देते, जो वह पुराने फटे कपड़े पहने फिरते हैं। चाचाजी को बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि उन्होंने कई जोड़े कपड़े थोड़े दिनों पहले ही बनवाए थे। आपके सन्दूकों की तलाशी ली गई उनमें दो-चार जोड़ी पुराने कपड़े निकले, तब चाचाजी ने पूछा तो मालूम हुआ कि वे नए कपड़े निर्धन विद्यार्थियों को बांट दिया करते हैं। चाचाजी ने कहा कि जब कपड़े बांटने की इच्छा हो तो वह कह दिया करो, हम विद्यार्थियों को कपड़े बनवा दिया करेंगे, अपने कपड़े न बांटा करो, आप बहुआ निर्धन विद्यार्थियों को अपने घर पर ही भोजन कराया करते थे। चाचियों तथा चचाजात भाइयों के व्यवहार से आपको बड़ा क्लेश होता था। इसी कारण से आपने विवाह न किया। घरेलू दुर्व्यवहार से दुःखित होकर आपने घर त्याग देने का निश्चय कर लिया और एक रात को जब सब सो रहे थे, चुपचाप उठकर घर से निकल गए। कुछ भी सामान साथ में न लिया। बहुत दिनों तक इधर-उधर भटकते रहे। भटकते-भटकते आप हरिद्वार पहुंचे। वहां एक सिद्ध योगी से भेंट हुई। श्री ब्रजलालजी को जिस वस्तु की इच्छा थी, वह प्राप्त हो गई। उसी स्थान पर रहकर श्री ब्रजलालजी ने योग-विद्या की पूर्व शिक्षा पाई। योगीराज की कृपा से 18-20 घण्टे की समाधि लगा लेने लगे। कई वर्ष तक आप वहां रहे। इस समय आपको योग का इतना अभ्यास हो गया था कि अपने शरीर को आप इतना हल्का कर लेते थे कि पानी पर पृथ्वी के समान चले जाते थे। अब आपको देश-भ्रमण तथा अध्ययन करने की इच्छा हुई। अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए अध्ययन करते रहे। जर्मनी तथा अमेरिका से बहुत-सी पुस्तकें मंगवाई, जो शास्त्रों के सम्बन्ध में थी। जब लाला लाजपतराय को देश-निर्वासन का दण्ड मिला था, उस समय आप लाहौर में

थे। वहां आपने एक समाचार-पत्र को सम्पादकीय के लिए डिक्लेरेशन दाखिल किया। डिप्टी कमिश्नर उस समय किसी के भी समाचार-पत्र के डिक्लेरेशन को स्वीकार न करता था। जब आपसे भेंट हुई, तो वह बड़ा प्रभावित हुआ और उसने डिक्लेरेशन मंजूर कर लिया। अखबार का पहला ही अग्रलेख 'अंग्रेजों को चेतावनी' के नाम से निकला। लेख इतना उत्तेजनापूर्ण था कि थोड़ी देर में ही समाचार-पत्र की सब प्रतियां बिक गई और जनता के अनुरोध पर उसी अंक का दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। डिप्टी कमिश्नर के पास रिपोर्ट हुई। उसने आपको दर्शनार्थ बुलाया। वह बड़ा क्रुद्ध था। लेख को पढ़कर कांपता, और क्रोध में आकर मेज पर हाथ दे मारता था। किन्तु अन्तिम शब्दों को पढ़कर चुप हो जाता। उस लेख के कुछ शब्द यों थे कि ''यदि अंग्रेज अब भी न समझेंगे तो वह दिन दूर नहीं कि सन् 1857 के दृश्य फिर दिखाई दें और अंग्रेजों के बच्चें को कत्ल किया जाए, उनकी रमणियों की बेइज्जती हो,'' इत्यादि। किन्तु 'यह सब स्वप्न है यह सब स्वप्न है' इन्हीं शब्दों को पढ़कर डिप्टी कमिश्नर कहता है कि हम तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते।

स्वामी सोमदेव भ्रमण करते हुए बम्बई पहुंचे। वहां आपके उपदेशों को सुनकर जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। एक व्यक्ति, जो श्रीयुत अबुल कलाम आजाद के बड़े भाई थे, आपका व्याख्यान सुनकर मोहित हो गए। वह आपको अपने घर ले गए। इस समयतक आप गेरुआ कपड़ा न पहनते थे। केवल एक लुंगी और कुरता पहनते थे और साफा बांधते थे। श्रीयुत अब्दुल कलाम आजाद के पूर्वज अरब के निवासी थे। आपके पिता के बम्बई में बहुत से मुरीद थे और कथा की तरह कुछ आर्थिक ग्रन्थ पढ़ने पर हजारों रुपये चढ़ावे में आया करते थे। वह सज्जन इतने मोहित हो गए कि उन्होंने धार्मिक कथाओं का पाठ करने के लिए जाना ही छोड़ दिया। वह दिन-रात आपके पास बैठे रहते। जब आप उनसे कहीं जाने को कहते तो वह रोने लगते और कहते कि मैं तो आपके आत्मिक ज्ञान के उपदेशों पर मोहित हूं। मुझे संसार में किसी वस्तु की इच्छा नहीं। आपने एक दिन नाराज होकर उनके धीरे से चपत मार दी जिससे वे दिन-भर रोते रहे। उनको घर वालों तथा शिष्यों ने बहुत समझाया किन्तु वह धार्मिक कथा न कहने जाते। यह देखकर उनके मुरीदों को बड़ा क्रोध आया कि हमारे धर्मगुरु एक काफिर के चक्कर में फंस

गए हैं। एक संध्या को स्वामीजी अकेले समुद्र तट पर भ्रमण करने गए थे कई मुरीद मकान पर बन्दूक लेकर स्वामीजी को मार डालने के लिए आए। यह समाचार जानकर उन्होंने स्वामीजी के प्राणों का भय देख स्वामीजी से बम्बई छोड़ देने की प्रार्थना की। प्रातःकाल एक स्टेशन पर स्वामीजी को तार मिला कि आपके प्रेमी श्रीयुत अबुल कलाम आज़ाद के भाई साहब ने आत्महत्या कर ली। तार पाकर आपको बड़ा क्लेश हुआ। जिस समय आपको इन बातों का स्मरण हो आता था तो बड़े दुःखी होते थे। मैं एक संध्या के समय आपके निकट बैठा था, अंधेरा काफी हो गया था। स्वामीजी ने बड़ी गहरी सांस जी। मैंने चेहरे की ओर देखा तो आंखों से आंसू बह रहे थे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कई घण्टे प्रार्थना की, तब आपने उपरोक्त विवरण सुनाया।

अंग्रेजी की योग्यता आपकी बड़ी उच्चकोटि की थी। आपको शास्त्र विषयक ज्ञान बड़ा गम्भीर था। आप बड़े निर्भीक वक्ता था। आपकी योग्यता को देखकर एक बार मद्रास की कांग्रेस कमेटी ने आपको अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस का प्रतिनिधि चुनकर भेजा था। आगरा की आर्यमित्र-सभा के वार्षिकोत्सव पर आपके व्याख्यानों को श्रवण कर राजा महेन्द्रप्रतापजी बड़े मुग्ध हुए थे। राजा साहब ने आपके पैर छुए और आपको अपनी कोठी में लिवा ले गए। उस समय से राजा साहब बहुधा आपके उपदेश सुना करते और आपको अपना गुरु मानते थे। इतना साफ निर्भीक बोलने वाला मैंने आज तक नहीं देखा। सन् 1913 ई. में मैंने आपका पहला व्याख्यान शाहजहांपुर में सुना था। आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर आप पधारे थे। उस समय आप बरेली में निवास करते थे। आपका शरीर बहुत कृश था, क्योंकि आपको एक अजीब रोग हो गया था। आप जब शौच जाते थे, तब आपके खून गिरता था। कभी दो छटांक, कभी चार छटांक और कभी-कभी तो एक सेर तक खून गिर जाता था। बवासीर आपको नहीं थी। ऐसा कहते थे कि किसी प्रकार योग की क्रिया बिगड़ जाने से पेट की आंत में कुछ विकार उत्पन्न हो गया। आंत सड़ गई। पेट चिरवाकर आंत कटवानी पड़ी और तभी से यह रोग हो गया था। बड़े-बड़े वैद्य- डॉक्टरों की औषधि की किन्तु कुछ लाभ न हुआ। इतने कमजोर होने पर भी जब व्याख्यान देते तो इतने जोर से बोलते थे कि तीन-चार फर्लांग से आपका व्याख्यान साफ सुनाई देता था। दो-तीन वर्षों तक आपको हर साल आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर

बुलाया जाता। सन् 1915 ई. में कतिपय सज्जनों की प्रार्थना पर आप आर्य-समाज मंन्दिर शाहजहांपुर में ही निवास करने लगे। इसी समय से मैंने आपकी सेवा-सुश्रुषा में समय व्यतीत करना आरम्भ कर दिया।

स्वामीजी मुझे धार्मिक तथा राजनीतिक उपदेश देते थे और इस प्रकार की पुस्तके पढ़ने का भी आदेश करते थे। राजनीति में भी आपका ज्ञान उच्च कोटि का था। लाला हरदयाल से आपका बहुत परामर्श होता था। एक बार महात्मा मुंशीरामजी (स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी) को आपने पुलिस के प्रकोप से बचाया। आचार्य रामदेवजी तथा श्रीयुत कृष्णजी से आपका बड़ा स्नेह था। राजनीति में आप मुझसे अधिक खुलते न थे। आप मुझसे बहुधा कहा करते थे कि एण्ट्रेन्स पास कर लेने के बाद यूरोप यात्रा अवश्य करना। इटली जाकर महात्मा मेज़िनी की जन्मभूमि के दर्शन अवश्य करना। सन् 1916 ई. में लाहौर षड्यंत्र का मामला चला। मैं समाचार-पत्रों में उसका सब वृतान्त बड़े चाव से पढ़ा करता था। श्रीयुत भाई परमानन्दजी में मेरी बड़ी श्रद्धा थी, क्योंकि उनकी लिखी हुई 'तवारीख हिन्द' पढ़कर मेरे हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। लाहौर षड्यंत्र का फैसला अखबारों में छपा। भाई परमानन्दजी को फांसी की सज़ा पढ़कर मेरे शरीर में आग लग गई। मैंने विचारा कि अंग्रेज बड़े अत्याचारी हैं, इनके राज्य में न्याय नहीं, जो इतने बड़े महानुभाव को फांसी की सज़ा का हुक्म दे दिया। मैंने प्रतिज्ञा की कि इसका बदला अवश्य लूंगा। जीवन भर अंग्रेजी राज्य को विध्वंस करने का प्रयत्न करता रहूंगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर चुकने के पश्चात् मैं स्वामीजी के पास आया। सब समाचार सुनाए और अखबार दिया। अखबार पढ़कर स्वामीजी भी बड़े दुःखित हुए। तब मैंने अपनी प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में कहा। स्वामीजी कहने लगे कि प्रतिज्ञा करना सरल है, किन्तु उस पर दृढ़ रहना कठिन है। मैंने स्वामीजी को प्रणाम कर उत्तर दिया कि यदि श्री चरणों की कृपा बनी रहेगी तो प्रतिज्ञा-पूर्ति में किसी प्रकार की त्रुटि न करूंगा। उस दिन से स्वामीजी कुछ-कुछ खुले। आप बहुत-सी बातें बताया करते थे। उसी दिन से मेरे क्रांतिकारी जीवन का सूत्रपात हुआ। यद्यपि आप आर्यसमाज के सिद्धांतों को सर्वप्रकारेण मानते थे किन्तु परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ तथा महात्मा कबीरदास के उपदेशों का वर्णन प्रायः किया करते थे।

धार्मिक तथा आत्मिक जीवन में जो दृढ़ता मुझ में उत्पन्न हुई, वह स्वामीजी महाराज के सदुपदेशों का परिणाम है। आपकी दया से ही मैं ब्रह्मचर्य पालन में सफल हुआ। आपने मेरे भविष्य जीवन के सम्बन्ध में जो-जो बातें कहीं थी, वे अक्षरशः सत्य हुई। आप कहा करते थे कि दुःख है कि यह शरीर न रहेगा और तेरे जीवन में बड़ी विचित्र-विचित्र समस्याएं आएंगी, जिनको सुलझाने वाला कोई न मिलेगा। यदि यह शरीर नष्ट न हुआ, जो असम्भव है, तो तेरा जीवन भी संसार में एक आदर्श जीवन होगा। मेरा दुर्भाग्य था कि जब आपके अंतिम दिन बहुत निकट आ गए, तब आपने मुझे योगाभ्यास सम्बन्धी कुछ क्रियाएं बताने की इच्छा प्रकट की, किन्तु आप इतने दुर्बल हो गए थे कि ज़रा-सा परिश्रम करने या दस-बीस कदम चलने पर ही आपको बेहोशी आ जाती थी।आप फिर कभी इस योग्य न हो सके कि कुछ देर बैठकर कुछ क्रियाएं मुझे बता सकते। आपने कहा था, मेरा योग भ्रष्ट हो गया। प्रयत्न करूंगा, मरण के समय पास रहना, मुझे पूछ लेना कि मैं कहां जन्म लूंगा। सम्भव है कि मैं बता सकूं। नित्य-प्रति सेर-आधा सेर खून गिर जाने पर भी आप कभी क्षुब्ध न होते थे। आपकी आवाज भी कभी कमजोर न हुई। जैसे अद्वितीय आप वक्ता थे, वैसे ही आप लेखक भी थे। आपके कुछ लेख तथा पुस्तकें आपके एक भक्त के पास थीं, जो यों ही नष्ट हो गई। कुछ लेख तथा पुस्तकें श्री स्वामी अनुभवानन्दजी साथ ले गए थे। कुछ लेख आपने प्रकाशित भी कराए थे। लगभग 48 वर्ष की उम्र में आपने इहलोक त्याग दिया। इस स्थान पर मैं महात्मा कबीरदास के कुछ अमृत वचनों का उल्लेख करता हूं, जो मुझे बड़े प्रिय तथा शिक्षाप्रद मालूम हुए-

'कबिरा' शरीर सराय है भाड़ा देके बस।
जब भठियारी खुश रहै तब जीवन का रस।।1।।

'कबिरा' क्षुधा है कूकरी करत भजन में भंग।
याको टुकरा डारि के सुमिरन करो निशंक।।2।।

नींद निसानी मीच की उट्ठ 'कबिरा' जाग।
और रसायन त्याग के नाम रसायन चाख।।3।।

चलना है रहना नहीं चलना बिसवें बीस।
'कबिरा' ऐसे सुहाग पर कौन बंधावे सीस।।4।।

अपने-अपने चोर को सब कोई डारे मारि।

मेरा चोर जो मोहिं मिले सर्बस डारूं वारि।।5।।

कहे सुने की है नहीं देखा देखी बात।

दुल्हा दुल्हिन मिलि गये सूनी परी बारात।।6।।

नैनन की करि कोठरी पुतरी पलंग बिछाय।

पलकन की चिक डारि के पीतम लेह रिझाय।।7।।

प्रेम पियाला जो पिये सीस दच्छिना देय।

लोभी सीस न दै सके, नाम प्रेम का लेय।।8।।

सीस उतारे भुंइ धरै, तापे राखै पांव।

दास 'कबिरा' यूं कहै ऐसा होय तो आव।।9।।

निन्दक नियरे राखिये आंगन कुटी छवाय।

बिन पानी साबुन बिना उज्जवल करे सुभाय।।10।।

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन

वर्तमान समय में इस देश की कुछ ऐसी दुर्दशा हो रही है कि जितने धनी तथा गणमान्य व्यक्ति हैं उनमें 99 प्रतिशत ऐसे हैं जो अपनी सन्तानरूपी अमूल्य धनराशि को अपने नौकर तथा नौकरानियों के हाथ में सौंप देते हैं। उनकी जैसी इच्छा हो, वे उन्हें बनावें। मध्यम श्रेणी के व्यक्ति भी अपने व्यवसाय तथा नौकरी इत्यादि में फंसे रहने के कारण सन्तान की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सकते। सस्ता काम चलाऊ नौकर या नौकरानी रखते हैं और उन्हीं पर बाल-बच्चों का भार सौंप देते हैं। ये नौकर बच्चों को नष्ट करते हैं। यदि कुछ भगवान् की दया हो गई और बच्चे नौकर-नौकरानियां के हाथ से बच गए तो मुहल्ले की गन्दगी से बचना बड़ा कठिन है। रहे-सहे स्कूल में पुहंचकर पारंगत हो जाते हैं। कॉलिज में पहुंचते-पहुंचते आजकल के नवयुवकों के सोलहों संस्कार हो जाते हैं। कॉलिज में पहुंचकर ये लोग समाचार-पत्रों में दिए हुए औषधियों के विज्ञापन देख-देखकर दवाइयों को मंगा-मंगाकर धन नष्ट करना आरम्भ करते हैं। 95 प्रतिशत की आंखें खराब हो जाती हैं। कुछ को शारीरिक दुर्बलता तथा कुछ को फैशन के विचार से ऐनक लगाने की बुरी आदत पड़ जाती है। सौन्दर्योपासना तो उनकी रग-रग में कूट-कूटकर भर जाती है। शायद ही कोई विद्यार्थी ऐसा हो जिसकी प्रेमकथाएं प्रचलित न हों। ऐसी अजीब-अजीब बातें सुनने में आती हैं कि जिनका उल्लेख करने से भी ग्लानि होती है। यदि कोई विद्यार्थी सच्चरित्र

बनने का प्रयत्न भी करता है और स्कूल या कॉलिज जीवन में उसे कुछ अच्छी शिक्षा भी मिल जाती है, तो परिस्थितियां जिनमें उसे निर्वाह करना पड़ता है, उसे सुधरने नहीं देतीं। वे विचारते हैं कि थोड़ा सा इस जीवन का आनन्द ले लें, यदि कुछ खराबी पैदा हो गई तो दवाई खाकर या पौष्टिक पदार्थों का सेवन करके उसे दूर कर लेंगे। यह उनकी बड़ी भारी भूल है। अंग्रेजी में कहावत है। (**Only for once and for ever.**) तात्पर्य यह है कि यदि एक समय कोई बात पैदा हुई, मानो सदा के लिए रास्ता खुल गया। दवाईयां कोई लाभ नहीं पहुंचाती। अण्डों का जूस, मछली का तेल, मांस आदि भी व्यर्थ सिद्ध होते हैं। सबसे आवश्यक बात चरित्र सुधारना ही होती है। विद्यार्थियों तथा उनके अध्यापकों को उचित है कि ये देश की दुर्दशा पर दया करके अपने चरित्र को सुधारने का प्रयत्न करें। सार में ब्रह्मचर्य ही संसारी शक्तियों कामूल है बिना ब्रह्मचर्य-व्रत पालन किए मनुष्य-जीवन नितान्त शुष्क तथा नीरस प्रतीत होता है। विद्या, बल तथा बुद्धि सब ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही प्राप्त होते हैं। संसार में जितने बड़े आदमी हुए हैं, उनमें से अधिकतर ब्रह्मचर्य व्रत के प्रताप से ही बड़े बने और सैकड़ों-हज़ारों वर्ष बाद भी उनका यशगान करके मनुष्य अपने आपको कृतार्थ करते हैं। ब्रह्मचर्य की महिमा यदि जाननी हो तो परशुराम, राम, लक्ष्मण, कृष्ण, भीष्म, ईसा, मेज़िनी, बंदा, रामकृष्ण, दयानन्द तथा राममूर्ति की जीवनियों का अध्ययन करो।

जिन विद्यार्थियों को बाल्यावस्था में किसी कुटेव की बान पड़ जाती है, जो बुरी संगत में पड़कर अपना आचरण बिगाड़ लेते हैं और फिर अच्छी शिक्षा पाने पर आचरण सुधारने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु सफल मनोरथ नहीं होते, उन्हें भी निराश न होना चाहिए। मनुष्य जीवन अभ्यासों का एक समूह है। मनुष्य के मन में भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक विचार तथा भाव उत्पन्न होते रहते हैं। उनमें जो उसे रुचिकर होते हैं, वे प्रथम कार्य-रूप में परिणत होते हैं। क्रिया के बार-बार होने से ऐच्छिक भाव निकल जाता हैं और उसमें तात्कालिक प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है। इन तात्कालिक प्रेरक क्रियाओं को, जो पुनरावृत्ति का फल है, 'अभ्यास' कहते हैं। मानवी चरित्र इन्हीं अभ्यासों द्वारा बनता है। अभ्यास से तात्पर्य आदत, स्वभाव, बान है। अभ्यास अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के होते हैं। यदि हमारे मन में निरन्तर अच्छे विचार उत्पन्न हों, तो उनका फल अच्छे अभ्यास होंगे और यदि मन

बुरे विचारों से लिप्त रहे, तो निश्चय रूपेण अभ्यास बुरे होंगे। मन इच्छाओं का केन्द्र है। उन्हीं की पूर्ति के लिए मनुष्य को प्रयत्न करना पड़ता है। अभ्यासों के बनने में पैतृक संस्कार, अर्थात् माता-पिता के अभ्यासों के अनुसार अनुकरण ही बच्चों के अभ्यास का सहायक होता है। दूसरे, जैसी परिस्थितियों में निवास होता है, वैसे ही अभ्यास भी पड़ते हैं। तीसरे, प्रयत्न से अभ्यासों का निर्माण होता है। यह शक्ति इतनी प्रबल हो सकती है कि इसके द्वारा मनुष्य पैतृक संसार तथा परिस्थितियों को भी जीत सकता है। हमारे जीवन का प्रत्येक कार्य अभ्यासों के अधीन है। यदि अभ्यासों द्वारा हमें कार्य में सुगमता न प्रतीत होती, तो हमारा जीवन बड़ा दुःखमय प्रतीत होता। लिखने का अभ्यास, वस्त्र पहनना, पठन-पाठन इत्यादि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। यदि हमें प्रारम्भिक समय की भांति सदैव सावधानी से काम लेना हो, तो कितनी कठिनता प्रतीत हो! इसी प्रकार बालक का खड़ा होना और चलना भी है कि उस समय वह कितना कष्ट अनुभव करता है, किन्तु एक मनुष्य मीलों तक चला जाता है। बहुत लोग तो चलते-चलते नींद भी ले लेते हैं। जैसे जेल में बाहरी दीवार पर घड़ी में चाबी लगाने वाले, जिन्हें बराबर छः घण्टे चलना होता है, वे बहुधा चलते-चलते सो लिया करते हैं।

मानसिक भावों को शुद्ध रखते हुए अन्तःकरण को उच्च विचारों में बलपूर्वक संलग्न करने का अभ्यास करने से अवश्य सफलता मिलेगी। प्रत्येक विद्यार्थी या नवयुवक की, जो कि ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन की इच्छा रखता है, उचित है कि अपनी दिनचर्या निश्चित करे। खान-पानादि का विशेष ध्यान रखे। महात्माओं के जीवन-चरित्र तथा चरित्र-गठन सम्बन्धी पुस्तकों का अवलोकन करे। प्रेमालाप तथा उपन्यासों में समय नष्ट न करे। खाली समय अकेला न बैठे। जिस समय कोई बुरे विचार उत्पन्न हों, तुरंत शीतल जलपान कर घूमने लगे या किसी अपने से बड़े के पास जाकर बातचीत करने लगे। अश्लील (इश्क भरी) गजलों शेरों तथा गानों को न पढ़े और न सुने। स्त्रियों के दर्शन से बचता रहे। माता तथा बहन से भी एकान्त में न मिले। सुन्दर सहपाठियों या अन्य विद्यार्थियों से स्पर्श तथा आलिंगन की भी आदत न डाले।

विद्यार्थी प्रातःकाल सूर्य उदय होने से एक घण्टा पहले शैय्या त्यागकर शौचादि से निवृत्त हो व्यायाम करें या वायु-सेवनार्थ बाहर मैदान में जावे। सूर्य उदय होने के पांच-दस मिनट पूर्व स्नान से निवृत होकर

यथा-विश्वास परमात्मा का ध्यान करे। सदैव कुएं के ताजे जल से स्नान करें। यदि कुएं का जल प्राप्त न हो तो जाड़ों में जल को थोड़ा-सा गुनगुना कर ले और गर्मियों में शीतल जल से स्नान करे। स्नान करने के पश्चात् एक खुरखुरे तौलिए या अंगोछे से शरीर खूब मलें। उपासना के पश्चात् थोड़ा-सा जलपान करे। कोई फल, शुष्क मेवा, दुग्ध अथवा सबसे उत्तम यह है कि गेहूं का दलिया रंधवाकर यथारूचि मीठा या नमक डालकर खावें। फिर अध्ययन करे और दस बजे से ग्यारह बजे के मध्य में भोजन कर लें। भोजन में मांस, मछली, चरपरे, खट्टे गरिष्ट, बासी तथा उत्तेजक पदार्थो का त्याग करें। प्याज, लहुसन, लाल मिर्च, आम की खटाई और अधिक मसालेदार भोजन कभी न खावे। सात्विक भोजन करे। शुष्क भोजन का भी त्याग करे। जहां तक हो सके सब्जी अर्थात् साग अधिक खावें। भोजन खूब चबा-चबा कर किया करे। अधिक गरम या अधिक ठण्डा भोजन भी वर्जित है। स्कूल अथवा कॉलिज से आकर थोड़ा-सा आराम करके एक घण्टा लिखने का काम करके खेलने के लिए जावे। मैदान में थोड़ा-सा घूमे भी। घूमने के लिए चौक बाजार की गन्दी हवा में जाना ठीक नहीं। स्वच्छ वायु का सेवन करे। संध्या समय भी शौच अवश्य जावे। थोड़ा-सा ध्यान करके हल्का-सा भोजन कर ले। यदि हो सके तो रात्रि के समय केवल दुग्ध पीने का अभ्यास डाले और फल खा लिया करे। स्वप्न दोषादिक व्याधियां केवल पेट के भारी होने से होती हैं जिस दिन भोजन भली-भांति नहीं पचता, उसी दिन विकार हो जाता है, या मानसिक भावनाओं की शुद्धता से निद्रा ठीक न आकर स्वप्नावस्था में वीर्यपात हो जाता है। रात्रि के समय साढ़े दस बजे तक पठन-पाठन कर पुनः सो जावे। सदैव खुली हवा में सोना चाहिए। बहुत मुलायम और चिकने बिस्तर पर न सोवें। जहां तक हो सके, लकड़ी के तख्त पर कम्बल या गाढ़े की चादर बिछाकर सोवे। अधिक पाठ न करना हो तो साढ़े नौ या दस बजे सो जावें। प्रातः काल साढ़े तीन या चार बजे उठकर कुल्ला करके शीतल जलपान करें और शौच से निवृत्त हो पठन-पाठन करे। सूर्योदय के निकट फिर नित्य की भांति व्यायाम या भ्रमण करे। सब व्यायामों में दण्ड-बैठक सर्वोतम है। जहां जी चाहा, व्यायाम कर लिया। यदि हो सके तो प्रोफेसर राममूर्ति की विधि से दण्ड-बैठक करे। प्रोफेसर साहब की रीति विद्यार्थियों के लिए लाभदायक है। थोड़े समय में ही पर्याप्त परिश्रम हो जाता है। दण्ड बैठक

के अलावा शीर्षासन और पद्मासन का भी अभ्यास करना चाहिए और अपने कमरे में वीरों और महात्माओं के चित्र रखने चाहिए।

thearyasamaj.org

स्वदेश-प्रेम

पूज्यपाद श्री स्वामी सोमदेव का देहांत हो जाने के पश्चात् जब मैं अंग्रेजी के नवें दर्जे में आया, कुछ स्वदेश सम्बन्धी पुस्तकों का अवलोकन आरम्भ हुआ। शाहजहांपुर में सेवा-समिति की नींव पं. श्रीराम वाजपेयी जी ने डाली, उसमें भी बड़े उत्साह से कार्य किया। दूसरों की सेवा का भाव हृदय में हुआ, कुछ समझ में आने लगा कि वास्तव में देशवासी बड़े दुःखी हैं। उसी वर्ष मेरे पड़ोसी तथा मित्र जिनसे मेरा स्नेह अधिक था, एण्ट्रेस की परीक्षा पास करके कॉलेज में शिक्षा पाने चले गए। कॉलेज की स्वतंत्र वायु में उनके हृदय में भी स्वदेश के भाव उत्पन्न हुए। उसी साल लखनऊ में अखिल भारत वर्षीय कांग्रेस का उत्सव हुआ। मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ। कतिपय सज्जनों से भेंट हुई। देश-दशा का कुछ अनुमान हुआ और निश्चय हुआ कि देश के लिए कोई विशेष कार्य किया जाए। देश में जो कुछ हो रहा है उसकी उत्तरदायी सरकार ही है। भारतवासियों के दुःख तथा दुर्दशा की जिम्मेदारी गवर्नमेंट पर ही है। अतएव सरकार को पलटने का प्रयत्न करना चाहिए। मैंने भी इस प्रकार के विचारों में योग दिया। कांग्रेस में महात्मा तिलक के पधारने की खबर थी, इस कारण से गरम दल के अधिक व्यक्ति आए हुए थे। कांग्रेस के सभापति का स्वागत बड़ी धूमधाम से हुआ था। उसके दूसरे दिन लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की स्पेशल गाड़ी आने का समाचार मिला। लखनऊ स्टेशन पर बड़ा जमाव था। स्वागतकारिणी समिति के प्रधान पं. जगत नारायणजी थे। अन्य गणमान्य सदस्यों में पं. गोकरणनाथजी तथा अन्य उदार दल वालों (माडरेटों) की संख्या अधिक थी। माडरेटों को भय था कि यदि लोकमान्य की सवारी शहर से निकाली गई तो कांग्रेस के प्रधान से भी अधिक सम्मान होगा, जिसे वे उचित न समझते थे। अतः उन सबने प्रबंध ा किया कि जैसे ही लोकमान्य तिलक पधारें, उन्हें मोटर में बिठाकर शहर के बाहर-बाहर निकाल ले जाएं। इन सब बातों को सुनकर नवयुवकों को बड़ा खेद हुआ। कॉलेज के एक एम.ए. विद्यार्थी ने प्रबंध का विरोध करते हुए कहा कि लोकमान्य का स्वागत अवश्य होना चाहिए। मैंने भी इस विद्यार्थी के कथन में सहयोग दिया। इसी प्रकार कई नवयुवकों ने निश्चय किया कि जैसे

लोकमान्य स्पेशल से उतरें उन्हें घेरकर गाड़ी में बिठा लिया जाए और उसकी सवारी निकाली जाए। स्पेशल आने पर लोकमान्य सबसे पहले उतरे। स्वागतकारिणी के सदस्यों ने कांग्रेस के स्वयं-सेवकों का घेरा बनाकर लोकमान्य को मोटर में जा बिठाया। मैं तथा एक एम.ए. का विद्यार्थी मोटर के आगे लेट गए। सब कुछ समझाया गया, मगर किसी की एक न सुनी। हम लोगों की देखा-देखी और कई नवयुवक भी मोटर के सामने आकर बैठ गए। उस समय मेरे उत्साह का यह हाल था कि मुंह से बात न निकलती थी, केवल रोता था और कहता, 'मोटर मेरे ऊपर से निकाल ले जाओ।' स्वागतकारिणी के सदस्यों से कांग्रेस के प्रधान को ले जाने वाली गाड़ी मांगी, उन्होंने देना स्वीकार न किया। एक नवयुवक ने मोटर का टायर काट दिया। लोकमान्यजी बहुत कुछ समझाते किन्तु वहां सुनता कौन? एक किराये की गाड़ी से घोड़े खोलकर लोकमान्य के पैरों पर सिर रख उन्हें उसमें बिठाया और सबने मिलकर हाथों से गाड़ी खींचनी शुरू की। इस प्रकार लोकमान्य का इस धूमधाम से स्वागत हुआ कि किसी नेता की उतने जोरों से सवारी न निकाली गई। लोगों के उत्साह का यह हाल था कि कहते थे कि एक बार गाड़ी में हाथ लगा लेने दो, जीवन सफल हो जाए। लोकमान्य पर फूलों की जो वर्षा की जाती थी, उसमें से जो फूल नीचे गिर जाते थे उन्हें उठाकर लोग पल्ले में बांध लेते थे। जिस स्थान पर लोकमान्य के पैर पड़ते, वहां की धूल सबके माथों पर दिखाई देती। कुछ उस धूल को भी अपने रूमाल में बांध लेते थे। इस स्वागत से माडरेटों की बड़ी भद्द हुई।

क्रांतिकारी आंदोलन

कांग्रेस के अवसर पर लखनऊ में ही मालूम हुआ कि एक गुप्त समिति है, जिसका मुख्य उद्देश्य क्रांतिकारी आंदोलन में भाग लेना है। यहीं से क्रांतिकारी समिति की चर्चा सुनकर कुछ समय बाद मैं भी क्रांतिकारी समिति के कार्य में योग देने लगा। अपने एक मित्र द्वारा क्रांतिकारी समिति का सदस्य हो गया। थोड़े ही दिन में मैं कार्यकारिणी का सदस्य बना लिया गया। समिति में धन की बहुत कमी थी, उधर हथियारों की भी जरूरत थी। जब घर वापस आया, तब विचार हुआ कि एक पुस्तक प्रकाशित हो जाए और उसमें जो लाभ हो उससे हथियार खरीदें जाएं। पुस्तक प्रकाशित कराने के लिए धन कहां से आए? विचार करते-करते मुझे एक चाल सूझी। मैंने

अपनी माताजी से कहा कि मैं कुछ रोजगार करना चाहता हूं उसमें अच्छा लाभ होगा। यदि रुपये दे सकें तो बड़ा अच्छा हो। उन्होंने 200 रुपये दिए 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली' नामक पुस्तक लिखी जा चुकी थी। प्रकाशित होने का प्रबंध हो गया। थोड़े रुपयों की जरूरत और पड़ी, मैंने माताजी से 200 रुपये और लिए। पुस्तक की बिक्री हो जाने पर माताजी के रुपये पहले चुका दिए। लगभग 200 रुपये और भी बचे। पुस्तकें अभी बिकने के लिए बहुत बाकी थीं। उसी समय 'देशवासियों के नाम संदेश' नामक एक पर्चा छपवाया गया, क्योंकि पं. गेंदालालजी, ब्रह्मचारीजी के दल-सहित ग्वालियर में गिरफ्तार हो गए थे। अब सब विद्यार्थियों ने अधिक उत्साह के साथ काम करने की प्रतिज्ञा की। पर्चे कई जिलों में लगाए गए और बांटे गए। पर्चे तथा 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली' पुस्तक दोनों संयुक्त प्रांत की सरकार ने जब्त कर ली।

हथियारों की खरीद

अधिकतर लोगों का विचार है कि देशी राज्यों में हथियार (रिवाल्वर, पिस्तौल तथा राइफलें इत्यादि) सब कोई रखता है और बन्दूक इत्यादि पर लाइसेंस नहीं होता। अतएव इस प्रकार के अस्त्र बड़ी सुगमता से प्राप्त हो सकते हैं। देशी राज्यों में हथियारों पर कोई लाइसेंस नहीं, यह बात बिल्कुल ठीक है और हर एक को बन्दूक इत्यादि रखने की आजादी भी है। किन्तु कारतूसी हथियार बहुत कम लोगों के पास रहते हैं, जिसका कारण यह है कि कारतूस या विलायती बारूद खरीदने पर पुलिस में सूचना देनी होती है। राज्य में तो कोई ऐसी दुकान नहीं होती, जिस पर कारतूस या कारतूसी हथियार मिल सकें। यहां तक कि विलायती बारूद और बन्दूकों को टोपी नहीं मिलती, क्योंकि ये सब चीजें बाहर से मंगानी पड़ती हैं। जितनी चीजें इस प्रकार की बाहर से मंगाई जाती हैं, उनके लिए रेजिडेंट (गर्वनमेंट का प्रतिनिधि, जो रियासतों में रहता है) की आज्ञा लेनी पड़ती है। बिना रेजिडेंट की मंजूरी के हथियारों संबंधी कोई चीज़ बाहर से रियासत में नहीं आ सकती। इस कारण इस खटखट से बचने के लिए रियासत में ही टोपीदार बन्दूकें बनती हैं, और देशी बारूद भी वहीं के लोग शोरा, गंधक तथा कोयला मिलाकर बना लेते हैं बन्दूक की टोपी चुरा-छिपाकर मंगा लेते हैं। नहीं तो टोपी के स्थान यर भी मनसल और पुटाश। अलग- अलग घिसकर दोनों को मिलाकर उसी से

काम चलाते हैं। हथियार रखने की आजादी होने पर भी ग्रामों में किसी एक दो धनी या जमीदार के यहां टोपीदार बन्दूक या टोपीदार छोटे पिस्तौल होते हैं, जिनमें ये लोग रियासत की बनी हुई बारूद काम में लाते हैं। यह बारूद बरसात में सील खा जाती है और काम नहीं देती। एक बार मैं अकेला रिवाल्वर खरीदने गया। उस समय समझता था कि हथियारों की दुकान होगी, सीधे जाकर दाम देंगे और रिवाल्वर लेकर चले आएंगे। प्रत्येक दुकान देखी, कहीं किसी पर बन्दूक इत्यादि का विज्ञापन या कोई दूसरा निशान न पाया। फिर एक तांगे पर सवार होकर शहर घूमा। तांगे वाले ने पूछा कि क्या चाहिए? मैंने उससे डरते-डरते अपना उद्देश्य कहा। उसी ने दो-तीन दिन घूम-फिरकर एक टोपीदार रिवाल्वर खरीदवा दिया और देशी बनी हुई बारूद एक दुकान से दिला दी। मैं कुछ जानता तो था नहीं एकदम दो सेर बारूद खरीदी, जो घर पर सन्दूक में रखे-रखे बरसात में सील खाकर पानी हो गई। मुझे बड़ा दुःख हुआ दूसरी बार जब मैं क्रान्तिकारी समिति का सदस्य हो चुका था, तब दूसरे सहयोगियों को सम्मति से दो सौ रुपये लेकर हथियार खरीदने गया। इस बार मैंने बहुत प्रयत्न किया तो एक कबाड़ी की सी दुकान पर कुछ तलवारें, खंजर, कटार तथा दो-चार टोपीदार बन्दूक रखी देखी। मैंने बड़ा साहस करके उससे पूछा कि क्या आप ये चीजें बेचते हैं, उसने जब हां में उत्तर दिया तो मैंने दो-चार चीजें देखीं। दाम पूछे। इसी प्रकार वार्तालाप करके पूछा कि क्या आप कारतूसी हथियार नहीं बेचते या और कहीं नहीं बिकते तब उसने सब विवरण सुनाया। उस समय उसके पास टोपीदार एक नली के छोटे-छोटे दो पिस्तौल थे। मैंने वे दोनों खरीद लिए एक कटार भी खरीदी। उसने वादा किया कि यदि आप फिर आएं तो कुछ कारतूसी हथियार जुटाने का प्रयत्न किया जाए। लालच बुरी बला है, इस कहावत के अनुसार तथा इसलिए भी कि हम लोगों को कोई दूसरा ऐसा जरिया भी न था, जहां से हथियार मिल सकते, मैं कुछ दिनों बाद फिर गया। इस समय उसने एक बड़ा सुन्दर कारतूसी रिवाल्वर दिया। कुछ पुराने कारतूस भी दिए। रिवाल्वर था तो पुराना किन्तु बड़ा ही उत्तम था। दाम उसके नए के बराबर देने पड़े। अब उसे विश्वास हो गया कि ये हथियारों के खरीददार हैं। उसने प्राणपण से चेष्टा की और कई रिवाल्वर तथा दो-तीन राइफलें जुटाई। उसे भी अच्छा लाभ हो जाता था। प्रत्येक वस्तु पर वह बीस-तीस रुपये मुनाफा ले लेता था।

इसके बाद हमारी संस्था के दो-तीन सदस्य मिलकर गए। दुकानदार ने भी हमारी उत्कृष्ट इच्छा को देखकर इधर-उधर से पुराने हथियारों को खरीद करके उनकी मरम्मत की और नया-सा करके हमारे हाथ बेचना शुरू किया। खूब ठगा। हम लोग कुछ जानते नहीं थे। इस प्रकार अभ्यास करने से कुछ नया-पुराना समझने लगे। एक-दूसरे सिक्लीगर से भेंट हुई। वह स्वयं कुछ नहीं जानता था, किन्तु उसने वचन दिया कि वह कुछ रईसो से हमारी भेंट करा देगा। उसने एक रईस से मुलाकात कराई जिसके पास एक रिवाल्वर था। रिवाल्वर खरीदने की हमने इच्छा प्रकट की। उन महाशय ने उस रिवाल्वर के डेढ़ सौ रुपये माँगे। रिवाल्वर नया था। बड़े कहने-सुनने पर सौ कारतूस उन्होंने दिए और 155 रुपये लिए 150 रुपये उन्होंने 5 रुपये सिक्लीगर को कमीशन के तौर पर देने पड़े। रिवाल्वर चमकता हुआ नया था, समझो अधिक दामों का होगा। खरीद लिया। विचार हुआ कि इस प्रकार ठगे जाने से काम न चलेगा। किसी प्रकार कुछ जानने का प्रयत्न किया जाए। बड़ी कोशिश के बाद कलकत्ता, बम्बई से बन्दूक-विक्रेताओं की लिस्टें मंगाकर देखीं, देखकर आखें खुल गई। जितने रिवाल्वर या बन्दूकें हमने खरीदी थीं, एक को छोड़, सबके दुगुने दाम दिए। 155 रुपये के रिवाल्वर के दाम केवल 30 रुपये ही थे और 10 रुपये के सौ कारतूस, इस प्रकार कुल सामान 40 रुपये का था, जिसके बदले 155 रुपये देने पड़े। बड़ा खेद हुआ। करें तो क्या करें। और कोई दूसरा जरिया भी तो न था।

कुछ समय पश्चात् कारखानों की लिस्टें लेकर तीन-चार सदस्य मिलकर गए। खूब जाँच-खोज की। किसी प्रकार रियासत की पुलिस को पता चल गया। खुफिया पुलिस वाला मुझे मिला, उसने कई हथियार दिलाने का वायदा किया, और वह मुझे पुलिस इंस्पेक्टर के घर ले गया। दैवात् उस समय पुलिस इंस्पेक्टर घर पर मौजूद न थे। उनके द्वार पर एक पुलिस का सिपाही बैठा था, जिसे मैं भली-भाँति जानता था। मुहल्ले में खुफिया पुलिस वाले की आँख बचाकर पूछा कि अमुक घर किसका है? मालूम हुआ पुलिस इंस्पेक्टर का! मैं इतस्ततः करके जैसे-तैसे निकल आया और अति शीघ्र अपने ठहरने का स्थान बदला। उस समय हम लोगों के पास दो राइफलें, चार रिवाल्वर तथा दो पिस्तोल खरीदे हुए मौजूद थे। किसी प्रकार उस खुफिया पुलिस वाले को एक कारीगर से जहाँ पर कि हम लोग अपने हथियारों की मरम्मत कराते

थे, मालूम हुआ कि हममें से एक व्यक्ति उसी दिन जाने वाला था, उसने चारों और स्टेशन पर तार दिलवाए। रेलगाड़ियों को तलाशी ली गई। पर पुलिस की असावधानी के कारण हम बाल-बाल बच गए।

रुपये की चपत बुरी होती है। एक पुलिस सुपरिण्टेडेण्ट के पास एक राइफल थी। मालूम हुआ वे बेचते हैं। हम लोग वहाँ पहुँचे। अपने आपको रियासत का रहने वाला बताया। उन्होंने निश्चय करने के लिए बहुत से प्रश्न पूछे, क्योंकि हम लोग लड़के तो थे ही। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट पेंशनयाफ्ता जाति के मुसलमान थे। हमारी बातों पर उन्हें पूर्ण विश्वास न हुआ था। कहा कि अपने थानेदार से लिखा लाओ कि वह तुम्हें जानता है। मैं गया। जिस स्थान का रहने वाला बताया था, वहाँ के थानेदार का नाम मालूम किया और एक-दो जमींदारों के नाम मालूम करके एक पत्र लिखा कि मैं उस स्थान के रहने वाले अमुक जमींदार का पुत्र हूँ और वे लोग मुझे भली- भाँति जानते हैं उसी पत्र पर जमीदारों के हिन्दी में और पुलिस के दरोगा के अंग्रेजी में हस्ताक्षर बना, पत्र ले जाकर पुलिस कप्तान साहब को दिया। बड़े गौर से देखने के बाद वे बोले, 'मैं थाने में दर्याप्त कर लूँ। तुम्हें भी थाने में चलकर इत्तला देनी होगी कि राइफल खरीद रहे हैं।' हम लोगों ने कहा कि हमने आपके इत्मीनान के लिए इतनी मुसीबत झेली, दस-बारह रुपये खर्च किए, अगर अब भी इत्मीनान न ही तो मज़बूरी है। हम पुलिस में न जाएँगे। राइफल के दाम लिस्ट में 180 रुपये लिखे थे, वह 250 रुपए माँगते थे, साथ में दो सौ कारतूस भी दे रहे थे। कारतूस भरने का सामान भी देते थे, जो लगभग 50 रुपए का होगा। इस प्रकार पुरानी राइफल के नई के समान दाम माँगते थे। हम लोग भी 250 रुपए देते थे। पुलिस कप्तान ने भी विचारा कि पूरे दाम मिल रहे हैं। स्वयं वृद्ध हो चुके थे। कोई पुत्र भी न था। अतएव 250 रुपए लेकर राइफल दी। पुलिस में कुछ पूछने न गए। उन्हीं दिनों राज्य में एक उच्च पदाधिकारी के नौकर से मिलकर उनके यहां से रिवाल्वर चोरी कराया। जिसके दाम लिस्ट में 75 रुपये थे, उसे 100 रुपए में खरीदा। एक माउज़र पिस्तौल भी चोरी कराया, जिसके दाम लिस्ट में उस समय 200 रुपये थे। हमें माउज़र पिस्तौल की प्राप्ति की बड़ी उत्कट इच्छा थी। बड़े भारी प्रयत्न के बाद यह माउज़र पिस्तौल मिला, जिसका मूल्य 300 रुपए देना पड़ा। कारतूस एक भी न मिला। हमारे पुराने मित्र कबाड़ी महोदय के पास

माउज़र पिस्तौल के पचास कारतूस पड़े थे। उन्होंने बड़ा काम दिया हममें से किसी ने भी पहले माउज़र पिस्तौल देखा भी न था। कुछ न समझ सके कि कैसे प्रयोग किया जाता है। बड़े कठिन परिश्रम से उसका प्रयोग समझ में आया।

हमने तीन राइफलें, एक बारह बोर की दोनाली कारतूसी बन्दूक, दो टोपीदार बन्दूकें, तीन टोपीदार रिवाल्वर और पाँच कारतूसी रिवाल्वर खरीदे। प्रत्येक हथियार के साथ पचास या सौ कारतूस भी ले लिए। इन सब में लगभग चार हज़ार रुपए व्यय हुए। कुछ कटार तथा तलवारें इत्यादि भी खरीदी थीं।

मैनपुरी षड्यंत्र

इधर तो हम लोग अपने कार्य में व्यस्त थे, उधर मैनपुरी के एक सदस्य पर लीडरी का भूत सवार हुआ। उन्होंने अपना पृथक् संगठन किया। कुछ अस्त्र-शस्त्र भी एकत्रित हुए। धन की कमी की पूर्ति के लिए एक सदस्य से कहा कि अपने किसी कुटुम्बी के यहां डाका डलवाओ। उस सदस्य ने कोई उत्तर न दिया उसे आज्ञापत्र दिया गया और मार देने की धमकी दे दी गई। वह पुलिस के पास गया। मामला खुला। मैनपुरी में धर-पकड़ शुरू हो गई। हम लोगों को भी समाचार मिला। दिल्ली में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था, विचार किया गया कि 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली' नामक पुस्तक, जो यू.पी. सरकार ने जब्त कर ली थी, कांग्रेस के अवसर पर बेच दी जावे। कांग्रेस के उत्सव पर मैं शाहजहाँपुर की सेवा-समिति के साथ अपनी एम्बुलैंस की टोली लेकर गया था। एम्बुलैंस वालों को प्रत्येक स्थान पर बिना रोके जाने की आज्ञा थी। कांग्रेस-पण्डाल के बाहर खुले रूप में नवयुवक यह कह कर पुस्तक बेच रहे थे-''यू.पी. में जब्त किताब 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली'।''

खुफ़िया पुलिस वालों ने कांग्रेस का कैम्प घेर लिया। सामने ही आर्यसमाज का कैम्प था, वहाँ पर पुस्तक विक्रताओं की पुलिस ने तलाशी लेनी शुरू कर दी। मैंने कांग्रेस कैम्प पर अपने स्वयं-सेवक इसलिए छोड़ दिए कि वो बिना स्वागतकारिणी समिति के मंत्री या प्रधान की आज्ञा पाए किसी पुलिस वाले को कैम्प में न घुसने दें। आर्य-समाज के कैम्प में गया। सब पुस्तकें एक टेंट में जमा थीं, मैंने अपने ओवरकोट में सब पुस्तके लपेटीं, जो

लगभग दो सौ होंगी और उसे कंधे पर डालकर पुलिस वालों के सामने से निकला। मैं वर्दी पहने था, टोपी लगाए हुए था। एम्बुलेंस का बड़ा-सा लाल बिल्ला मेरे हाथ पर लगा हुआ था, किसी ने कोई संदेह भी नहीं किया और पुस्तकें बच गई।

दिल्ली कांग्रेस से लौटकर शाहजहाँपुर आए। वहां भी पकड़- धकड़ शुरू हुई। हम लोग वहाँ से चलकर दूसरे शहर के एक मकान में ठहरे हुए थे। रात्रि के समय मकान मालिक ने बाहर से मकान में ताला डाल दिया ग्यारह बजे के लगभग हमारा एक साथी बाहर से आया। उसने बाहर से ताला पड़ा देख पुकारा। हम लोगों को भी संदेह हुआ। सब-के-सब दीवार पर से उतर कर मकान छोड़ कर चल दिए। अंधेरी रात थी। थोड़ी दूर गए थे कि हठात् की आवाज आई, खड़े हो जाओ, कौन जाता है? हम लोग सात-आठ आदमी थे। समझे कि घिर गए। कदम उठाना ही चाहते थे फिर आवाज आई, खड़े हो जाओ नहीं तो गोली मारते हैं। हम सब खड़े हो गए। थोड़ी देर में एक पुलिस के दरोगा बन्दूक हमारी ओर किए हुए, रिवाल्वर कंधे पर लटकाए, कई सिपाहियों को लिये आ पहुंचे पूछा-कौन हो? कहाँ जाते हो?' हम लोगों ने कहा-'विद्यार्थी हैं, स्टेशन जा रहे हैं। ''कहां जाओगे?'' लखनऊ।' उस समय रात के दो बजे थे। लखनऊ की गाड़ी पाँच बजे जाती थी। दरोगाजी को शक हुआ। लालटेन आई। हम लोगों के चेहरे रोशनी में देखकर उनका शक जाता रहा। कहने लगे-''रात के समय लालटेन लेकर चला कीजिए।'' हां, गलती हुई, माफ कीजिए। हम लोग भी सलाम झाड़कर चलते बने। एक बाग में फूँस की मढ़ैया पड़ी थी। उसमें जा बैठे। पानी बरसने लगा। मूसलाधार पानी गिरा। सब कपड़े भीग गए। जमीन पर भी पानी भर गया। जनवरी का महीना था। खूब जाड़ा पड़ रहा था। रात-भर भीगते और ठिठुरते रहे। बड़ा कष्ट हुआ। प्रातःकाल धर्मशाला में जाकर कपड़े सुखाए। दूसरे दिन शाहजहाँपुर आकर, बन्दूकें जमीन में गाड़कर प्रयाग पहुँचे।

विश्वासघात

प्रयाग की एक धर्मशाला में दो-तीन दिन निवास करके विचार किया गया कि एक व्यक्ति बहुत दुर्बलात्मा है, यदि वह पकड़ा गया तो सब भेद खुल

जाएगा। अतः उसे मार दिया। मैंने कहा-'मनुष्य-हत्या ठीक नहीं।' पर अन्त में निश्चय हुआ कि कल चला जाए और उसकी हत्या कर दी जाए। मैं चुप हो गया। हम लोग चार सदस्य साथ थे। हम चारों तीसरे पहर झाँसी का किला देखने गए। जब लौटे तब संध्या ही चुकी थी। उसी समय गंगा पार करके यमुना-तट पर गए। शौचादि से निवृत्त होकर मैं संध्या समय उपासना करने के लिए रेत पर बैठ गया। एक महाशय ने कहा-''यमुना के निकट बैठो।'' मैं तट से दूर एक ऊंचे स्थान पर बैठा था। मैं वहीं बैठा रहा। वे तीनों भी मेरे पास- आकर बैठ गए। मैं आँखें बन्द किए ध्यान कर रहा था। थोड़ी देर में खट से आवाज हुई। समझा कि साथियों में से कोई कुछ कह रहा होगा। तुरंत ही फायर हुआ। गोली सन से मेरे कान के पास से निकल गई। मैं समझ गया कि मेरे ऊपर ही फायर हुआ है। मैं रिवाल्वर निकालता हुआ आगे को बढ़ा। पीछे फिर कर देखा, वे महाशय माउज़र हाथ में लिये मेरे ऊपर गोली चला रहे हैं। कुछ दिन पहले मुझसे उनका झगड़ा हो चुका था, किन्तु बाद में समझौता हो गया था। फिर भी उन्होंने यह कार्य किया। मैं भी सामना करने को प्रस्तुत हुआ। तीसरा फायर करके वे भाग खड़े हुए। उनके साथ प्रयाग में ठहरे हुए दो सदस्य और भी थे। वे तीनों भाग गए। मुझे देर इसलिए हुई कि मेरा रिवाल्वर चमड़े की खाल में रखा था। यदि आधा मिनट और उनमें से कोई भी खड़ा रह जाता तो मेरी गोली का निशाना बन जाता। जब सब भाग गए, तब मैं गोली चलाना व्यर्थ जान, वहाँ से चला आया। मैं बाल-बाल बच गया। मुझसे दो गज के फासले पर से माउज़र पिस्तौल से गोलियाँ चलाई गई और उस अवस्था में जबकि मैं बैठा हुआ था। मेरी समझ में नहीं आया कि मैं बच कैसे गया। पहला कारतूस फूटा नहीं तीन फायर हुए। मैं गद्‌गद होकर परमात्मा का स्मरण करने लगा। आनन्दोल्लास में मुझे मूर्च्छा आ गई। मेरे हाथ से रिवाल्वर तथा खोल दोनों गिर गए यदि उस समय कोई निकट होता तो मुझे भली-भाँति मार सकता था। मेरी यह अवस्था लगभग एक मिनट तक रही होगी कि मुझसे किसी ने कहा, 'उठ !' मैं उठा। रिवाल्वर उठा लिया खोल उठाने का स्मरण ही नहीं रहा। 22 जनवरी की घटना है। मैं केवल एक कोट और एक तहमद पहने था। बाल बढ़ रहे थे। नंगे सिर पैरों में जूता भी नहीं, ऐसी हालत में कहाँ जाऊँ ? अनेक विचार उठ रहे थे।

इन्हीं विचारों में निमग्न यमुना-तट पर बड़ी देर तक घूमता रहा।

ध्यान आया कि धर्मशाला चलकर ताला तोड़ कर सामान निकालूँ। फिर सोचा कि धर्मशाला जाने से गोली चलेगी, व्यर्थ में खून होगा। अभी ठीक नहीं। अकेले बदला लेना उचित नहीं और कुछ साथियों को लेकर फिर बदला लिया जाएगा। मेरे एक साधारण मित्र प्रयाग में रहते थे। उनके पास जाकर बड़ी मुश्किल से एक चादर ली और रेल से लखनऊ आया। लखनऊ जाकर बाल बनवाए। धोती-जूता खरीदे, क्योंकि रुपये मेरे पास थे। रुपए न भी होते तो भी मैं सदैव जो चालीस-पचास रुपए की सोने की अँगूठी पहने रहता था, उसे काम में ला सकता था। वहाँ से जाकर अन्य सदस्यों से मिलकर सब विवरण कह सुनाया। कुछ दिन जंगल में रहा। इच्छा थी कि सन्यासी हो जाऊँ। संसार कुछ नहीं। बाद को फिर माताजी के पास गया। उन्हें सब कह सुनाया। उन्होंने मुझे ग्वालियर जाने का आदेश किया। थोड़े दिनों में माता-पिता सभी दादीजी के भाई के यहां आ गए। मैं भी वहाँ पहुँच गया।

मैं हर वक्त यही विचार किया करता कि मुझे बदला अवश्य लेना चाहिए। एक दिन प्रतिज्ञा करके रिवाल्वर लेकर शत्रु की हत्या करने की इच्छा में गया भी, किन्तु सफलता न मिली। इस प्रकार की उधेड़बुन में मुझे ज्वर आने लगा। कई महीनों तक बीमार रहा। माताजी मेरे विचारों को समझ गई। माताजी ने बड़ी सांत्वना दी कहने लगीं कि प्रतिज्ञा करो कि तुम अपनी हत्या की चेष्टा करने वालों को जान से न मारोगे। मैंने प्रतिज्ञा करने में आनाकानी की, तो वे कहने लगी कि मैं मातृऋण के बदले में प्रतिज्ञा कराती हूँ, क्या जवाब है ? मैंने कहा- ''मैं उनसे बदला लेने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।'' माताजी ने मुझे बाध्य कर मेरी प्रतिज्ञा भंग करवाई। अपनी बात पक्की रखी। मुझे ही सिर नीचा करना पड़ा। उस दिन से मेरा ज्वर कम होने लगा और मैं अच्छा हो गया।

पलायनावस्था

मैं ग्राम में ग्रामवासियों की भाँति उसी प्रकार के कपड़े पहनकर रहने लगा। खेती भी करने लगा। देखने वाले अधिक-से-अधिक इतना समझ सकते थे कि मैं शहर में रहा हूँ, सम्भव है कुछ पढ़ा भी होऊँ। खेती के कामों में मैंने विशेष ध्यान दिया। शरीर तो हृष्ट-पुष्ट था ही, थोड़े ही दिनों में अच्छा-खासा किसान बन गया। उस कठोर भूमि में खेती करना कोई असान काम नहीं। बबूल, नीम के अतिरिक्त कोई एक-दो आम के वृक्ष कहीं भले ही

दिखाई दे जाएँ। बाकी वह नितान्त मरुभूमि है। खेत में जाता था। थोड़ी देर में ही झरबेरी के कांटो से पैर भर जाते। पहले-पहल तो बड़ा कष्ट प्रतीत हुआ। कुछ समय पश्चात अभ्यास हो गया। जितना खेत उस देश का एक बलिष्ठ पुरुष दिन-भर में जोत सकता था, उतना मैं भी जोत लेता था। मेरा चेहरा बिल्कुल काला पड़ गया। थोड़े दिनों के लिए मैं शाहजहाँपुर की ओर घूमने आया तो कुछ लोग मुझे पहचान भी न सके। मैं रात को शाहजहाँपुर पहुँचा। गाड़ी छूट गई। दिन के समय पैदल जा रहा था कि एक पुलिस वाले ने पहचान लिया। वह और पुलिस वालों को लेने के लिए गया। मैं भागा, पहले दिन का ही थका हुआ था। लगभग बीस मील पहले दिन पैदल चला था। उस दिन भी पैंतीस मील पैदल चलना पड़ा।

मेरे माता-पिता ने सहायता की। मेरा समय अच्छी प्रकार व्यतीत को गया। माताजी की पूँजी तो मैंने नष्ट कर दी। पिताजी से सरकार की ओर कहा गया कि लड़के की गिरफ्तारी के वारंट की पूर्ति के लिए लड़के का हिस्सा, जो उसके दादा को जायदाद होगी, नीलाम किया जाएगा। पिताजी घबराकर दो हजार रुपए का मकान आठ सौ में तथा और दूसरी चीजे भी थोड़े दामों में बेचकर शाहजहांपुर छोड़कर भाग गए। दो बहनों का विवाह हुआ। जो कुछ रहा-बचा था, वह भी व्यय हो गया। माता-पिता की हालत फिर निर्धन जैसी हो गई। समिति के जो दूसरे सदस्य भागे हुए थे, उनकी बहुत बुरी दशा हुई। महीनों चनों पर ही समय काटना पड़ा। दो-चार रुपए भी मित्रों तथा सहायकों से मिल जाते थे, उन्हीं पर ही गुजर होता था। पहनने के कपड़े तक न थे। विवश हो रिवाल्वर तथा बन्दूकें बेची, तब दिन कटे। किसी से कुछ कह भी न सकते थे और गिरफ्तारी के भय के कारण कोई व्यवस्था या नौकरी भी न कर सकते थे।

उसी अवस्था में मुझे व्यवसाय करने की सूझी। मैंने अपने सहपाठी तथा मित्र श्रीयुत सुशीलचन्द्र सेन, जिनका देहांत हो चुका था, कि स्मृति में बंगला भाषा का अध्ययन किया। मेरे छोटे भाई का जन्म हुआ तो मैंने उसका नाम सुशीलचन्द रखा। विचारा कि एक पुस्तकमाला निकालूं। लाभ भी होगा कार्य भी सरल है। बंगला से हिन्दी में पुस्तकों का अनुवाद करके प्रकाशित करवाऊँगा। अनुभव कुछ भी नहीं था। बंगला पुस्तक 'निहिलिस्ट रहस्य' का अनुवाद प्रारम्भ कर दिया। जिस प्रकार अनुवाद किया, उसका स्मरण कर कई

बार हँसी आ जाती है। कई बैल, गाय तथा भैंस लेकर ऊसर में चराने के लिए जाया करता था। खाली बैठा रहना पड़ता था, अतएव कापी-पैसिंल साथ ले जाता और पुस्तक का अनुवाद किया करता था। पशु जब कहीं दूर निकल जाते तब अनुवाद छोड़ लाठी लेकर उन्हें हांकने जाया करता था। कुछ समय के लिए एक साधु की कुटी पर जाकर रहा। वहां अधिक समय अनुवाद करने में व्यतीत करता था। खाने के लिए आटा ले जाता था। चार-पाँच दिन के लिए इकट्ठा आटा रखता था। भोजन स्वयं पका लेता था। जब पुस्तक ठीक हो गई है तो 'सुशील माला' के नाम से ग्रंथमाला निकाली। पुस्तक का नाम 'बोलशेविकों की करतूत' रखा। दूसरी पुस्तक 'मन की लहर' छपवाई। इस व्यवसाय में लगभग पाँच सौ रुपए की हानि हुई जब राजकीय घोषणा हुई और राजनीतिक कैदी छोड़े गए, तब शाहजहाँपुर आकर कोई व्यवसाय करने का विचार हुआ, ताकि माता-पिता की कुछ सेवा हो सके। विचार किया करता था कि इस जीवन में अब फिर कभी आजादी से शाहजहांपुर में विचरण न कर सकूंगा, पर परमात्मा की लीला अपार है। वे दिन आए। मैं पुनः शाहजहाँपुर का निवासी हुआ।

पंडित गोदालाल दीक्षित

आपका जन्म यमुना-तट पर बटेश्वर के निकट 'मई' गाँव में हुआ था। आपने दसवाँ दर्जा अंग्रेजी का पास किया था। आप जब औरैया जिला इटावा में डी.ए.वी. स्कूल में अध्यापक थे, तब आपने शिवाजी समिति की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य था शिवाजी की भाँति दल बनाकर धन एकत्र करना और उससे हथियार खरीदना और उसे दल में बाँटना। इसकी सफलता के लिए आप रियासत से हथियार ला रहे थे जो कुछ नवयुवकों को असावधानी के कारण आगरा में स्टेशन के निकट पकड़ लिए गए थे। आप बड़े वीर तथा उत्साही थे। शान्त बैठना जानते ही न थे। नवयुवकों को सदैव कुछ-न-कुछ उपदेश देते रहते थे। एक-एक सप्ताह तक बूट तथा वर्दी न उतरते थे। जब आप ब्रह्मचारीजी के पास सहायता लेने गए, तो दुर्भाग्यवश गिरफ्तार कर लिए गए। ब्रह्मचारी के दल ने अंग्रेजी राज्य में कई डाके डाले थे। डाके डालकर ये लोग चम्बल के बीहड़ में छिप जाते थे। सरकारी राज्य की ओर से ग्वालियर महाराज को लिखा गया। इस दल के पकड़ने का प्रबन्ध किया गया। सरकार ने तो हिन्दुस्तानी फ़ौज भी भेजी थी, जो आगरा

किले में चम्बल के किनारे बहुत दिनों तक पड़ी रही। पुलिस सवार तैनात किए, फिर भी ये लोग भयभीत न हुए। विश्वासघात से पकड़े गए। इन्हीं का एक आदमी पुलिस ने मिला लिया। डाका डालने के लिए दूर एक स्थान निश्चय किया गया, जहां तक जाने के लिए एक पड़ाव देना पड़ता था। चलते-चलते सब थक गए, पड़ाव दिया गया। जो आदमी पुलिस से मिला हुआ था, उसने भोजन लाने को कहा, क्योंकि उसके किसी सम्बन्धी का मकान निकट था। वह पूडी बनवाकर लाया। सब पूडी खाने लग गए। ब्रह्मचारीजी जी सदैव अपने हाथ से बनाकर भोजन करते थे या आलू अथवा घुइयाँ भुनकर खा लेते थे, उन्होंने भी उस दिन पूड़ी खाना स्वीकार किया। सब भूखे तो थे ही, खाने लगे। ब्रह्मचारीजी ने भी एक पूड़ी ही खाई। उनकी जबान ऐठंने लगी और जो अधिक खा गए थे, वे गिर गए। पूड़ी लाने वाला पानी लेने के बहाने चल दिया। पूड़ियों में विष मिला हुआ था। ब्रह्मचारीजी ने बन्दूक उठा कर पूड़ी लाने वाले पर गोली चलाई। ब्रह्मचारी का गोली चलाना था कि चारों और से गोली चलने लगी। पुलिस छिपी हुई थी। गोली चलने से ब्रहाचारीजी के कई गोली लगी। तमाम शरीर घायल हो गया। पं. गेंदालालजी की आँख में एक छर्रा लगा। बाई आँख जाती रही। कुछ आदमी जहर के कारण मरे, कुछ गोली से मारे गए, इस प्रकार ४० आदमियों में से 25 -30 जान से मारे गए। सब पकड़ कर ग्वालियर के किले में बन्द कर दिए गए। किले में हम लोग जब पण्डितजी से मिले, तब चिट्ठी भेजकर उन्होंने हमको सब हाल बताया। एक दिन किले में हम तीनों पर भी संदेह हो गया था, बड़ी कठिनता से एक अधिकारी की सहायता से हम लोग निकल सके।

जब मैनपुरी षड्यंत्र का अभियोग चला, पण्डित गेंदालालजी को सरकार ने ग्वालियर राज्य से मँगाया। ग्वालियर के किले की जलवायु बड़ी ही हानिकारक थी। पण्डितजी को क्षय रोग हो गया था। मैनपुरी स्टेशन से जेल जाते समय ग्यारह बार रास्ते में बैठकर जेल पहुंचे। पुलिस ने जब हाल पूछा तो उन्होंने कहा- ''बालकों को क्यों गिरफ्तार किया है? मैं हाल बताऊँगा।'' पुलिस को विश्वास हो गया। आपको जेल से निकालकर दूसरे सरकारी गवाहों के निकट रख दिया। वहाँ पर सब विवरण जान रात्रि के समय एक और सरकारी गवाह को लेकर पंडितजी भाग खड़े हुए। भागकर

एक गाँव में एक कोठरी में ठहरे। साथी कुछ काम के लिए बाजार गया और फिर लौटकर न आया। बाहर से कोठरी को जंजीर बन्द कर गया था। पण्डितजी उसी कोठरी में तीन दिन बिना अन्न-जल बन्द रहे। समझे कि साथी किसी आपत्ति में फंस गया होगा, अन्त में किसी प्रकार जंजीर खुलबाई। रुपए वह सब साथ ही ले गया था। पास एक पैसा भी न था। कोटा से पैदल आगरा आए। किसी प्रकार अपने घर पहुँचे। बहुत बीमार थे। पिता ने यह समझकर कि घरवालों पर आपत्ति न आए, पुलिस को सुचना देनी चाही। पण्डितजी ने पिता से बड़ी विनय-प्रार्थना की और दो-तीन दिन में घर छोड़ दिया। हम तीनों की बहुत खोज की। किसी का कुछ पता न था दिल्ली में एक प्याऊ पर पानी पिलाने की नौकरी कर ली। अवस्था दिनोंदिन बिगड़ रही थी रोग भीषण रूप धारण कर रहा था। छोटे भाई तथा पत्नी को बुलाया। भाई किंकर्तव्यविमूढ़! वह क्या कर सकता था? सरकारी अस्पताल में भर्ती कराने ले गया। पण्डितजी की धर्मपत्नी को दूसरे स्थान में भेजकर जब वह अस्पताल आया, तो जो देखा, उसे लिखते हुए लेखनी कम्पायमान होती है। पण्डितजी शरीर त्याग चुके थे। केवल उनका मृत शरीर-मात्र ही पड़ा हुआ था। स्वदेश की कार्य सिद्धि में पं. गेंदालालजी दीक्षित ने जिस निःसहाय अवस्था में अन्तिम बलिदान दिया, उसकी स्वप्न में भी आशंका न थी। पण्डितजी की प्रबल इच्छा थी कि उनकी मृत्यु गोली लगकर हो। भारतवर्ष की एक महान् आत्मा विलीन हो गई और देश में किसी ने जाना भी नहीं। आपकी विस्तृत जीवनी 'प्रभा' मासिक पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है। मैनपुरी षड्यंत्र के मुख्य नेता आप ही समझे गए थे। इस षड्यंत्र में विशेषताएँ ये हुई कि नेताओं में से केवल दो व्यक्ति पुलिस के हाथ आए, जिनमें गेंदालाल दीक्षित एक सरकारी गवाह को लेकर भाग गए, श्रीयुत शिवकृष्ण जेल से भाग गए, फिर हाथ न आए। छः माह के पश्चात् जिन्हें सजा हुई, वे भी राजकीय घोषणा से मुक्त कर दिए गए। खुफिया पुलिस विभाग का क्रोध पूर्णतया शान्त न हो सका और उनकी बदनामी भी इस केस में बहुत हुई।

स्वतन्त्र जीवन

राजकीय घोषणा के पश्चात् जब मैं शाहजहाँपुर आया तो शहर की अद्‌भुत दशा देखी। कोई पास तक खड़े होने का साहस न करता था। जिसके पास मैं जाकर खड़ा हो जाता था, वह नमस्ते कर चल देता था। पुलिस का बड़ा प्रकोप था। प्रत्येक समय वह छाया की भांति पीछे-पीछे फिरा करती थी। इस प्रकार का जीवन कब तक व्यतीत किया जाए? मैंने कपड़ा बुनने का काम आरम्भ किया। जुलाहे बड़ा कष्ट देते थे। कोई काम सिखाना नहीं चाहता था। बड़ी कठिनता से मैंने कुछ काम सीखा। उसी समय एक कारखाने में मैनेजरी का स्थान खाली हुआ। मैंने उस स्थान के लिए प्रयत्न किया। मुझसे पांच सौ रुपए की जमानत माँगी गई। मेरी दशा बड़ी शोचनीय थी। तीन-तीन दिन तक भोजन प्राप्त नहीं होता था, क्योंकि मैंने प्रतिज्ञा की थी कि किसी से सहायता न लूंगा। पिताजी से बिना कुछ कहे मैं चला आया था। मैं पांच सौ रुपए कहाँ से लाता? मैंने दो-एक मित्रों से केवल दो सौ रुपए की जमानत देने की प्रार्थना की। उन्होंने साफ इंकार कर दिया। मेरे हृदय पर वज्रपात हुआ। संसार अंधकारमय दिखाई देता था। पर बाद को एक मित्र की सहायता से नौकरी मिल गई। अब अवस्था कुछ सुधरी। मैं भी सभ्य पुरुषों की भांति जीवन व्यतीत करने लगा। मेरे पास भी चार पैसे हो गए। वे ही मित्र, जिनसे मैंने दो सौ रुपए की जमानत देने की प्रार्थना की थी, अब मेरे पास चार-चार हजार रुपयों की थैली, अपनी बन्दूक, लाइसेंस इत्यादि सब डाले जाते थे कि मेरे यहाँ उनकी वस्तुएँ सुरक्षित रहेंगी। समय के इस फेर को देखकर मुझे हँसी आती थी।

इस प्रकार कुछ काल व्यतीत हुआ दो-चार ऐसे पुरुषों से भेंट हुई, जिनको पहले मैं बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उन लोगों ने मेरी पलायनावस्था के सम्बन्ध में कुछ समाचार सुने थे। मुझसे मिलकर वे बड़े प्रसन्न हुए। मेरी लिखी हुई पुस्तकें भी देखी। इस समय मैं तीसरी पुस्तक 'कैथेराइन' लिख चुका था। मुझे पुस्तकों के व्यवसाय में बहुत घाटा हो चुका था। मैंने 'माला' का प्रकाशन स्थगित कर दिया। 'कैथेराइन' एक पुस्तक प्रकाशक को दे दी। उन्होंने बड़ी कृपा कर उस पुस्तक को थोड़े से हेर-फेर

के साथ प्रकाशित कर दिया। 'कैथेराइन' को देखकर मेरे इष्ट मित्रों को बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने मुझे पुस्तक लिखते रहने के लिए बड़ा उत्साहित किया। मैंनें 'स्वदेशी रंग' नामक एक और पुस्तक लिखकर एक पुस्तक-प्रकाशक को दी। वह भी प्रकाशित हो गई।

बड़े परिश्रम के साथ मैंने एक पुस्तक 'क्रांतिकारी जीवन' लिखी। 'क्रांतिकारी जीवन' को कई पुस्तक-प्रकाशकों ने देखा, पर किसी का साहस न हो सका कि उसको प्रकाशित करे। आगरा, कानपुर, कलकत्ता इत्यादि कई स्थानों पर घूमकर पुस्तक मेरे पास लौट आई। कई मासिक पत्रकाओं में 'राम' तथा 'अज्ञात' नाम से मेरे लेख प्रकाशित हुआ करते थे। लोग बड़े चाव से उन लेखों का पाठ करते थे। बैठे-बैठे खाली समय में ही कुछ लिखा करता और प्रकाशनार्थ भेज दिया करता था। अधिकतर बंगला तथा अंग्रेजी की पुस्तकों से अनुवाद करने का ही विचार था। थोड़े समय के पश्चात् श्रीयुत अरविन्द घोष की बंगला पुस्तक 'योगिक साधन' का अनुवाद किया। दो-एक पुस्तक-प्रकाशकों को दिखाया पर वे अति अल्प पारितोषिक देकर पुस्तक लेना चाहते थे। आजकल के समय में हिन्दी के लेखकों तथा अनुवादकों की अधिकता के कारण पुस्तक-प्रकाशकों को भी बड़ा अभिमान हो गया है। बड़ी कठिनता से बनारस के एक प्रकाशक ने 'योगिक साधन' प्रकाशित करने का वचन दिया। पर थोड़े दिनों में वह स्वयं ही अपने साहित्य-मंदिर में ताला डालकर कहीं पधार गए। पुस्तक का अब तक कोई पता न लगा। पुस्तक अति उत्तम थी। प्रकाशित हो जाने से हिन्दी साहित्य-सेवियों को अच्छा लाभ होता। मेरे पास जो 'बोलशेविक करतूत' तथा 'मन की लहर' की प्रतियां बची थीं, वे मैंने लागत से भी कम मूल्य पर कलकत्ता के एक व्यक्ति श्रीयुत दीनानाथ सगतिया को दे दीं। बहुत थोड़ी पुस्तकें मैंने बेची थीं। दीनानाथ महाशय पुस्तकें हड़प कर गए। मैंने नोटिस दिया। नालिश की। लगभग चार सौ रुपए की डिग्री भी हुई, किन्तु दीनानाथ महाशय का कहीं पता न चला। वह कलकत्ता छोड़कर पटना गए। पटना से कई गरीबों का रुपया मारकर कहीं अन्तर्ध्यान हो गए। अनुभवहीनता से इस प्रकार ठोकरें खानी पड़ीं। कोई पथ-प्रदर्शक तथा सहायक नहीं था, जिससे परामर्श करता। व्यर्थ के उद्योग-धन्धों तथा स्वतंत्र कार्यों में शक्ति का व्यय करता रहा।

पुनर्संगठन

जिन महानुभावों को मैं पूजनीय दृष्टि से देखता था, उन्हीं ने अपनी इच्छा प्रकट की कि मैं क्रांतिकारी दल का पुनः संगठन करूं। गत जीवन के अनुभव से मेरा हृदय अत्यन्त दुःखित था। मेरा साहस न देखकर इन लोगों ने बहुत उत्साहित किया और कहा कि हम आपको केवल निरीक्षण का कार्य देंगे, बाकी सब कार्य स्वयं ही करेंगे। कुछ मनुष्य हमने पहले जुटा लिए हैं, धन की कमी न होगी आदि। मान्य पुरुषों की प्रवृत्ति देखकर मैंने भी स्वीकृति दे दी। मेरे पास जो अस्त्र-शस्त्र थे, मैंने दिए। जो दल उन्होंने एकत्रित किया था, उसके नेता से मुझे मिलाया। उसकी वीरता की बड़ी प्रशंसा की। वह एक अशिक्षित ग्रामीण पुरुष था। मेरी समझ में आ गया कि वह बदमाशों का या स्वार्थी जनों का कोई संगठन है। मुझसे उस दल के नेता ने दल का कार्य निरीक्षण करने की प्रार्थना की। दल के कई फौज से आए हुए लड़ाई पर से वापस किए गए व्यक्ति भी थे। मुझे इस प्रकार के व्यक्तियों से कभी कोई काम न पड़ा था। मैं दो-एक महानुभावों को साथ ले इन लोगों का कार्य देखने के लिए गया।

थोड़े दिनों बाद इस दल के नेता महाशय एक वेश्या को भी ले आए। उसे रिवाल्वर दिखाया कि यदि कहीं गई तो गोली मार दी जाएगी। यह समाचार सुन उसी दल के दूसरे सदस्य ने बड़ा क्रोध प्रकाशित किया और मेरे पास खबर भेजने का प्रबन्ध किया। उसी समय एक दूसरा आदमी पकड़ा गया, जो नेता महाशय को जानता था। नेता महाशय रिवाल्वर तथा कुछ सोने के आभूषणों सहित गिरफ्तार हो गए। उनकी वीरता की बड़ी प्रशंसा थी, जो इस प्रकार प्रकट हुई कई आदमियों के नाम पुलिस को बताए और इकबाल कर लिया। लगभग तीस-चालीस आदमी पकड़े गए।

एक दूसरा व्यक्ति जो बहुत वीर था। पुलिस उसके पीछे पड़ी हुई थी। एक दिन पुलिस-कप्तान ने सवार तथा तीस-चालिस बन्दूक वाले सिपाही लेकर उसके घर में उसे घेर लिया। उसने छत पर चढ़कर दोनाली कारतूसी बन्दूक से लगभग तीन सौ फायर किए। बन्दूक गरम होकर गल गई। पुलिस वाले समझे कि घर में कई आदमी हैं। सब पुलिस वाले छिपकर आड़ में से सुबह की प्रतीक्षा करने लगे। उसने मौका पाया। मकान के पीछे से कूद पड़ा, एक सिपाही ने देख लिया। उसने सिपाही की नाक पर रिवाल्वर का कुन्दा मारा। सिपाही चिल्लाया। सिपाही के चिल्लाते ही मकान में से एक फायर

हुआ। पुलिस वाले समझे मकान में ही है, सिपाही को धोखा हुआ होगा। बस, वह जंगल में निकल गया। अपनी स्त्री को एक टोपीदार बन्दूक दे आया था कि यदि चिल्लाहट हो तो एक फायर कर देना। ऐसा ही हुआ और वह निकल गया जंगल में जाकर एक -दूसरे दल में मिला। जंगल में भी एक समय पुलिस-कप्तान से सामना हो गया। गोली चली। उसके भी पैर में छर्रे लगे थे। अब वे बड़े साहसी हो गए थे। समझ गए थे कि पुलिस वाले किस प्रकार समय पर आड़ में छिप जाते हैं। इन लोगों का दल छिन्न-भिन्न हो गया था। अतः उन्होंने मेरे पास आश्रय लेना चाहा। मैंने बड़ी कठिनता से अपना पीछा छुड़ाया। तत्पश्चात् जंगल जाकर ये दूसरे दल से मिल गए वहां पर दुराचार के कारण जंगल के दल के नेता ने इन्हें गोली से मार दिया। उस नेता को भी समय पाकर उसके साथी ने गोली से मार दिया। इस प्रकार सब दल छिन्न-भिन्न हो गया था। जो पकड़े गये उन पर कई डकैतियां चली। किसी को तीस साल, किसी को पचास साल, किसी को बीस साल सजाएं हुई। एक बेचारा, जिसका कि किसी डकैती से कोई सम्बन्ध न था, केवल शत्रुता के कारण फंसा दिया गया। उसे फांसी हो गई और जो सब प्रकार डकैतियों में सम्मिलित था, जिसके पास डकैती का माल तथा कुछ हथियार पाए गए, पुलिस से गोली भी चली, उसे पहले फांसी की सज़ा की आज्ञा हुई, पर पैरवी अच्छी हुई, अतएव हाईकोर्ट से फांसी की सज़ा माफ हो गई, केवल पांच वर्ष की सजा रह गई। जेल वालों से मिलकर उसने डकैतियों में शिनाख्त न होने दी थी। इस प्रकार इस दल की समाप्ति हुई। दैवयोग से हमारे अस्त्र बच गए। केवल एक ही रिवाल्वर पकड़ा गया।

नोट बनाना

इसी बीच मेरे एक मित्र की एक नोट बनाने वाले महाशय से भेंट हुई। उन्होंने बड़ी-बड़ी आशाएं बांधी। बड़ी लम्बी-लम्बी स्कीम बांधने के पश्चात् मुझको कहा कि एक नोट बनाने वाले से भेंट हुई है। बड़ा दक्ष पुरुष है। मुझे भी बना हुआ नोट देखने की बड़ी उत्कृष्ट इच्छा थी। मैंने उन सज्जन के दर्शन की इच्छा प्रकट की। जब उक्त नोट बनाने वाले महाशय मुझे मिले तो बड़ी कौतुहलोत्पादक बातें की। मैंने कहा कि मैं स्थान तथा आर्थिक सहायता दूंगा, नोट बनाओ। जिस प्रकार उन्होंने मुझसे कहा, मैंने सब प्रबन्ध कर दिया, किन्तु मैंने कह दिया था कि नोट बनाते समय मैं वहां

उपस्थित रहूंगा, मुझे बताना कुछ मत, पर मैं नोट बनाने की रीति अवश्य देखना चाहता हूं। पहले-पहले उन्होंने दस रुपए का नोट बनाने का निश्चय किया। मुझसे एक दस रुपए का नया साफ नोट मंगाया। नौ रुपए दवा खरीदने के बहाने से ले गए। रात्रि में नोट बनाने का प्रबन्ध हुआ। दो शीशे लाए। कुछ कागज भी लाए। दो-तीन शीशियों में कुछ दवाई थी। दवाइयों को मिलाकर एक प्लेट में सादे कागज पानी में भिगोए। मैं जो साफ नोट लाया था, उस पर एक सादा कागज लगाकर दोनों को दूसरी दवा डालकर धोया। फिर दो सादे कागजों में लपेट कर एक पुड़िया सी बनाई और अपने एक साथी को दी कि उसे आग पर गरम कर लाए। आग वहां से कुछ दूर पर जलती थी। कुछ समय तक वह आग पर गरम करता रहा और पुड़िया लाकर वापस दे दी। नोट बनाने वाले ने पुड़िया खोलकर दोनों शीशों में दबाकर शीशों को दवा से धोया और फीते से शीशे को बांधकर रख दिया और कहा कि दो घण्टे में नोट बन जाएगा। शीशे रख दिए। बातचीत होने लगी, ''इस प्रयोग में बड़ा व्यय होता है।'' इस प्रकार मुझे भी सिखा देने का वचन दिया। मुझे कुछ कार्य था। मैं जाने लगा तो वह भी चला गया। दो घण्टे के बाद आने का निश्चय हुआ।

मैं विचारने लगा कि किस प्रकार एक नोट के ऊपर दूसरा सादा कागज रखने से नोट बन जाएगा। मैंने प्रेस का काम सीखा था। थोड़ी बहुत फोटोग्राफी भी जानता था। साइंस (विज्ञान) का भी अध्ययन किया था। कुछ समझ में न आया कि नोट सीधा कैसे छपेगा। सबसे बड़ी बात यह थी कि नम्बर कैसे छपेंगे। मुझे बड़ा भारी संदेह हुआ। दो घण्टे बाद मैं जब गया तो रिवाल्वर भरकर जेब में डालकर ले गया। यथासमय वह महाशय आए। उन्होंने शीशे खोलकर कागज निकालकर उन्हें फिर एक दवा से धोया। अब दोनों कागज खोले। एक मेरा लाया हुआ नोट और दूसरा एक दस रुपए का नोट उसी के ऊपर से उतारकर सुखाया। कहा- ''कितना साफ नोट है!'' मैंने हाथ में लेकर देखा। दोनों नोटों के नम्बर मिलाए। नम्बर नितान्त भिन्न-भिन्न थे। मैंने उसको उसकी मूर्खता समझाई कि यह ढोंग ग्रामवासियों के सामने चल सकता है।, अनजान पढ़े-लिखे भी धोखे में आ सकते हैं। किन्तु तू मुझे धोखा देने आया है। अन्त में मैंने उससे प्रतिज्ञा-पत्र लिखाकर, उस पर उसके हाथों की दसों अंगुलियों के निशान लगवाये कि वह ऐसा काम फिर न

करेगा। दस अंगुलियों के निशान देने में उसने कुछ ढील की। मैंने रिवाल्वर उठाकर कहा कि गोली चलती है, उसने तुरंत दसों अंगुलियों के निशान बना दिए। वह बुरी तरह कांप रहा था। मेरे उन्नीस रुपये खर्च हो चुके थे। मैंने दोनों नोट रख लिए और शीशे, दवाएं इत्यादि सब छीन लीं कि मित्रों को तमाशा दिखाऊंगा। तत्पश्चात् उन महाशय को विदा किया। उसने किया यह था कि जब अपने साथी को आग पर गरम करने के लिए कागज की पुड़िया दी थी, उसी समय वह साथी सादे कागज की पुड़िया बदलकर दूसरी पुड़िया ले आया जिसमें दोनों नोट थे। इस प्रकार नोट बन गया। इस प्रकार का एक बड़ा भारी दल है, जो सारे भारतवर्ष में ठगी का काम करके हजारों रुपए पैदा करता है। मैं एक सज्जन को जानता हूं जिन्होंने इसी प्रकार पचास हजार से अधिक रुपए पैदा कर लिए। होता यह है कि ये लोग अपने एजेंट रखते हैं। वे एजेंट साधारण पुरुषों के पास जाकर नोट बनाने की कथा कहते हैं। आता धन किसे बुरा लगता है? वे नोट बनवाते हैं। इस प्रकार पहले दस का नोट बनाकर दिया, वे बाजार में बेच आए। सौ रुपए का बनाकर दिया वह भी बाजार में चलाया और चल क्यों न जाए? इस प्रकार के सब नोट असली होते है। वे तो केवल चाल से रख दिए जो हैं। इसके बाद कहा कि हजार पांच सौ का नोट लाओ तो कुछ धन भी मिले। जैसे-तैसे करके बेचारा एक हजार का नोट लाया। सादा कागज रखकर शीशे में बांध दिया। हजार का नोट जेब में रखा और चम्पत हुए। नोट का मालिक रास्ता देखते हैं, वहां नोट बनाने वालों का पता ही नहीं। अन्त में विवश हो शीशों को खोला जाता है, तो सादे कागजों के अलावा कुछ नहीं मिलता, वे अपने सिर पर हाथ मारकर रह जाते हैं। इस डर से कि यदि पुलिस को मालूम हो गया तो और लेने के देने पड़ेंगे, किसी से कुछ कह भी नहीं सकते। कलेजा मसोसकर रह जाते हैं। पुलिस ने इस प्रकार से कुछ अभियुक्तों को गिरफ्तार भी किया, किन्तु ये लोग पुलिस को नियमपूर्वक चौथ देते रहते हैं और इस कारण बचे रहते हैं।

चालबाजी

कई महानुभावों ने गुप्त समिति नियमादि बनाकर मुझे दिखाये। उनमें एक नियम यह भी था कि जो व्यक्ति समिति का कार्य करे, उन्हें समिति

की ओर से कुछ मासिक दिया जाए। मैंने इस नियम को अनिवार्य रूप में मानना अस्वीकार किया। मैं यहां तक सहमत था कि जो व्यक्ति सर्व-प्रकारेण समिति के कार्य में अपना समय व्यतीत करे, उनको केवल गुजारा-मात्र समिति की ओर से दिया जा सकता है। जो लोग किसी व्यवस्था को करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का मासिक भत्ता देना उचित न होगा। जिन्हें समिति के कोष में से कुछ दिया जाए उनको भी कुछ व्यवसाय करने का प्रबंध करना उचित है, ताकि ये लोक सर्वथा समिति की सहायता पर निर्भर रहकर निरे भाड़े के टट्टू न बन जाएं। भाड़े के टट्टुओं से समिति का कार्य लेना, जिसमें कतिपय मनुष्य के प्राणों का उत्तरदायित्व हो और थोड़ा-सा भेद खुलने से ही बड़ा भयंकर परिणाम हो सकता है, उचित नहीं है। तत्पश्चात् उन महानुभावों की सम्मति हुई कि एक निश्चित कोष समिति के सदस्यों को देने के निमित्त स्थापित किया जाए, जिसकी आय का ब्यौरा इस प्रकार हो कि डकैतियों से जितना धन प्राप्त हो उसका आधा समिति के कार्यों में व्यय किया जाए और आधा समिति के सदस्यों को बराबर-बराबर बांट दिया जाए। इस प्रकार के परामर्श से सहमत न हो सका और मैंने इस प्रकार की गुप्त समिति में, कि जिसका एक उद्देश्य पेट-पूर्ति हो, योग देने से इंकार कर दिया। जब मेरी इस प्रकार की दृष्टि देखी तो उन महानुभावों ने आपस में षड्यंत्र रचा।

जब मैंने उन महानुभावों के परामर्श तथा नियमादि को स्वीकार न किया तो वे चुप हो गए। मैं भी कुछ समझ न सका कि जो लोग मुझसे इतनी श्रद्धा रखते थे, जिन्होंने कई प्रकार की आशाएं देखकर मुझसे क्रांतिकारी दल का पुनर्संगठन करने की प्रार्थनाएं की थीं, अनेकों प्रकार की उम्मीदें बंधाई थी, सब कार्य स्वयं करने के वचन दिए थे, वे लोग ही मुझे इस प्रकार के नियम बनाने की मांग करने लगे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रथम प्रयत्न में, जिस समय मैं मैनपुरी षड्यंत्र के सदस्यों के सहित कार्य करता था, उस समय हम में से कोई भी अपने व्यक्तिगत (प्राइवेट) खर्च में समिति का धन व्यय करना पूर्ण पाप समझता था। जहां तक हो सकता, अपने खर्चे के लिए माता-पिता से कुछ लाकर प्रत्येक सदस्य समिति के कार्यों में धन व्यय किया करता था। इस कारण मेरा साहस इस प्रकार के नियमों में सहमत होने का न हो सका। मैंने विचार किया कि यदि कोई समय आया और अधिक किसी प्रकार अधक धन प्राप्त हुआ, तो कुछ सदस्य ऐसे स्वार्थी हो सकते हैं, जो अधिक धन लेने की इच्छा करें और आपस में वैमनस्य बढ़े। उसके परिणाम बड़े

भयंकर हो सकते हैं। अतः इस प्रकार के कार्य में योग देना मैंने उचित न समझा।

मेरी यह अवस्था देख इन लोगों ने आपस में षड्यंत्र रचा कि जिस प्रकार मैं कहूं वे नियम स्वीकार कर लें और विश्वास दिलाकर जितने अस्त्र-शस्त्र मांगू तो मुझसे युद्ध किया जाए और आ पड़े तो मुझे कहीं ले जाकर जान से मार दिया जाए। तीन सज्जनों ने इस प्रकार का षड्यंत्र रचा और मुझसे चालबाजी करनी चाही। दैवात् उनमें से एक सदस्य के मन में कुछ दया आ गई। उसने आकर मुझसे सब भेद कह दिया। मुझे सुनकर बडा खेद हुआ कि जिन व्यक्तियों को मैं पिता तुल्य मानकर श्रद्धा करता हूं, वे ही मेरे नाश करने के लिए इस प्रकार नीचता का कार्य करने को उद्यत हैं। मैं संभल गया। मैं उन लोगों से सतर्क रहने लगा कि पुनः प्रयाग-जैसी घटना न घटे। जिन महाशय ने मुझसे भेद कहा था, उनकी उत्कृट इच्छा थी कि वह एक रिवाल्वर रखें और इस इच्छापूर्ति के लिए उन्होंने मेरा विश्वासपात्र बनने के कारण मुझसे भेद कहा था। मुझसे एक रिवाल्वर मांगी कि मैं उन्हें कुछ समय के लिए रिवाल्वर दे दूं। यदि मैं उन्हें रिवाल्वर दे देता तो वह उसे हजम कर जाते। मैं कर ही क्या सकता था? और अब रिवाल्वर इत्यादि पाना कोई सरल कार्य भी न था। बाद को बड़ी कठिनता से इन चालबाजियों से अपना पीछा छुड़ाया।

अब सब ओर से चित को हटाकर बड़े मनोयोग से नौकरी में समय व्यतीत करने लगा। कुछ रुपया इकट्ठा करने के विचार से, कुछ कमीशन इत्यादि का प्रबन्ध कर लेता था। इस प्रकार पिताजी का थोड़ा-सा भार बंटाया। सबसे छोटी बहन का विवाह नहीं हुआ था। पिताजी के सामर्थ्य के बाहर था कि उस बहन का विवाह किसी भले घर में कर सकते। मैंने रुपया जमा करके बहन का विवाह एक अच्छे जमींदार के यहाँ कर दिया। पिताजी का भार उतर गया। अब केवल माता, पिता, दादी और छोटे भाई थे, जिनके भोजन का प्रबन्ध होना अधिक कठिन काम न था। अब माताजी को उत्कट इच्छा हुई कि मैं भी विवाह कर लूँ। कई अच्छे-अच्छे विवाह-सम्बन्ध के सुयोग एकत्रित हुए। किन्तु मैं विचारता था कि जब तक पर्याप्त धन पास न हो, विवाह-बंधन में फँसना ठीक नहीं। मैंने स्वतंत्र कार्य आरंभ किया, नौकरी छोड़ दी। एक मित्र ने सहायता दी। मैंने रेशमी कपड़ा बुनने का एक

निजी कारखाना खोल दिया। बड़े मनोयोग तथा परिश्रम से काम किया। परमात्मा की दया से अच्छी सफलता हुई। एक-डेढ़ साल में ही मेरा कारखाना चमक गया। तीन-चार हजार की पूँजी से कार्य आरंभ किया था। एक साल बाद सब खर्च निकालकर लगभग दो हजार रुपए का लाभ हुआ। मेरा उत्साह और भी बढ़ा। मैंने एक-दो व्यवसाय और भी प्रारंभ किए। उसी समय मालूम हुआ कि संयुक्त-प्रांत के क्रान्तिकारी दल का पुनर्संगठन हो रहा है। कार्यारम्भ हो गया है। मैंने भी योग देने का वचन दिया, किन्तु उस समय मैं अपने व्यवसाय में बुरी तरह फँसा हुआ था। मैंने छः मास का समय लिया कि छः मास में मैं अपने व्यवसाय को अपने साझी को सौंप दूंगा और अपने आपको उसमें से निकाल लूंगा, तब स्वतंत्रतापूर्वक क्रान्तिकारी कार्य में योग दे सकुंगा। छः मास तक मैंने अपने कारखाने का सब काम साफ करके अपने साझी को सब काम समझा दिया, तत्पश्चात् अपने वचनानुसार कार्य में योग देने का उद्योग किया।

thearyasamaj.org

वृहत् संगठन

यद्यपि मैं अपना निश्चय कर चुका था, कि अब इस प्रकार के कार्यों में कोई भाग न लूंगा, तथापि मुझे पुनः क्रान्तिकारी आंदोलन में हाथ डालना पड़ा, जिसका कारण यह था कि मेरी तृष्णा न बुझी थी, मेरे दिल के अरमान न निकले थे। असहयोग आन्दोलन शिथिल हो चुका था। पूर्ण आशा थी कि जितने देश के नवयुवक उस आन्दोलन में भाग लेते थे, उसमें अधिकतर क्रान्तिकारी आन्दोलन में सहायता देंगे और पूरी लगन से काम करेंगे। जब कार्य आरम्भ हो गया और असहयोगियों को टटोला तो वे आन्दोलन से कहीं अधिक शिथिल हो चुके थे। उनकी आशाओं पर पानी फिर चुका था। निज की पूंजी समाप्त हो चुकी थी। घर में व्रत हो रहे थे। आगे की भी कोई विशेष आशा न थी। कांग्रेस में भी स्वराज्य दल का जोर हो गया था। जिसके पास कुछ धन तथा इष्ट मित्रों का संगठन था, वे कौंसिलों तथा असेम्बली के सदस्य बन गए। ऐसी अवस्था में यदि क्रान्तिकारी संगठनकर्त्ताओं के पास पर्याप्त धन होता तो वे असहयोगियों को हाथ में लेकर उनसे काम ले सकते थे। जितना भी सच्चा काम करने वाला हो, किन्तु पेट तो सबके हैं। दिनभर में थोड़ा-सा अन्न क्षुधा निवृत्ति के लिए मिलना परमावश्यक है। फिर शरीर ढकने की भी आवश्यकता होती है। अतएव कुछ प्रबन्ध ही ऐसा होना चाहिए, जिसमें नित की आवश्यकताएं ही पूरी हो जाएं, जितने धनी-मानी स्वदेश-प्रेमी थे उन्होंने असहयोग आन्दोलन में पूर्ण सहायता दी थी। फिर भी कुछ ऐसे कृपालु सज्जन थे, जो थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता देते थे। किन्तु प्रान्त-भर के प्रत्येक जिले में संगठन करने का विचार था। पुलिस की दृष्टि बचाने के लिए भी पूर्ण प्रयत्न करना पड़ता था। ऐसी परिस्थिति में साधारण नियमों को काम में लाते हुए कार्य करना बड़ा कठिन था। अनेक उद्योगों के पश्चात् कुछ भी सफलता न होती थी। दो-चार जिलों में संगठनकर्त्ता नियत किए गए थे, जिनको कुछ मासिक गुजारा दिया जाता था। पाँच-दस महीने तक तो इस प्रकार कार्य चलता रहा। बाद को जो सहायक कुछ आर्थिक सहायता देते थे, उन्होंने भी हाथ खींच लिया अब हम लोगों की अवस्था बहुत खराब ही गई। सब कार्यभार मेरे ऊपर आ चुका था। कोई भी किसी प्रकार की मदद न देता

था। जहाँ-तहाँ से पृथक्-पृथक् जिलों में कार्य करने वाले मासिक व्यय की माँग कर रहे थे। कई मेरे पास आए भी। मैंने कुछ रुपया कर्ज लेकर उन लोगों को एक मास का खर्च दिया। कइयों पर कुछ कर्ज भी हो चुका था। मैं कर्ज न निपटा सका। एक केन्द्र के कार्यकर्त्ता को जब पर्याप्त धन न मिल सका, तो वह कार्य छोड़कर चले गए। मेरे पास क्या प्रबंध था, जो मैं उसकी उदर-पूर्ति कर सकता? अद्भुत समस्या थी। किसी तरह उन लोगों को समझाया। थोड़े दिनों में कान्तिकारी पर्चे आए। सारे देश में निश्चित तिथि पर पर्चे बाँटे गए। रंगून, बम्बई, लाहौर, अमृतसर, कलकत्ता तथा बंगाल के मुख्य शहरों तथा संयुक्त प्रान्त के सभी मुख्य-मुख्य जिलों में पर्याप्त संख्या में पर्चों का वितरण हुआ। भारत सरकार बड़ी सशंक हुई कि ऐसी कौन-सी और इतनी बड़ी सुसंगठित समिति है, जो एक ही दिन में सारे भारतवर्ष में पर्चे बँट गए। उसी के बाद मैंने कार्यकारिणी की एक बैठक करके जो केन्द्र खाली हो गए थे, उनके लिए एक महाशय को नियुक्त किया। केन्द्र में कुछ परिवर्तन भी हुआ, क्योंकि सरकार के पास संयुक्त प्रांत के सम्बन्ध में बहुत-सी सूचनाएँ पहुँच चुकी थी। भविष्य की कार्य-प्रणाली का निर्णय किया गया।

कार्यकर्त्ताओं की दुर्दशा

इस समय समिति के सदस्यों की बड़ी दुर्दशा थी। चने मिलना भी कठिन था। सब पर कुछ-न-कुछ कर्ज हो गया था। किसी के पास साबुत कपड़े तक न थे। कुछ विद्यार्थी बनकर धर्मक्षेत्रों तक में भोजन कर आते थे। चार-पाँच ने अपने-अपने केन्द्र त्याग दिए। पाँच सौ से अधिक रुपए मैं कर्ज लेकर व्यय कर चुका था। यह दुर्दशा देख मुझे बड़ा कष्ट होने लगा। मुझसे भी भरपेट भोजन न किया जाता था। सहायता के लिए कुछ सहानुभूति रखने वालों का द्वार खटखटाया, किंतु कोरा उत्तर मिला। किंकर्त्तव्यविमूढ़ था। कुछ समझ में न आता था। कोमल-हृदय नवयुवक मेरे चारों ओर बैठकर कहा करते, ''पडितजी, अब क्या करें?'' मैं उनके सूखे-सूखे मुख देख बहुधा रो पड़ता कि स्वदेश-सेवा का व्रत लेने के कारण फकीरों से भी बुरी दशा हो रही है। एक-एक कुर्ता तथा धोती भी ऐसी नहीं थी जो साबुत होती। लंगोट बाँधकर दिन व्यतीत करते थे। अँगोछे पहनकर नहाते थे, एक समय क्षेत्र में

भोजन करते थे, एक समय दो-दो पैसे के सत्तू खाते थे। मैं पन्द्रह वर्ष से एक समय दूध पीता था। इन लोगों की यह दशा देखकर मुझे दूध पीने का साहस न होता था। मैं भी सबके साथ बैठकर सत्तू खा लेता था। मैंने विचार किया कि इतने नवयुवकों के जीवन को नष्ट करके उन्हें कहाँ भेजा जाए? जब समिति का सदस्य बनाया था, तो लोगों ने बड़ी-बड़ी आशाएँ बँधाई थीं। कइयों का पढ़ना-लिखना छुड़ाकर काम में लगा दिया था। पहले से मुझे यह हालत मालूम होती तो मैं कदापि इस प्रकार की समिति में योग न देता। बुरा फँसा। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता था। अन्त में धैर्य धारण कर दृढ़तापूर्वक कार्य करने का निश्चय किया।

इसी बीच में बंगाल आर्डिनेंस निकला और गिरफ्तारियाँ हुई। इनकी गिरफ्तारियों ने यहाँ तक असर डाला कि कार्यकत्ताओं में निष्क्रियता के भाव आ गए। क्या प्रबंध किया जाए, निर्णय नहीं कर सके। मैंने प्रयत्न किया कि किसी तरह एक सौ रुपए मासिक का कहीं से प्रबंध हो जाए। प्रत्येक केन्द्र के प्रतिनिधि से हर प्रकार से प्रार्थना की थी कि समिति के सदस्यों से कुछ सहायता लें, मासिक चन्दा वसूल करें पर किसी ने कुछ न सुनी। कुछ सज्जनों से व्यक्तिगत प्रार्थना की कि वे अपने वेतन में से कुछ मासिक दे दिया करें। किसी ने कुछ ध्यान न दिया सदस्य रोज मेरे द्वार पर खड़े रहते थे। पत्रों की भरमार थी कि कुछ धन का प्रबंध कीजिए, भूखे मर रहे हैं। दो-एक को व्यवसाय में लगाने का भी इंतजाम किया। दो-चार जिलों में काम बंद कर दिया, वहाँ के कार्यकर्ताओं से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि हम मासिक शुल्क नहीं है सकते। यदि निर्वाह का कोई दूसरा मार्ग हो, और उस ही पर निर्भर रहकर कार्य कर सकते हो तो करो। हमसे जिस समय हो सकेगा देंगे, किन्तु मासिक वेतन देने के लिए हम बाध्य नहीं। कोई बीस रुपए कर्ज के मांगता था, कोई पचास का बिल भेजता था और कइयों ने असंतुष्ट होकर कार्य छोड़ दिया मैंने भी समझ लिया- ठीक ही है, पर इतना करने पर भी गुजर न हो सकी।

अशान्त युवक-दल

कुछ महानुभावों की प्रकृति होती है, कि अपनी कुछ शान जमाना या

अपने आपको बड़ा दिखाना अपना कर्तव्य समझते हैं, जिसमें भयंकर हानियाँ हो जाती हैं। भोले-भाले आदमी ऐसे मनुष्यों में विश्वास करके उनमें आशातीत साहस, योग्यता तथा कार्यदक्षता की आशा करके उन पर श्रद्धा रखते है। किन्तु समय आने पर यह निराशा के रूप में परिणत हो जाती है। इस प्रकार के मनुष्यों की किन्हीं कारणोंवश यदि प्रतिष्ठा हो गई, अथवा अनुकूल परिस्थितियों के उपस्थित हो जाने से उन्होंने किसी उच्च कार्य में योग दे दिया, तब तो फिर वे अपने आपको बड़ा भारी कार्यकर्ता जाहिर करते हैं। जनसाधारण भी अंधविश्वास से उनकी बातों पर विश्वास कर लेते हैं, विशेषकर नवयुवक तो इस प्रकार के मनुष्य के जाल में शीघ्र ही फंस जाते हैं। ऐसे ही लोग नेतागिरी की धुन में अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाया करते हैं। इसी कारण पृथक्-पृथक् दलों का निर्माण होता है। इस प्रकार के मनुष्य प्रत्येक समाज तथा प्रत्येक जाति में पाये जाते हैं। इनसे क्रान्तिकारी दल भी मुक्त नहीं रह सकता। नवयुवकों का स्वभाव चंचल होता है, वे शांत रहकर संगठित कार्य करना बड़ा दुष्कर समझते हैं। उनके हृदय में उत्साह की उमंग उठती है। वे समझते हैं, दो-चार अस्त्र हाथ आए कि हमने गवर्नमेंट को नाकों चने चबवा दिए। मैं भी जब क्रान्तिकारी दल में योग देने का विचार कर रहा था, उस समय मेरी उत्कण्ठा थी कि यदि एक रिवाल्वर मिल जाए तो दस-बीस अंग्रेजों को मार दूँ। इसी प्रकार के भाव मैंने कई नवयुवकों में देखे। उनकी बड़ी प्रबल हार्दिक इच्छा होती है, कि किसी प्रकार एक रिवाल्वर या पिस्तौल उनके हाथ लग जाए तो वे उसे अपने पास रख लें। मैंने उनसे रिवाल्वर पास रखने का लाभ पूछा, तो कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे सके। कई युवकों को मैंने इस शौक को पूरा करने में सैंकडों रुपए बर्बाद करते भी देखा है। किसी क्रान्तिकारी आन्दोलन के सदस्य नहीं, कोई विशेष कार्य भी नहीं, महज़ शौकिया रिवाल्वर पास रखेंगे। ऐसे ही थोड़े-से युवकों का दल एक महोदय ने भी एकत्रित किया। ये सब बड़े सच्चरित्र, स्वाभिमानी और सच्चे कार्यकर्त्ता थे। इस दल ने विदेश से अस्त्र प्राप्त करने का बड़ा उत्तम सूत्र प्राप्त किया था। जिससे यथारुचि पर्याप्त अस्त्र मिल सकते थे। उन अस्त्रों के दाम भी अधिक न थे। अस्त्र भी पर्याप्त संख्या में बिल्कुल नए मिलते थे। यहाँ तक प्रबंध हो गया था कि यदि हम लोग रुपये का उचित प्रबंध कर देंगे, और यथासमय मूल्य निपटा दिया करेंगे, तो हमको

माल उधार भी मिल जाया करेगा और हमें सब जिस प्रकार के जितनी संख्या में अस्त्रों की अवश्यकता होगी, मिल जाया करेंगे। यही नहीं, समय आने पर हम विशेष प्रकार की मशीन वाली बन्दूकें भी बनवा संकेंगे। इस समय समिति की आर्थिक अवस्था बड़ी खराब थी। इस सूत्र के हाथ लग जाने और इसके लाभ उठाने की इच्छा होने पर भी बिना रुपए के कुछ होता दिखलाई न पड़ता था। रुपए का प्रबन्ध करना नितान्त अवश्यक था। किन्तु वह हो कैसे ? दान कोई देता न था, कर्ज भी न मिलता था, और कोई उपाय न देख डाका डालना तय हुआ। किन्तु किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति (**Private property**) पर डाका डालना हमें अभीष्ट न था। सोचा, यदि लूटना है तो सरकारी माल को न लूटा जाए ? इसी उधेड़बुन में एक दिन मैं रेल में जा रहा था। गार्ड के डिब्बे के पास की गाड़ी में बैठा था। स्टेशन मास्टर एक थैली लाए और गार्ड के डिब्बे में डाल गए। कुछ खटपट की आवाज़ हुई। मैंने उतर कर देखा कि एक लोहे का सन्दूक रखा है। विचार किया कि इसी में थैली डाली होगी। अगले स्टेशन पर उसमें थैली डालते भी दिखा। अनुमान किया कि लोहे का संदूक गार्ड के डिब्बे में जंजीर से बंधा रहता होगा, ताला पड़ा रहता होगा, आवश्यकता होने पर ताला खोलकर उतार लेते होंगे। इसके थोड़े दिनों बाद लखनऊ स्टेशन पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। देखा एक गाड़ी में से कुली लोहे के, आमदनी वाले संदूक उतार रहे हैं। निरीक्षण करने से मालूम हूआ कि उनमें जंजीर ताला कुछ नहीं पड़ता, यों ही रखे जाते हैं। उसी समय निश्चय किया कि इसी पर हाथ मारूँगा।

रेलवे डकैती

उसी समय से धुन सवार हुई। तुरंत स्थान पर जा टाइम-टेबल देखकर अनुमान किया कि सहारनपुर से गाड़ी चलती है, लखनऊ तक अवश्य दस हजार रुपए रोज की आमदनी होती होगी। सब बातें ठीक करके कार्यकत्ताओं का संग्रह किया। दस नवयुवकों को लेकर विचार किया कि किसी छोटे स्टेशन पर जब गाड़ी खड़ी हो, स्टेशन के तारघर पर अधिकार कर लें और गाड़ी का संदूक उतारकर तोड़ डालें, जो कुछ मिले उसे लेकर चल दें, परंतु इस कार्य में मनुष्यों की अधिक संख्या की आवश्यकता थी। इस कारण यही निश्चय किया कि गाड़ी की जंजीर खींचकर चलती गाड़ी को खड़ा करके तब लूटा जाए। सम्भव है कि तीसरे दर्ज़े की जंजीर खींचने से गाड़ी

न खड़ी हो, क्योंकि तीसरे दर्ज़े में बहुधा प्रबंध ठीक नहीं रहता है। इस कारण से दूसरे दर्जे की जंजीर खींचने का प्रबंध किया। सब लोग उसी ट्रैन में सवार थे। गाड़ी खड़ी होने पर सब उतरकर गार्ड के डिब्बे के पास पहुंच गए। लोहे का संदूक उतारकर छेनियों से काटना चाहा, छेनियों ने काम न दिया, तब कुल्हाडा चला।

मुसाफिरों से कह दिया कि सब गाड़ी में चढ़ जाओ। गाड़ी का गार्ड गाड़ी में चढ़ना चाहता था, पर उसे जमीन पर लेट जाने की आज्ञा दी, ताकि बिना गार्ड के गाड़ी न जा सके। दो आदमियों को नियुक्त किया कि वे लाइन की पगडण्डी को छोड़कर घास में खड़े होकर गाड़ी से हटे हुए गोली चलाते रहें। एक सज्जन गार्ड के डिब्बे से उतरे। उनके पास भी माउज़र पिस्तौल था। विचारा कि ऐसा शुभ अवसर जाने कब हाथ आए। माउज़र पिस्तौल काहे को चलाने को मिलेगा? उमंग जो आई, सीधी करके दागने लगे। मैंने जो देखा तो डांटा, क्योंकि गोली चलाने की उनकी ड्यूटी (काम) ही न थी। फिर यदि कोई मुसाफिर कौतूहलवश बाहर को सिर निकाले तो उसके गोली जरूर लग जाए। हुआ भी ऐसा ही है जो व्यक्ति रेल से उतरकर अपनी स्त्री के पास जा रहा था, मेरा ख्याल है कि इन्हीं महाशय की गोली उसके लग गई, क्योंकि जिस समय यह महाशय संदूक नीचे डालकर गार्ड के डिब्बे से उतरे थे, केवल दो-तीन फायर हुए थे। उसी समय स्त्री ने कोलाहल किया होगा और उसका पति उसके पास जा रहा था जो उक्त महाशय की उमंग का शिकार हो गया। मैंने यथाशक्ति पूर्ण प्रबंध किया था कि जब तक कोई बंदूक लेकर सामना करने न आए, या मुकाबले में गोली न चले तब तक किसी आदमी पर फायर न होने पाए। मैं नर-हत्या कराके डकैती को भीषण रूप देना नहीं चाहता था। फिर भी मेरा कहा न मानकर अपना काम छोड़ गोली चला देने का यह परिणाम हुआ। गोली चलाने की ड्यूटी जिनको मैंने दी थी, वे बड़े दक्ष तथा अनुभवी मनुष्य थे, उनसे भूल होना असम्भव है। उन लोगों को मैने देखा कि वे अपने स्थान से पाँच मिनट बाद पाँच फायर करते थे। यही मेरा आदेश था।

संदूक तोड़ तीन गठरियों में थैलियाँ बाँधी। सबसे कई बार कहा-देख लो कोई समान रह तो नहीं गया। इस पर भी एक महाशय चादर डाल आए।

रास्ते में थैलियों से रुपए निकालकर गठरी बाँधी और उसी समय लखनऊ शहर में जा पहुँचे। किसी ने पूछा भी नहीं, कौन हो, कहाँ से आए हो? इस प्रकार दस आदमियों ने एक गाड़ी को रोककर लूट लिया। उस गाड़ी में चौदह मनुष्य ऐसे थे, जिनके पास बंदूक या रायफलें थीं। दो अंग्रेज सशस्त्र फौजी जवान भी थे, पर सब शान्त रहे। ड्राइवर महाशय तथा इंजीनियर महाशय दोनों का बुरा हाल था। वे दोनों अंग्रेज थे। ड्राइवर महाशय इंजन में लेटे रहे। इंजीनियर महाशय पाखाने में जा छिपे। हमने कह दिया था कि मुसाफिरों से न बोलेंगे, सरकार का माल लूटेंगे। इस कारण मुसाफिर भी शान्तिपूर्वक बैठे रहे। समझे तीस-चालीस आदमियों ने गाड़ी को चारों ओर से घेर लिया है। केवल दस युवकों ने इतना बड़ा आतंक फैला दिया। साधारणतः इस बात पर बहुत से मनुष्य विश्वास करने में भी संकोच करेंगे कि दस नवयुवकों ने गाड़ी खड़ी करके लूट ली। जो भी हो, वास्तव में बात यही थी। इन दस कार्यकर्ताओं में अधिक तो ऐसे थे जो आयु में सिर्फ लगभग बाइस वर्ष के होंगे और शरीर से बड़े पुष्ट भी न थे। इस सफलता को देखकर मेरा साहस बहुत बढ़ गया। मेरा जो विचार था, यह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ पुलिस वालों की वीरता का मुझे अंदाज था इस घटना से भविष्य के कार्य की बहुत बड़ी आशा बँध गई। नवयुवकों का भी उत्साह बढ़ गया। जितना कर्जा था निपटा दिया। अस्त्रों की खरीद के लिए लगभग एक हजार रुपये भेज दिये। प्रत्येक केन्द्र के कार्यकर्ता को यथास्थान भेजकर दूसरे प्रांतों में भी कार्य विस्तार करने का निर्णय करके कुछ प्रबंध किया। एक युवक-दल ने बम बनाने का प्रबंध किया, मुझसे भी सहायता चाही। मैंने आर्थिक सहायता देकर अपना एक सदस्य भेजने का वचन दिया। किन्तु कुछ त्रुटियां हुई, जिससे सम्पूर्ण दल अस्त-व्यस्त हो गया।

अन्त में इस विषय में कुछ भी न जान सका कि दूसरे देश के क्रान्तिकारियों ने प्रारंभिक अवस्था में हम लोगों की भाँति प्रयत्न किया या नहीं। यदि पर्याप्त अनुभव होता तो इतनी साधारण भूलें न करते। त्रुटियों के होते हुए भी कुछ भी न बिगड़ता और न कुछ भेद खुलता, न इस अवस्था को पहुँचते, क्योंकि मैंने, जो संगठन किया था। उसमें किसी और से मुझे कमजोरी न दिखाई देती थी। कोई भी किसी प्रकार की त्रुटि न समझ सकता था। इसी कारण आँख बंद किए हुए बैठे रहे। किंतु आस्तीन में साँप छिपा

हुआ था, ऐसा गहरा मुँह मारा कि चारों खाने चित्त कर दिया।

जिन्हें हम हार समझे थे गला अपना सजाने को,
वही अब नाग बन बैठे हमारे काट खाने को!

नवयुवकों में आपस की होड़ के कारण बहुत वितण्डा तथा कलह भी हो जाती थी, जो भयंकर रूप धारण कर लेती। मेरे पास जब मामला जाता तो मैं प्रेमपूर्वक समिति की दशा का अवलोकन कराके, सबको शान्त कर देता कभी नेतृत्व को लेकर वाद-विवाद चल जाता। एक केन्द्र के निरीक्षक से वहाँ के कार्यकर्त्ता अत्यन्त असंतुष्ट थे। क्योंकि निरीक्षक से अनुभवहीनता के कारण कुछ भूलें हो गई थीं। यह अवस्था देख मुझे बड़ा खेद तथा आश्चर्य हुआ, क्योंकि नेतागिरी का भूत सबसे भयानक होता है। जिस समय से यह भूत खोपड़ी पर सवार होता है, उसी समय से सब काम चौपट हो जाता है। केवल एक-दूसरे के दोष देखने में समय व्यतीत होता है और वैमनस्य बढ़कर भयंकर परिणामों का उत्पादक होता है। इस प्रकार के समाचार सुन मैंने सबको एकत्रित कर खूब फटकारा। सब अपनी त्रुटि समझकर पछताए और प्रीतिपूर्वक आपस में मिलकर कार्य करने लगे। पर ऐसी अवस्था हो गई थी कि दलबन्दी की नौबत आ गई थी। इस प्रकार से तो दलबन्दी हो ही गई थी। पर मुझ पर सबकी श्रद्धा थी और मेरे वक्तव्य को सब मान लेते थे। सब कुछ होने पर भी मुझे किसी ओर से किसी प्रकार का संदेह न था। किन्तु परमात्मा को ऐसा ही स्वीकार था, जो इस अवस्था का दर्शन करना पड़ा।

गिरफ्तारी

काकोरी डकैती होने के बाद से ही पुलिस बहुत सचेत हुई। बड़े शीर्ष के साथ जाँच आरम्भ हो गई शाहजहाँपुर में कुछ नई मूर्तियों के दर्शन हुए। पुलिस के कुछ विशेष सदस्य मुझसे भी मिले। चारों और शहर में यही चर्चा थी कि रेलवे डकैती किसने कर ली? उन्हीं दिनों शहर में डकैती के एक-दो नोट निकल आये, अब तो पुलिस का अनुसंधान और भी बढ़ने लगा। कई मित्रों ने मुझसे कहा भी कि सतर्क रहो। दो-एक सज्जन ने निश्चितरूपेण समाचार दिया कि मेरी गिरफ्तारी जरूर हो जाएगी। मेरी समझ में कुछ न आया। मैंने विचार किया कि यदि गिरफ्तारी हो भी गई तो पुलिस को मेरे विरुद्ध कुछ भी प्रमाण न मिल सकेगा। अपनी बुद्धिमता पर कुछ अधिक विश्वास था। अपनी बुद्धि के सामने दूसरों की बुद्धि को तुच्छ समझता था।

कुछ यह भी विचार था कि देश की सहानुभूति की परीक्षा की जाए। जिस देश पर हम अपना बलिदान देने को उपस्थित हैं, उस देश के वासी हमारे साथ कितनी सहानुभूति रखते हैं? कुछ जेल का अनुभव भी प्राप्त करना था। वास्तव में मैं काम करते-करते थक गया था। भविष्य के कार्यों में अधिक नर-हत्या का ध्यान करके मैं हत्बुद्धि-सा हो गया था। मैंने किसी के कहने की कोई भी चिन्ता न की।

रात्रि के समय ग्यारह बजे के लगभग एक मित्र के यहां से अपने घर पर गया। रास्ते में खुफिया पुलिस के सिपाहियों से भेंट हुई। कुछ विशेष रूप से उस समय भी वे मेरी देखभाल कर रहे थे। मैंने कोई चिन्ता न की और घर पर जाकर सो गया। प्रातःकाल चार बजने पर जगा, शौचादि से निवृत्त होने पर बाहर द्वार पर बंदूक के कुन्दों का शब्द सुनाई दिया। मैं समझ गया कि पुलिस आ गई है। मैं तुरंत ही द्वार खोलकर बाहर गया। एक पुलिस अफसर ने बढ़कर हाथ पकड़ लिया। मैं गिरफ्तार हो गया। मैं केवल एक अंगोछा पहने हुए था। पुलिस वाले को अधिक भय न था। पूछा कि घर में कोई अस्त्र हो, तो दे दीजिए। मैंने कहा, कोई आपत्तिजनक वस्तु घर में नहीं। उन्होंने बड़ी सज्जनता की। मेरे हथकड़ी इत्यादि कुछ न डाली। मकान की तलाशी लेते समय एक पत्र मिल गया, जो मेरी जेब में था। कुछ होनहार कि तीन-चार पत्र मैंने लिखे थे। डाकखाने में डालने को भेजे, तब तक डाक निकल चुकी थी। मैंने वे सब इस ख्याल से अपने पास ही रख लिए कि डाक के बम्बे में डाल दूंगा। फिर विचार किया जैसे बम्बे में पड़े रहेंगे, वैसे जेब में पड़े हैं मैं उन पत्रों को वापस घर ले आया। उन्हीं में एक पत्र आपत्तिजनक था जो पुलिस के हाथ लग गया। गिरफ्तार होकर पुलिस कोतवाली पहुँचा। वहाँ पर खुफिया पुलिस के एक अफसर से भेंट हुई। उस समय उन्होंने कुछ ऐसी बातें की है जिन्हें मैं या एक व्यक्ति और जानता था। कोई तीसरा व्यक्ति इस प्रकार से ब्यौरेवार नहीं जान सकता था। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ किन्तु संदेह इस कारण न हो सका कि मैं दूसरे व्यक्ति के कार्यों पर अपने शरीर के समान ही विश्वास रखता था। शाहजहाँपुर में जिन-जिन व्यक्तियों की गिरफ्तारी हुई, यह भी बड़ी आश्चर्यजनक प्रतीत होती थी। जिन पर कोई संदेह भी न था, पुलिस उन्हें कैसे जान गई? दूसरे स्थानों पर क्या हुआ, कुछ भी न मालूम हो सका। जेल पहुंच जाने पर मैं थोड़ा-बहुत अनुमान कर सका,

कि सम्भवतः दूसरे स्थानों में भी गिरफ्तारियाँ हुई होगी। गिरफ्तारियों के समाचार सुनकर शहर के सभी मित्र भयभीत हो गए। किसी से इतना भी न हो सका कि जेल में हम तीनों के पास समाचार भेजने का प्रबंध कर देता।

जेल

जेल में पहुँचते ही खुफिया पुलिस वालों ने यह प्रबंध कराया कि हम सब एक-दूसरे से अलग रखे जाएं, किन्तु फिर भी एक-दूसरे से बातचीत हो जाती थी। यदि साधारण कैदियों के साथ रखते तब तो बातचीत का पूर्ण प्रबंध हो जाता, इस कारण से सबको अलग-अलग तनहाई की कोठरियों में बंद किया गया। यही प्रबंध दूसरे जिले की जेलों में भी, जहाँ-जहाँ भी इस सम्बंध में गिरफ्तारियाँ हुई थीं, किया गया था। अलग-अलग सब रखने से पुलिस को यही सुविधा होती है कि प्रत्येक से पृथक्-पृथक् मिलकर बातचीत करते हैं। कुछ भय दिखाते है, कुछ इधर-उधर की बातें करके भेद जानने का प्रयत्न करते हैं। अनुभवी लोग तो पुलिस वालों से मिलने से इंकार ही कर देते हैं। क्योंकि उनसे मिलकर हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ भी नहीं होता। कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जो समाचार जानने के लिए कुछ बातचीत करते हैं। पुलिस वालों से मिलना ही क्या है। वे तो चालबाजी से बात निकालने की ही रोटी खाते हैं। उनका जीवन इसी प्रकार की बातों में व्यतीत होता है। नवयुवक दुनियादारी क्या जाने ? न तो इस प्रकार की बातें ही बना सकते हैं।

जब किसी तरह कुछ समाचार ही न मिलते तब तो जी बहुत घबराता। यही पता नहीं चलता कि पुलिस क्या कर रही है, भाग्य का क्या निर्णय होगा, जितना समय व्यतीत होता जाता था उतनी ही चिंता बढ़ती जाती थी। जेल-अधिकारियों से मिलकर पुलिस यह भी प्रबंध करा देती है कि मुलाकात करने वालों से घर के सम्बंध में बातचीत करें, मुकदमे के सम्बन्ध में कोई बातचीत न करें। सुविधा के लिए सबसे प्रथम यह परमावश्यक है कि एक विश्वास-पात्र वकील किया जाए जो यथासमय आकर बातचीत कर सके। वकील के लिए किसी प्रकार की रुकावट नहीं हो सकती। वकील के साथ अभियुक्त की जो बातें होती हैं, उनको कोई दूसरा सुन नहीं सकता। क्योंकि इस प्रकार का कानून है, यह अनुभव बाद में हुआ। गिरफ्तारी के बाद शाहजहाँपुर के वकीलों से मिलना भी चाहा किन्तु शाहजहाँपुर में ऐसे दब्बू वकील रहते हैं, जो सरकार के विरुद्ध मुकदमे में

सहायता देने में हिचकते हैं। मुझसे खुफिया पुलिस के कप्तान साहब मिले। थोड़ी-सी बातें करके अपनी इच्छा प्रकट की कि मुझे सरकारी गवाह बनाना चाहते हैं। थोड़े दिनों में एक मित्र ने भयभीत होकर कि कहीं वह भी पकड़ा जाए, बनारसीलाल से भेंट की और समझा-बुझाकर उसे सरकारी गवाह बना दिया। बनारसीलाल बहुत घबराया था कि कौन सहायता देगा, सजा जरूर हो जाएगी। यदि किसी वकील से मिल लिया होता तो उसका धैर्य न टूटता। पं. हरकरननाथ शाहजहाँपुर आए, जिस समय वह अभियुक्त श्रीयुत प्रेम खन्ना से मिले, उस समय अभियुक्त ने पं. हरकरन नाथ से बहुत कुछ कहा कि मुझसे तथा दूसरे अभियुक्तों से मिल लें। यदि वह कहा मान जाते और मिल लेते तो बनारसीलाल को साहस हो जाता और वह डटा रहता। उसी रात्रि को पहले एक इंस्पेक्टर बनारसीदास से मिले। फिर जब मैं सो गया तब बनारसीलाल को निकालकर ले गए। प्रातः काल पाँच बजे के करीब, जब बनारसीलाल की कोठरी में कुछ शब्द न सुनाई दिया, तो मैंने बनारसीलाल के पुकारा। पहरे पर जो कैदी था, उससे मालूम हुआ, बनारसीलाल बयान दे चुके। बनारसीलाल के सम्बन्ध में सब मित्रों ने कहा था कि इससे अवश्य धोखा होगा, पर मेरी बुद्धि में कुछ न समाया था। प्रत्येक जानकार ने बनारसीलाल के सम्बन्ध में यही भविष्यवाणी की थी कि वह आपत्ति पड़ने पर अटल न रह सकेगा। इस कारण सबने उसे किसी प्रकार के गुप्त कार्य में लेने की मनाही की थी। अब तो जो होना था सो हो ही गया।

थोड़े दिनों बाद जिला कलक्टर मिले। कहने लगे। फाँसी हो जाएगी। बचना हो तो बयान दे दो। मैंने कुछ उत्तर न दिया। तत्पश्चात् खुफिया पुलिस के कप्तान साहब मिले, बहुत-सी बातें की। कई कागज दिखलाए। मैंने कुछ-कुछ अन्दाजा लगाया कि कितनी दूर तक ये लोग पहुँच गए हैं। मैंने कुछ बातें बनाई, ताकि पुलिस का ध्यान दूसरी और चला जाए, परन्तु उन्हें तो विश्वसनीय सूत्र हाथ लग चुका था, वे बनावटी बातों पर क्यों विश्वास करते? अंत में उन्होंने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि यदि मैं बंगाल का सम्बन्ध बताकर कुछ बोलशेविक सम्बन्ध के विषय में अपना बयान दे दूँ, तो वे मुझे थोड़ी-सी सजा करा देंगे और सजा के थोड़े दिनों बाद ही जेल से निकालकर इग्लैण्ड भेज देंगे और पन्द्रह हजार रुपये पारितोषिक भी सरकार से मिला देंगे। मैं मन-ही-मन में बहुत हँसता था। अंत में एक दिन फिर मुझसे

जेल में मिलने को गुप्तचर विभाग के कप्तान साहब आए। मैंने अपनी कोठरी में से निकलने से ही इंकार कर दिया वह कोठरी पर जाकर बहुत-सी बातें करते रहे, अंत में परेशान होकर चले गए।

शिनाख्त कराई गई। पुलिस को जितने आदमी मिल सके उतने आदमी लेकर शिनाख्त कराई। भाग्यवश श्री अईनुद्दीन साहब मुकदमें के मजिस्ट्रेट मुकर्रर हुए, उन्होंने जी भर के पुलिस की मदद की। शिनाख्तों में अभियुक्तों को साधारण मजिरट्रेटों की भाँति भी सुविधाएँ न दीं। दिखाने के लिए कागज़ी कार्रवाई खूब साफ रखी। जबान के बड़े मीठे थे। प्रत्येक अभियुक्त से बड़े तपाक से मिलते थे। बड़ी मीठी-मीठी बातें करते थे। सब समझते थे कि हमसे सहानुभूति रखते हैं। कोई-न समझ सका कि अन्दर-ही-अन्दर घाव कर रहे हैं। इतना चालाक अफसर शायद ही कोई दूसरा हो। जब तक मुकदमा उनकी अदालत में रहा, किसी को कोई शिकायत का मौका ही न दिया। यदि कभी कोई बात भी हो जाती तो ऐसे ढंग से उसे टालने की कोशिश करते कि किसी को बुरा ही न लगता। बहुधा ऐसा ही हुआ कि खुली अदालत में अभियुक्तों से क्षमा तक माँगने में संकोच न किया। किन्तु कागज़ी कार्रवाई में इतने होशियार थे कि जो कुछ लिखा सदैव अभियुक्तों के विरुद्ध। जब मामला सेशन के सुपुर्द किया और आज्ञा-पत्र में युक्तियाँ दीं, तब सबकी आंखें खुली कि कितना गहरा घाव मार दिया।

मुकद्मा अदालत में न आया था, उसी समय रायबरेली में बनवारीलाल की गिरफ्तारी हुई। मुझे हाल मालूम हुआ। मैने पं. हरकरननाथ से कहा कि सब काम छोड़कर सीधे रायबरेली जाएं और बनारसीलाल से मिलें, किन्तु उन्होंने मेरी बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया मुझे बनारसीलाल पर पहले ही संदेह था, क्योंकि उसका रहन-सहन इस प्रकार का था कि जो ठीक न था। जब दूसरे सदस्यों के साथ रहता तब उनसे कहा करता कि मैं जिला संगठनकर्त्ता हूं। मेरी गणना अधिकारियों में है। मेरी आज्ञा-पालन किया करो। मेरे जूठे बर्तन मला करो। कुछ विलासिताप्रिय भी था, प्रत्येक समय शीशा, कंघा तथा साबुन साथ रखता था। मुझे इससे भय था, किंतु हमारे दल के एक खास आदमी का यह विश्वासपात्र रह चुका था। उन्होंने सैकड़ों रुपए देकर उसकी सहायता की थी। इसी कारण हम लोग भी अन्त तक उसे मासिक सहायता देते रहे थे। मैंने बहुत कुछ हाथ-पैर मारे। पर कुछ भी न

चली और जिसका मुझे भय था, वही हुआ। भाड़े का टट्टू अधिक बोझ न संभाल सका, उसने बयान दे दिए। जब तक यह गिरफ्तार न हुआ था कुछ सदस्यों ने इसके पास जो अस्त्र थे वे माँगे, पर उसने न दिए। जिला अफसर की शान में रहा। गिरफ्तार होते ही सब शान मिट्टी में मिल गई। बनवारीलाल के बयान दे देने से पुलिस का मुकदमा मजबूती पकड़ गया। यदि वह अपना बयान न देता तो मुकदमा बहुत कमजोर था। सब लोग चारों ओर से एकत्रित करके लखनऊ जिला जेल में रखे गए। थोड़े समय तक अलग-अलग रहे, किंतु अदालत में मुकदमा आने से पहले ही एकत्रित कर दिए गए।

मुकदमे में रुपए को जरूरत थी। अभियुक्तों के पास क्या था? उनके लिए धन-संग्रह करना कितना दुस्तर था। न जाने किस प्रकार निर्वाह करते थे। अधिकतर अभियुक्तों का कोई सम्बन्धी पैरवी भी न कर सकता था। जिस किसी के कोई था भी, वह बाल-बच्चों तथा घर को संभालता या इतने समय तक घर-बार को छोड़कर मुकदमा करता? यदि चार अच्छे पैरवी करने वाले होते तो पुलिस का तीन-चौथाई मुकदमा टूट जाता। लखनऊ जैसे जनाने शहर में मुकदमा हुआ, जहाँ अदालत में कोई भी शहर का आदमी न जाता था। इतना भी तो न हुआ कि एक अच्छा प्रेस-रिपोर्टर ही रहता, तो मुकदमें की सारी कार्रवाई को, जो कुछ अदालत में होता था, प्रेस में भेजता रहता। इण्डियन डेली टेलीग्राफ वालों ने कृपा की। यदि कोई अच्छा रिपोर्टर आ भी गया और जो कुछ अदालत की कार्रवाई ठीक-ठीक प्रकाशित हुई तो पुलिस वालों ने जज साहब से मिलकर तुरंत उस रिपोर्टर को निकलवा दिया। जनता को कोई सहानुभूति न थी। जो पुलिस के जी में आया, करती रही इन सारी बातों को देखकर जज का साहस बढ़ गया। उसने जैसा जी चाहा सब कुछ किया या अभियुक्त चिल्लाये-'हाय! हाय!' है पर कुछ भी सुनवाई न हुई और बातें तो दूर, श्रीयुत दामोदर स्वरूप सेठ को पुलिस ने जेल में सड़ा डाला। लगभग एक वर्ष तक वे जेल में तड़पते रहे। सौ पौंड से केवल छियासठ पौंड वजन रह गया। कई बार जेल में मरणासन्न हो गए। नित्य बेहोसी आ जाती थी। लगभग दस मास तक कुछ भी भोजन न कर सके। जो कुछ छटांक-दो-छटांक दूध किसी प्रकार पेट में पहुंच जाता था, उससे इस प्रकार की विकट वेदना होती थी कि कोई उनके पास खड़ा होकर उस

छटपटाने के दृश्य को देख न सकता था। एक मैडिकल बोर्ड बनाया गया, जिसमें तीन डॉक्टर थे। उनकी कुछ समझ में न आया, तो कह दिया गया कि सेठ जी को कोई बीमारी ही नहीं है। जब से काकोरी षड्यंत्र के अभियुक्त जेल में एक साथ रहने लगे, तभी से उनमें एक अद्भुत परिवर्तन का समावेश हुआ, जिसका अवलोकन कर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। जेल में सबसे बड़ी बात तो यह थी कि प्रत्येक आदमी अपनी नेतागिरी की दुहाई देता था। कोई भी बड़े-छोटे का भेद न रहा। बड़े तथा अनुभवी पुरुषों की बातों की अवहेलना होने लगी। अनुशासन का नाम भी न रहा। बहुधा उलटे जवाब मिलने लगे। छोटी-छोटी बातों पर मतभेद हो जाता। इस प्रकार का मतभेद कभी-कभी वैमनस्य तक का रूप धारण कर लेता। आपस में झगड़ा भी हो जाता। खैर जहां बर्तन रहते हैं, वहाँ खटकते ही हैं। ये लोग तो मनुष्य देहधारी थे। परंतु लीडरी की धुन ने पार्टीबन्दी का ख्याल पैदा कर दिया। जो युवक जेल के बाहर अपने से बड़ों की आज्ञा को वेद-व्यास के समान मानते थे, वे ही उन लोगों का तिरस्कार तक करने लगे। इसी प्रकार आपस का वाद-विवाद कभी-कभी भयंकर रूप धारण कर लिया करता। प्रांतीय प्रश्न छिड़ जाता। बंगाली तथा संयुक्त प्रांतवासियों के कार्य की आलोचना होने लगती। इसमें कोई संदेह नहीं कि बंगाल ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में दूसरे प्रांतों से अधिक कार्य किया है, किन्तु बंगालियों की हालत यह है कि जिस किसी कार्यालय या दफ्तर में एक कभी बंगाली पहुंच जाएगा, थोड़े ही दिनों में उस कर्यालय या दफ्तर में बंगाली-ही-बंगाली दिखाई देंगे। जिस शहर में बंगाली रहते हैं उनकी बस्ती अलग ही बसती है। बोली भी अलग। खान-पान भी अलग। जेल में यही सब अनुभव हुआ।

जिन महानुभावों को मैं त्याग की मूर्ति समझता था, उनके अन्दर भी बंगालीपने का भाव देखा। मैंने जेल से बाहर कभी स्वप्न में भी यह विचार न किया था कि क्रान्तिकारी दल के सदस्यों में भी प्रान्तीयता के भावों का समावेश होगा। मैं तो यही समझता रहा कि क्रान्तिकारी तो समस्त भारतवर्ष को स्वतन्त्र करने का प्रयत्न कर रहे हैं, उनका किसी प्रान्त विशेष से क्या सम्बन्ध? परन्तु साक्षात् देख लिया कि प्रत्येक बंगाली के दिमाग में कविवर रवीन्द्रनाथ का गीत 'अमर सोनार बांगला, आमि तोमाके भालोवासी' (मेरे सोने का बंगला, मैं तुझसे मुहब्बत करता हूँ) ठूँस-ठूँस कर भरा था, जिसका

उनके नौमित्तिक जीवन में पग-पग पर प्रकाश होता था। अनेक प्रयत्न करने पर भी जेल के बाहर इस प्रकार का अनुभव कदापि न प्राप्त हो सकता था। बडी भयंकर-से-भयंकर आपत्ति में भी मेरे मुख से आह न निकली, प्रिय सहोदर का देहांत होने पर भी आँख से आँसू न गिरा, किन्तु इस दल के कुछ व्यक्ति ऐसे थे, जिनकी आज्ञा को मैं संसार में सबसे श्रेष्ठ मानता था जिनकी जरा-सी कड़ी दृष्टि भी मैं सहन न कर सकता था, जिनके कटु वचनों के कारण मेरे हृदय पर चोट लगती थी और अणुओं का श्रोत उबल पड़ता था। मेरी इस अवस्था को देखकर दो-चार मित्रों को, जो मेरी प्रकृति को जानते थे, बड़ा आश्चर्य होता था। लिखते हुए हृदय कम्पित होता है कि उन्हीं सज्जनों में बंगाली तथा अबंगाली का भाव इस प्रकार भरा था कि बंगालियों की बड़ी-से-बड़ी भूल, हठधर्मी तथा भीरुता की अहवेलना की गई। यह देखकर अन्य पुरुषों का साहस बढ़ता था, नित्य कई चालें चली जाती थी आपस में ही एक-दूसरे के विरुद्ध षड्यंत्र रचे जाते थे। बंगालियों का न्याय-अन्याय सब सहन कर लिया जाता था। इन सारी बातों ने मेरे हृदय को टूक-टूक कर डाला। सब कृत्यों को देख मैं मन-ही-मन घुटा करता।

एक बार विचार हुआ कि सरकार से समझौता कर लिया जाए। बैरिस्टर साहब ने खुफिया पुलिस के कप्तान से परामर्श आरम्भ किया। किन्तु यह सोचकर कि इससे क्रान्तिकारी दल की निष्ठा न मिट जाए, यह विचार छोड़ दिया गया। युवक वृन्द को सम्मति हुई कि अनशन व्रत करके सरकार से हवालाती की हालत में ही माँगें पूरी करा ली जाएँ क्योंकि लम्बी-लम्बी सजाएँ होंगी। संयुक्त प्रान्त की जेलों में साधारण कैदियों का भोजन खाते हुए सज़ा काटकर जेल से जिन्दा निकलना कोई सरल कार्य नहीं। जितने राजनीतिक कैदी षड्यन्त्रों के सम्बन्ध में सज़ा पाकर इस प्रान्त की जेलों में रखे गए, उनमें से पांच-छः महात्माओं ने इस प्रान्त को जेलों के व्यवहार के कारण ही जेलों में प्राण त्याग दिए।

इस विचार के अनुसार काकोरी के लगभग सब हवालातियों ने अनशन व्रत आरम्भ कर दिया। दूसरे ही दिन पृथक् कर दिए गए। कुछ व्यक्ति डिस्ट्रिक्ट जेल में रखे गए, कुछ सैंट्रल जेल में भेजे गए। अनशन करते पंद्रह दिवस व्यतीत हो गए, तब सरकार के कान पर भी जूँ रेंगी। उधर सरकार का कहाँ नुकसान हो रहा था। जज साहब तथा दूसरे कचहरी के कार्यकर्त्ताओं

को घर बैठे वेतन देना पड़ता था। सरकार को स्वयं चिंता थी कि किसी प्रकार अनशन छूटे। जेल अधिकारियों ने पहले आठ आने रोज तय किए। मैंने उस समझौते को अस्वीकार कर दिया और बड़ी कठिनता से दस आने रोज पर ले आया। उस अनशन व्रत में पंद्रह दिवस तक मैंने जल पीकर निर्वाह किया था। सोलहवें दिन नाक से दूध पिलाया गया था। श्रीयुत रोशन सिंहजी ने भी इसी प्रकार मेरा साथ दिया था। वे पंद्रह दिन तक बराबर चलते-फिरते रहे थे। स्नानादि करके अपने नैमित्तिक कर्म भी कर लिया करते थे। दस दिन तक मेरे मुख को देखकर अनजान पुरुष यह अनुमान भी नहीं कर सकता था कि मैं अन्न नहीं खाता।

समझौते के जिन खुफिया पुलिस के अधिकारियों से मुख्य नेता महोदय का वार्तालाप बहुधा एकांत में हुआ करता था, समझौते की बात खत्म हो जाने पर भी आप उन लोगों से मिलते रहे। मैंने कुछ विशेष ध्यान न दिया। यदा-कदा दो-एक बात से पता चलता कि समझौते के अतिरिक्त कुछ दूसरी बातें होती हैं। मैंने इच्छा प्रकट की कि मैं भी एक समय सी.आई. डी. के कप्तान से मिलूँ, क्योंकि मुझसे पुलिस बहुत असन्तुष्ट थी। मुझे पुलिस से न मिलने दिया गया। परिणामस्वरूप सी.आई.डी. वाले मेरे दुश्मन हो गए। सब मेरे व्यवहार की ही शिकायत किया करते। पुलिस अधिकारियों से बातचीत करके मुख्य नेता महोदय को कुछ आशा बंध गई। आपका जेल से निकलने का उत्साह जाता रहा। जेल से निकलने के उद्योग में जो उत्साह था, वह बहुत ढीला हो गया। नवयुवकों की श्रद्धा को मुझसे हटाने के लिए अनेकों प्रकार की बातें की जाने लगी। मुख्य नेता महोदय ने स्वयं कुछ कार्यकर्ताओं से मेरे सम्बन्ध में कहा कि ये कुछ रुपए खा गए। मैंने एक-एक पैसे का हिसाब रखा था। जैसे ही मैंने इस प्रकार की बातें सुनीं, मैंने कार्यकारिणी के सदस्यों के सामने रखकर हिसाब देना चाहा, और अपने विरुद्ध आक्षेप करने वाले को दण्ड देने का प्रस्ताव उपस्थित किया। अब तो बंगालियों का साहस न हुआ कि मुझसे हिसाब समझें। मेरे आचरण पर भी आक्षेप किए गए।

जिस दिन सफाई की बहस मैंने समाप्त की, सरकारी वकील ने उठकर मुक्त कण्ट से मेरी बहस की प्रशंसा की कि सैकड़ों वकीलों से अच्छी बहस की। मैंने नमस्कार का उत्तर दिया कि आपके चरणों की कृपा है, क्योंकि इस मुकदमे के पहले मैंने किसी अदालत में समय न व्यतीत किया था,

सरकारी तथा सफाई के वकीलों की जिरह को सुनकर मैंने भी साहस किया था। इसके बाद सबसे पहले मुख्य नेता महाशय के विषय में सरकारी वकील ने बहस करनी शुरू की। खूब ही आड़े हाथों लिया। अब तो मुख्य नेता महाशय का बुरा हाल था, क्योंकि उन्हें आशा थी कि सम्भव है सबूत की कमी से वे छूट जाएँ या अधिक-से-अधिक पाँच या दस वर्ष की सजा हो जाये। आखिर चैन न पड़ी। सी.आई.डी. अफसरों को बुलाकर जेल में उनसे एकांत में डेढ़ घंटे तक बातें हुई। युवक मंडल को इसका पता चला। सब मिलकर मेरे पास आये। कहने लगे, इस समय सी.आई.डी. अफसर से क्यों मुलाकात की जा रही है? मेरी जिज्ञासा पर उत्तर मिला कि सजा होने के बाद जेल में क्या व्यवहार होगा, इस सम्बन्ध में बातचीत कर रहे हैं। मुझे सन्तोष न हुआ। दो या तीन दिन बाद मुख्य नेता महाशय एकांत में बैठकर कई घण्टे तक कुछ लिखते रहे। लिखकर कागज जेब में रख भोजन करने गए। मेरी अंतरात्मा ने कहा, 'उठ देख तो क्या हो रहा है?' मैंने जेब से कागज निकालकर पढ़े। पढ़कर शोक तथा आश्चर्य की सीमा न रही। पुलिस द्वारा सरकार को क्षमा-प्रार्थना भेजी जा रही थी। भविष्य के लिए किसी प्रकार के हिंसात्मक आन्दोलन या कार्य में भाग न लेने की प्रतिज्ञा की गई थी। Undertaking दी गई थी। मैंने मुख्य कार्यकर्ताओं से सब विवरण कहकर इस सबका कारण पूछा कि क्या हम लोग इस योग्य भी नहीं रहे, जो हमसे किसी प्रकार का परामर्श किया जाए? तब उत्तर मिला कि व्यक्तिगत बात थी। मैंने बड़े जोर के साथ विरोध किया कि यह कदापि व्यक्तिगत बात नहीं हो सकती। खूब फटकार बतलाई। मेरी बातों को सुन चारों ओर खलबली पड़ी। मुझे बड़ा क्रोध आया कि कितनी धूर्तता से काम लिया गया। मुझे चारों ओर से चढ़ाकर लड़ने के लिए प्रस्तुत किया गया। मेरे विरुद्ध षड्यंत्र रचे गए। मेरे ऊपर अनुचित आक्षेप किए गए, नवयुवकों के जीवन का भार लेकर लीडरी की शान झाड़ी गई और थोड़ी-सी आपत्ति पड़ने पर इस प्रकार बीस-बीस वर्ष के युवकों को बड़ी-बड़ी सजाएँ दिला, जेल में सड़ने को डालकर स्वयं बंधेज से निकल जाने का प्रयत्न किया गया। धिक्कार है ऐसे जीवन को। किंतु सोच-समझकर चुप रहा।

अभियोग

काकोरो में रेलवे ट्रेन लुट जाने के बाद ही पुलिस का विशेष विभाग

उक्त घटना का पता लगाने के लिए तैनात किया गया। एक विशेष व्यक्ति मि. हार्टन इस विभाग के निरीक्षक थे। उन्होंने घटनास्थल तथा रेलवे पुलिस की रिपोर्टों को देखकर अनुमान किया कि सम्भव है यह कार्य कान्तिकारियों का हो। प्रांत के क्रांतिकारियों की जांच शुरू हुई। उसी समय शाहजहाँपुर में रेलवे डकैती के तीन नोट मिले। चोरी गए नोटों की संख्या सौ से अधिक थी, जिनका मूल्य लगभग एक हजार रुपए होगा। इनमें से लगभग सात सौ या आठ सौ रुपए के मूल्य के नोट सीधे सरकार के खजाने में पहुँच गए। अतः सरकार नोटों के मामले को चुपचाप पी गई। ये नोट लिस्ट प्रकाशित होने से पूर्व ही सरकारी खजाने में पहुँच चुके थे। पुलिस का लिस्ट प्रकाशित करना व्यर्थ हुआ। सरकारी खजाने में से ही जनता के पास कुछ नोट लिस्ट प्रकाशित होने के पूर्व ही पहुँच गए थे, इस कारण वे जनता के पास निकल आये।

उन्हीं दिनों में जिला खुफिया पुलिस को मालूम हुआ कि मैं 8, 9 तथा 10 अगस्त सन् 1925 ई. को शाहजहांपुर में नहीं था। अधिक जांच होने लगी। इसी जाँच-पड़ताल में पुलिस को मालूम हुआ कि गवर्नमेंट स्कूल शाहजहांपुर के इन्दुभूषण मित्र नामी एक विद्यार्थी के पास मेरे क्रान्तिकारी दल सम्बंधी पत्र आते हैं, जो वह मुझे दे आता है। स्कूल के हैडमास्टर द्वारा इन्दुभूषण के पास आये हुए पत्रों की नकल करा के हार्टन साहब के पास भेजी जाती रही। इन्हीं पत्रों से हार्टन साहब को मालूम हुआ कि मेरठ में प्रांत की क्रान्तिकारी समिति की बैठक होने वाली है। उन्होंने एक सब-इंस्पेटर को मेरठ-अनाथालय में, जहां पर मीटिंग होने का पता चला था, भेजा। उन्हीं दिनों हार्टन साहब को किसी विशेष सूत्र से मालूम हुआ कि शीघ्र ही कनखल में डाका डालने का प्रबन्ध क्रान्तिकारी समिति के सदस्य कर रहे हैं और सम्भव है कि किसी बड़े शहर में डाकखाने की आमदनी लूटी जाए। हार्टन साहब को एक सूत्र से एक पत्र मिला जो मेरे हाथ का लिखा था। इस पत्र में सितम्बर में होने वाले श्राद्ध का जिक्र था जिसकी 13 तारीख निश्चित की गई थी। पत्र में था कि दादा का श्राद्ध नं. 1 पर 13 सितम्बर को होगा, अवश्य पधारिये। मैं अनाथालय में मिलूँगा। पत्र पर 'रुद्र' के हस्ताक्षर थे।

आगामी डकैतियों को रोकने के लिए हार्टन साहब ने प्रांत भर में 26 सितम्बर सन् 1925 हैं, को लगभग तीस मनुष्यों को गिरफ़्तार किया।

उन्हीं दिनों में इन्दुभूषण के पास आए हुए पत्र से पता लगा कि कुछ वस्तुएँ बनारस में किसी विद्यार्थी की कोठरी में बंद हैं। अनुमान किया गया कि संभव है कि वे हथियार हों, अनुसंधान करने से हिन्दू विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी की कोठरी से दो राइफलें निकलीं। उस विद्यार्थी को कानपुर में गिरफ़्तार किया गया। इन्दुभूषण ने मेरी गिरफ़्तारी की सूचना एक पत्र द्वारा बनारस को भेजी। जिसके पास पत्र भेजा था, उसे पुलिस गिरफ्तार कर चुकी थी, क्योंकि उसे श्री रामनाथ पाण्डेय के पते का पत्र मेरी गिरफ्तारी के समय मेरे मकान से पाया था। रामनाथ पाण्डेय के पत्र पुलिस के पास पहुँचे थे अतः इन्दुभूषण को गिरफ़्तार किया गया। इन्दुभूषण ने दूसरे दिन अपना बयान दे दिया गिरफ़्तार किए हुए व्यक्तियों में से कुछ से मिल-मिलाकर बनारसीलाल ने भी, जो शाहजहाँपुर की जेल में था, अपना बयान दे दिया और वह सरकारी गवाह बना लिया गया। यह कुछ अधिक जानता था। इसके बयान से क्रान्तिकारी पत्र के पार्सलों का पता चला। बनारस के डाकखाने से जिन-जिनके पास पार्सल भेजे गए थे उनको पुलिस ने गिरफ़्तार किया। कानपुर में गोपीनाथ ने, जिसके नाम पार्सल गया था, गिरफ़्तार होते ही पुलिस को बयान दे दिया और वह सरकारी गवाह बना लिया गया। इसी प्रकार रायबरेली में स्कूल के विद्यार्थी कुंवर बहादुर के पास पार्सल गया था, उसने भी गिरफ़्तार होते ही बयान दे दिया और सरकारी गवाह बना लिया गया। इसके पास मनीआर्डर भी आया करते थे, क्योंकि यह बनवारीलाल का पोस्ट बॉक्स (डाक पाने वाला) था। इसने बनवारीलाल के एक रिशतेदार का पता बताया, जहाँ तलाशी लेने से बनवारीलाल का एक ट्रंक मिला इस ट्रंक में एक कारतूसी पिस्तौल, एक कारतूसी फौजी रिवाल्वर तथा कुछ कारतूस पुलिस के हाथ लगे। श्री बनवारीलाल भी पकड़ लिए गए। गिरफ़्तारी के थोड़े दिनों बाद ही पुलिस वाले मिले, उल्टा-सीधा सुझाया और बनवारीलाला ने भी अपना बयान दे दिया तथा इकबाली मुलज़िम बनाए गये। श्रीयुत बनवारीलाल ने काकोरी डकैती में अपना सम्मिलित होना बताया था। उधर कलकत्ते में दक्षिणेश्वर में एक मकान में बम बनाने का सामान, एक बना हुआ बम, 7 रिवाल्वर, पिस्तौल तथा कुछ राजद्रोहात्मक साहित्य पकड़ा गया। इसी मकान में श्रीयुत राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी बी.ए., जो इस मुकदमें में फरार थे, गिरफ़्तार हुए।

इन्दुभूषण के गिरफ्तार हो जाने के बाद उसके हैडमास्टर को एक पत्र मध्य प्रांत से मिला जिसे उसने हार्टन साहब के पास वैसा ही भेजा दिया। इस पत्र से एक व्यक्ति मोहनलाल खत्री का चान्दा में पता चला। वहां से पुलिस ने खोज लगाकर पूना में श्रीयुत राम कृष्ण खत्री को गिरफ़्तार करके लखनऊ भेजा। बनारस में भेजे हुए पार्सलों के सम्बन्ध से जबलपुर में श्रीयुत प्रणवेश कुमार चटर्जी को गिरफ़्तार करके भेजा गया। कलकत्ता से श्रीयुत शचीन्द्रनाथ सन्याल, जिन्हें बनारस षड्यंत्र से आजन्म काले पानी की सज़ा हुई थी और जिन्हें बाँकुरा में 'क्रान्तिकारी' पर्चे बाँटने के कारण दो वर्ष को सज़ा हुई थी, इस मुकदमे में लखनऊ भेजे गए। श्रीयुत योगेशचन्द्र चटर्जी बंगाल आर्डिनेंस के कैदी हज़ारी बाग जेल से भेजे गए। आप अक्टूबर सन् 1924 ई. में कलकत्ते में गिरफ्तार हुए थे। आपके पास दो कागज पाए गए थे, जिनमें संयुक्त प्रांत के सब जिलों का नाम था और लिखा था कि बाईस जिलों में समिति का कार्य हो रहा था। ये कागज इस षड्यंत्र के सम्बन्ध के समझे गए। श्रीयुत राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी दक्षिणेश्वर बम केस में दस वर्ष के दीपान्तर की सज़ा पाने के बाद इस मुकद्मे में लखनऊ भेजे गए। अब लगभग छत्तीस मनुष्य गिरफ्तार हुए थे। अट्ठाईस पर मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा चला। तीन आदमी– (1) श्रीयुत शचीन्द्रनाथ बख्सी, (2) श्रीयुत चन्द्रशेखर आजाद हैं (3) श्रीयुत अशफ़ाकउल्ला खाँ फरार रहे। बाकी सब मुकदमा अदालत में आने से पहले छोड़ दिए गए। अट्ठाईस में दो पर से मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा उठा लिया गया। दो को सरकारी गवाह बनाकर उन्हें माफी दी गई। अंत में मजिस्ट्रेट ने इक्कीस व्यक्तियों को सेशन के सुपुर्द किया। सेशन में मुकद्मा आने पर श्रीयुत दामोदर स्वरूप सेठ बहुत बीमार हो गए। अदालत न आ सकते थे, अतः अन्त में बीस व्यक्ति रह गए। बीस में से दो व्यक्ति श्रीयुत शचीन्द्र नाथ बिस्वास तथा श्रीयुत हरगोविन्द सेशन की अदालत से मुक्त हुए। बाकी अठारह को सजाएं हुई।

श्री बनवारीलाल इकबाली मुलज़िम हो गए। वे रायबरेली जिला कांग्रेस कमेंटी के मंत्री भी रह चुके हैं। उन्होंने असहयोग आन्दोलन में छः मास का कारावास भी भोगा था। इस पर भी पुलिस की धमकी से प्राण संकट में पड़ गए। आप ही हमारी समिति के ऐसे सदस्य थे कि जिन पर समिति का सबसे अधिक धन व्यय किया गया। प्रत्येक मास आपको पर्याप्त धन भेजा

जाता था। मर्यादा की रक्षा के लिए हम लोग यथाशक्ति बनवारीलाल को मासिक शुल्क दिया करते थे। अपने पेट काटकर इनको मासिक व्यय दिया गया। फिर भी इन्होंने अपने सहायकों की गर्दन पर छुरी चलाई। अधिक-से-अधिक दस वर्ष की सजा हो जाती। जिस प्रकार सबूत इनके विरुद्ध था, वैसे ही, इसी प्रकार के दूसरे अभियुक्तों पर था, जिन्हें दस-दस वर्ष की सजा हुई। यही नहीं, पुलिस के बहकाने से सेशन में बयान देते समय जो नई बातें इन्होंने जोड़ी, उनमें मेरे सम्बंध में कहा कि रामप्रसाद डकैतियों के रुपए से अपने परिवार का निर्वाह करता है। इस बात को सुनकर मुझे हँसी भी आई, पर हृदय पर बड़ा आघात लगा कि जिनकी उदर-पूर्ति के लिए प्राणों को संकट में डाला, दिनों को दिन और रात को रात न समझा, बुरी तरह से मार खाई, माता-पिता का कुछ भी ख्याल न किया, वही इस प्रकार आक्षेप करें।

समिति के सदस्यों ने इस प्रकार का व्यवहार किया। बाहर जो साधारण जीवन के सहयोगी थे, जिन्होंने भी अद्‌भुत रूप धारण किया। एक ठाकुर साहब के पास काकोरी डकैती का नोट मिल गया था। वह कहीं शहर में पा गए थे। जब गिरफ़्तारी हुई, मजिस्ट्रेट के यहां जमानत नामंजूर हुई, जज साहब ने चार हजार की जमानत माँगी। कोई जमानती न मिलता था। आपके वृद्ध भाई मेरे पास आये। पैरों पर सिर रखकर रोने लगे। मैंने जमानत कराने का प्रयत्न किया। मेरे माता-पिता कचहरी जाकर खुले रूप से पैरवी करने को मना करते रहे कि पुलिस खिलाफ है, रिपोर्ट हो जाएगी, पर मैंने एक न सुनी। कचहरी जाकर, कोशिश करके जमानत दाखिल कराई। जेल में उन्हें स्वयं जाकर छुड़ाया। पर जब मैंने उक्त महाशय का नाम उक्त घटना की गवाही देने के लिए सूचित किया, तब पुलिस ने उन्हें धमकाया और उन्होंने पुलिस को तीन बार लिखकर दे दिया कि हम रामप्रसाद को जानते भी नहीं। हिन्दू-मुस्लिम झगड़े में जिनके घरों की रक्षा की थी, जिनके बाल-बच्चे मेरे सहारे मुहल्ले में निर्भयता से निवास करते रहे, उन्होंने ही मेरे खिलाफ झूठी गवाहियां बनवाकर भेजी। कुछ मित्रों के भरोसे पर उनका नाम गवाही में दिया कि जरूर गवाही देंगे। संसार लौट जाए पर वे नहीं डिग सकते। पर वचन दे चुकने पर भी जब पुलिस का दबाव पड़ा, वे भी गवाही देने से इंकार कर गए। जिनको अपना हृदय, सहोदर तथा मित्र समझ कर

हर तरह की सेवा करने को तैयार रहता था, जिस प्रकार की आवश्यकता होती यथाशक्ति उनको पूर्ण करने की प्राणप्रण से चेष्टा करता था, उनसे इतना भी न हुआ कि कभी जेल पर आकर दर्शन दे जाते, फाँसी की कोठरी में ही आकर संतोषदायक दो बातें कर जाते। एक-दो सज्जनों ने इतनी कृपा तथा साहस किया कि दस मिनट के लिए अदालत में दूर खड़े होकर दर्शन दे गए। यह सब इसलिए कि पुलिस का आतंक छाया हुआ था कि गिरफ्तार न कर लिए जाएं। इस पर भी जिसने जो कुछ किया मैं उसी को अपना सौभाग्य समझता हूं, और उनका आभारी हूं-

वह फूल चढ़ाते हैं, तुर्बत भी दबी जाती।
माशूक के थोड़े से भी एहसान बहुत हैं।।

परमात्मा से यही प्रार्थना है कि सब प्रसन्न तथा सुखी रहें। मैंने तो सब बातों को जानकर ही इस मार्ग पर पैर रखा था। मुकदमें के पहले संसार का कोई अनुभव ही न था। न कभी जेल देखी, न किसी अदालत का कोई तजुर्बा था। जेल में जाकर मालूम हुआ कि किसी नई दुनिया में पहुँच गया। मुकदमें से पहले मैं यह भी न जानता था कि कोई लेखन-कला-विज्ञान भी है, इसका कोई विशेषज्ञ (Hand writing expert) भी होता है, जो लेखन-शैली को देखकर लेखकों का निर्णय कर सकता हैं। यह भी नहीं पता था कि लेख किस प्रकार मिलाये जाते हैं, एक मनुष्य के लेख में क्या भेद होता है, क्यों भेद होता है, लेखन कला विशेषज्ञ हस्ताक्षर को प्रमाणित कर सकता है तथा लेखक के वास्तविक लेख में तथा बनावटी से लेख में भेद कर सकता है, इस प्रकार का कोई भी अनुभव तथा ज्ञान न रखते हुए भी एक प्रांत की क्रांतिकारी समिति का संम्पूर्ण भार लेकर उसका संचालन कर रहा था। बात यह है कि क्रांतिकारी कार्य की शिक्षा देने के लिए कोई पाठशाला तो है ही नहीं। यही हो सकता था कि पुराने अनुभवी क्रांतिकारी से कुछ सीखा जाए। न जाने कितने व्यक्ति बंगला तथा पंजाब के षड्यंत्रों में गिफ्तार हुए, पर किसी ने भी यह उद्योग न कि एक इस प्रकार की पुस्तक लिखी जाए, जिससे नवागन्तुकों को कुछ अनुभव को बातें मालूम होती।

लोगों को इस बात की बड़ी उत्कंठा होगी कि क्या यह पुलिस का भाग्य ही था, जो सब बना-बनाया मामला हाथ आ गया। क्या पुलिस वाले परोक्ष ज्ञानी होते हैं? कैसे गुप्त बातों का पता चला लेते हैं? कहना पड़ता

है कि यह देश का दुर्भाग्य! सरकार का सौभाग्य! बंगाल पुलिस के सम्बन्ध में तो अधिक कहा नहीं जा सकता, क्योंकि मेरा कुछ विशेषानुभव नहीं। इस प्रांत की खुफ़िया पुलिस वाले तो महान भौंदू होते हैं जिन्हें साधारण ज्ञान भी नहीं होता। साधारण पुलिस से खुफ़िया में आते है। साधारण पुलिस को दरोगाई करते हैं, मजे में लम्बी-लम्बी घूस खाकर बड़े-बड़े पेट बढ़ा आराम करते हैं। उनकी बला तकलीफ़ उठाए। यदि कोई एक-दो चालाक हुए भी तो थोड़े दिन बड़े ओहदे की फ़िराक में काम दिखाया, दौड़- धूप की, कुछ पद-वृद्धि हो गई और सब काम बन्द। इस प्रांत में कोई बाकायदा पुलिस का गुप्तचर विभाग नहीं, जिसको नियमित रूप से शिक्षा दी जाती हो। फिर काम करते-करते अनुभव हो ही जाता है। मैनपुरी षड्यंत्र तथा इस षड्यंत्र से इसका पूरा पता लग गया कि थोड़ी-सी कुशलता से कार्य करने पर पुलिस के लिए पता पाना बड़ा कठिन है। वास्तव में उनके कुछ भाग्य ही अच्छे होते हैं। जब से इस मुकदमे की जांच शुरू हुई, पुलिस ने इस प्रांत के संदिग्ध क्रांतिकारी व्यक्तियों पर दृष्टि डाली, उनसे मिली, बातचीत की। एक-दो को कुछ धमकी दी। 'चोर की दाढ़ी में तिनका' वाली जनश्रुति के अनुसार एक महाशय से पुलिस को सारा भेद मालूम हो गया। हम सब-के-सब चक्कर में थे कि इतनी जल्दी पुलिस ने मामले का पता कैसे लगा लिया। उक्त महाशय की ओर तो ध्यान भी न जा सकता था। पर गिरफ़्तारी के समय मुझसे तथा पुलिस के अफसर से जो बातें हुई, उनमें पुलिस अफ़सर ने वे सब बातें मुझसे कहीं जिनको मेरे तथा उक्त महाशय के अतिरिक्त कोई भी दूसरा जान ही न सकता और भी बड़े पक्के तथा बुद्धिगम्य प्रमाण मिल गए कि जिन बातों को उक्त महाशय जान सके थे, वे ही पुलिस जान सकी। जो बातें आपको मालूम न थीं, वे पुलिस को किसी प्रकार न मालूम हो सकीं। उन बातों से यह निश्चय हो गया कि यह काम उन्हीं महाशय का है। यदि ये महाशय पुलिस के हाथ न आते और भेद न खोल देते, तो पुलिस सिर पटक कर रह जाती, कुछ भी पता न चलता। बिना दृढ़ प्रमाणों के भयंकर-से-भयंकर व्यक्ति पर भी हाथ रखने का साहस नहीं होता, क्योंकि जनता में आंदोलन फैलने से बदनामी हो जाती है। सरकार पर जवाबदेही आती है। अधिक-से-अधिक दो-चार मनुष्य पकड़े जाते और अन्त में उन्हें भी छोड़ना पड़ता। परंतु जब पुलिस को वास्तविक

सूत्र हाथ आ गया, उसने अपनी सत्यता को प्रमाणित करने के लिए लिखा हुआ प्रमाण पुलिस को दे दिया। उस अवस्था में यदि पुलिस गिरफ्तारियां न करती तो फिर कब करती? जो हुआ, परमात्मा उनका भी भला करे। अपना तो जीवन-भर यही उसूल रहा-

सताये तुझको जो कोई बेवफा 'बिस्मिल'।
तो मुंह से कुछ न कहना आह! कर लेना।।
हम शहीदाने वफ़ा का दीनो इमां और है।
सिजदे करते हैं हमेशा पांव पर जल्लाद के।।

मैंने इस अभियोग में जो भाग लिया अथवा जिनकी जिंदगी की जिम्मेदारी मेरे सिर पर थी, उनमें से ज्यादा हिस्सा श्रीयुत अशफ़ाकउल्ला खां वारसी का है। मैं अपनी कलम से उनके लिए भी अंतिम समय में दो शब्द लिख देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

अशफ़ाक

मुझे भली-भांति याद है कि जब मैं बादशाही ऐलान के बाद शाहजहांपुर आया था तो तुमसे स्कूल में भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझसे मिलने की बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुमने मुझसे मैनपुरी षड्यंत्र के सम्बन्ध में कुछ बातचीत करनी चाही थी। मैंने यह समझकर कि एक स्कूल का मुसलमान विद्यार्थी मुझसे इस प्रकार की बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातों का उत्तर उपेक्षा की दृष्टि से दे दिया था। तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था। तुम्हारे मुख से हार्दिक भावों का प्रकाश हो रहा था। तुमने अपने इरादे को यों ही नहीं छोड़ दिया, अपने निश्चय पर डटे रहे। जिस प्रकार हो सका कांग्रेस में बातचीत की। अपने इष्ट-मित्रों द्वारा इस बात का विश्वास दिलाने की कोशिश की कि तुम बनावटी आदमी नहीं, तुम्हारें दिल में मुल्क की खिदमत करने की ख्वाहिश थी। अन्त में तुम्हारी विजय हुई। तुम्हारी कोशिशों ने मेरे दिल में जगह पैदा कर ली। तुम्हारे बड़े भाई मेरे उर्दू मिडिल के सहपाठी तथा मित्र थे, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े दिनों में ही तुम मेरे छोटे भाई के समान हो गए थे, किन्तु छोटे भाई बनकर तुम्हें संतोष न हुआ। तुम समानता का अधिकार चाहते थे। तुम मित्र की श्रेणी में अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ। तुम सच्चे मित्र बन गए। सबको आश्चर्य था कि एक कट्टर आर्यसमाजी और मुसलमान का मेल कैसा? मैं मुसलमानों की शुद्धि करता

था। आर्यसमाज मंदिर में मेरा निवास था, किन्तु तुम इन बातों की किंचित्मात्र चिंता न करते थे। मेरे कुछ साथी तुम्हें मुसलमान होने के कारण घृणा की दृष्टि से देखते थे, किन्तु तुम अपने निश्चय से दृढ़ थे। मेरे पास आर्यसमाज मंदिर में आते-जाते थे। हिन्दु-मुस्लिम झगड़ा होने पर, तुम्हारे मुहल्ले के सब कोई तुम्हें खल्लमखुल्ला गालियां देते थे, काफ़िर के नाम से पुकारते थे, पर तुम कभी भी उनके विचारों से सहमत न हुए। सदैव हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के पक्षपाती रहे। तुम एक सच्चे मुसलमान तथा सच्चे स्वदेश भक्त थे। तुम्हें यदि जीवन में कोई विचार था, तो यही कि मुसलमानों को खुदा अक्ल देता कि वे हिन्दुओं के साथ मिल करके हिन्दुस्तान की भलाई करते। जब मैं हिन्दी में कोई लेख या पुस्तक लिखता तो तुम सदैव यही अनुरोध करते कि उर्दू में क्यों नहीं लिखते, जो मुसलमान भी पढ़ सके? तुमने स्वदेश-भक्ति के भावों को भली-भांति समझने के लिए ही हिन्दी का अच्छा अध्ययन किया। अपने घर पर जब माताजी तथा भ्राताजी से बातचीत करते थे, तो तुम्हारे मुँह से हिन्दी के शब्द निकल जाते थे, जिसमें सबको बड़ा आश्चर्य होता था।

तुम्हारी इस प्रकार को प्रवृत्ति को देखकर बहुतों को संदेह होता था कि कहीं इस्लाम-धर्म त्याग कर शुद्धि न करा लो। पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था, फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते? तुम्हारी इस प्रकार की प्रगति ने मेरे हृदय पर पूर्ण विजय पा ली। बहुधा मित्र-मंडली में बात छिड़ती कि कहीं मुसलमान पर विश्वास करके धोखा न खाना। तुम्हारी जीत हुई, मुझमें तुममें कोई भेद न था। बहुधा मैंने तुमने एक थाली में भोजन किए। मेरे हृदय से वह विचार ही जाता रहा कि हिन्दू-मुसलमान में कोई भेद है। तुम मुझ पर अटल विश्वास तथा अगाध प्रीति रखते थे। हाँ! तुम मेरा नाम लेकर पुकार नहीं सकते थे। तुम तो सदैव 'राम' कहा करते थे। एक समय जब तुम्हारे हृदय-कम्प (Palpitation of heart) का दौरा हुआ, तुम अचेत थे, तुम्हारे मुँह से बारम्बार 'राम' 'हाय राम' शब्द निकल रहे थे। पास खड़े हुए भाई-बंधुओं को आश्चर्य था कि 'राम' कहता है। कहते कि 'अल्लाह', 'अल्लाह' कहो, पर तुम्हारी 'राम' 'राम' की रट थी। उसी समय किसी मित्र का अगमन हुआ, जो 'राम' के भेद को जानते थे। तुरंत मैं बुलाया गया। मुझसे मिलने पर तुम्हें शान्ति हुई, तब सब लोग 'राम राम!' के भेद

का समझे।

अन्त में इस प्रेम, प्रीति तथा मित्रता का परिणाम क्या हुआ? मेरे विचारों के रंग में तुम भी रंग गए। तुम भी कट्टर क्रांतिकारी बन गए। अब तो तुम्हारा दिन-रात प्रयत्न यहीं था कि किस प्रकार मुसलमान नवयुवकों में भी क्रांतिकारी भावों का प्रवेश हो। वे भी क्रांन्तिकारी आन्दोलन में योगदान दें । जितने तुम्हारे बंधु तथा मित्र थे सब पर तुमने अपने विचारों का प्रभाव डालने का प्रयत्न किया। बहुधा क्रान्तिकारी सदस्यों को भी बड़ा आश्चर्य होता कि मैंने कैसे एक मुसलमान को क्रांतिकारी दल का प्रतिष्ठित सदस्य बना दिया। मेरे साथ तुमने जो कार्य किए, वे सराहनीय हैं। तुमने कभी मेरी आज्ञा की अवहेलना न की। एक आज्ञाकारी भक्त के समान मेरी आज्ञा-पालन में तत्पर रहते थे। तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल था। तुम्हारे भाव बड़े उच्च थे।

मुझे यदि शान्ति है तो यही कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेखनीय हो गई कि अशफ़ाक उल्ला ने क्रांतिकारी आंदोलन में योग दिया। अपने भाई-बंधु तथा सम्बन्धियों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। गिरफ़्तार हो जाने पर भी अपने विचारों में दृढ़ रहे। जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मा से उच्च सिद्ध हुए। इन सबके 'परिणामस्वरूप अदालत में तुमको मेरा सहकारी (लेफ्टीनण्ट) ठहराया गया और जज ने मुकदमे का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले में जयमाला (फाँसी की रस्सी) पहना दी। प्यारे भाई, तुम्हें यह समझकर संतोष होगा कि जिसने अपने माता-पिता की धन-सम्पति को देश-सेवा में अर्पण करके उन्हें भिखारी बना दिया, जिसने अपने सहोदर के भावी भाग्य को भी देश-सेवा की भेंट कर दिया, जिसने अपना तन-मन-धन सर्वस्व मातृ-सेवा में अर्पण करके अपना अंतिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफ़ाक को भी उसी मातृ-भूमि की भेंट चढ़ा दिया।

'असगर' हरीम इश्क में हस्ती ही जुर्म है।
रखना कभी न पाँव यहाँ सर लिये हुए ।।

फाँसी की कोठरी

अंतिम समय निकट है। दो फाँसी को सज़ाएं सिर पर झूल रही हैं। पुलिस

के साधारण जीवन में और समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं में खूब जी भर के कोसा है। खुली अदालत में जज साहब, खुफ़िया पुलिस के अफसर, मजिस्ट्रेट, सरकारी वकील तथा सरकार को खूब आड़े हाथों लिया है। हरेक के दिल में मेरी बातें चुभ रही हैं। कोई दोस्त आशना अथवा यार-मददगार नहीं, जिसका सहारा हो एक परमपिता परमात्मा की याद है। गीता पाठ करते हुए संतोष है कि-

जो कुछ किया सो तैं किया, मैं कुछ कीन्हा नाहिं।
जहां कहीं कुछ मैं किया, तुम ही थे मुझ माहिं।।
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संग त्यवत्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेभ्याः पझपत्रमिवाभ्यसः।।

भगवद्गीता/5/16

'जो फल की इच्छा को त्याग करके कर्मों को ब्रह्म में अर्पण करके धर्म करता है, वह पाप से लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार जल में रहकर भी कमल-पत्र जल में नहीं होता।' जीवनपर्यन्त जो कुछ किया, स्वदेश की भलाई समझकर किया। यदि शरीर की पालना की तो इसी विचार से कि सुदृढ़ शरीर से भली प्रकार स्वदेशी सेवा हो सके। बड़े प्रयत्नों से यह शुभ दिन प्राप्त हुआ। संयुक्त प्रांत में इस तुच्छ शरीर का ही सौभाग्य होगा। जो सन् 1857 ई. के गदर की घटनाओं के पश्चात् क्रांतिकारी आंदोलन के सम्बंध में इस प्रांत के निवासी का पहला बलिदान मातृ-वेदी पर होगा।

सरकार की इच्छा है कि मुझे घोट-घोटकर मारे। इसी कारण इस गर्मी की ऋतु में साढ़े तीन महीने बाद अप्रैल की तारीख नियत की गई। साढ़े तीन महीने तक फांसी की कोठरी में भूंजा गया। यह कोठरी पक्षी के पिंजरे से भी खराब है। गोरखपुर जेल में फांसी की कोठरी मैदान में बनी है। किसी प्रकार की छाया निकट नहीं। प्रातःकाल आठ बजे से रात्रि के आठ बजे तक सूर्य देवता की कृपा से तथा चारों ओर रेतीली जमीन होने से अग्नि-वर्षण होता रहता है। नौ फीट लम्बी तथा नौ फीट चौड़ी खिड़की है। इसी कोठरी में भोजन, स्नान, मूल-मूत्र त्याग तथा शयनादि होता है। मच्छर अपनी मधुर ध्वनि रात-भर सुनाया करते हैं। बड़े प्रयत्न से रात्रि में तीन या चार घंटे निद्रा आती है, किसी-किसी दिन एक-दो घंटे ही सोकर निर्वाह करना पड़ता है। मिट्टी के पात्रों में भोजन दिया जाता है। ओढ़ने-बिछाने के दो

कम्बल मिले हैं। बड़े त्याग का जीवन है। साधना के सब साधन एकत्रित हैं। प्रत्येक क्षण शिक्षा दे रहा है-अंतिम समय के लिए तैयार हो जाओ, परमात्मा का भजन करो।

मुझे तो इस कोठरी में बड़ा आनंद आ रहा है। मेरी इच्छा थी कि किसी साधु की गुफा पर कुछ दिन निवास करके योगाभ्यास किया जाता। अंतिम समय वह इच्छा भी पूर्ण हो गई। साधु की गुफा न मिली तो क्या, साधना की गुफा तो मिल गई। इसी कोठरी में यह सुयोग प्राप्त हो गया कि अपनी कुछ अंतिम बात लिखकर देशवासियों को अर्पण कर दूं। सम्भव है कि मेरे जीवन के अध्ययन से किसी आत्मा का भला हो जाए। बड़ी कठिनता से यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ।

महसूस हो रहे हैं बादे फना के झोंके।
खुलने लगे हैं मुझे पर असरार ज़िंदगी के।।
बारे अलम उठाया रंगे निशात देखा।
आये नहीं हैं यूं ही अंदाज बेहिसी के।।
वफ़ा पर दिल को सदके जान को नज़रे ज़फ़ा कर दे।
मुहब्बत में यह लाज़िम है कि जो कुछ हो फ़िदा कर दे।।

अब तो यही इच्छा है कि-

बहे बहरे फ़ना में जल्व या रब लाश 'बिस्मिल' की।
कि भूखी मछलियां हैं जौहरे शमशीर कातिल थी।।
समझकर फूंकता इसकी ज़रा ऐ दागे नाकामी।
बहुत से घर भी हैं आबाद इस उजड़े हुए दिल से।।

परिणाम

ग्यारह वर्ष पर्यन्त यथाशक्ति प्राणपण से चेष्टा करने पर भी हम अपने उद्देश्य में कहां तक सफल हुए? इसका विचार करने से कुछ अधिक प्रयोजन सिद्ध न होगा, क्योंकि हमने लाभ-हानि अथवा जय-पराजय के विचार से क्रांतिकारी दल में योग नहीं दिया था। हमने जो कुछ किया वह अपना कर्तव्य समझकर किया। कर्तव्य-निर्णय में हमने कहां तक बुद्धिमता से काम लिया, इसका विवेचन करना उचित जान पड़ता है। राजनैतिक दृष्टि से हमारे कार्यों का इतना ही मूल्य है कि कतिपय होनहार युवकों के जीवन को कष्टमय बनाकर नीरस कर दिया और उन्हीं में से कुछ ने व्यर्थ में जान

गंवाई। कुछ धन भी खर्च किया। हिन्दू-शास्त्र के अनुसार किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती, जिसका जिस विधि से जो काल होता है, वह उसी विधि समय पर ही प्राण त्याग करता है। केवल निमित्त-मात्र कारण उपस्थित हो जाते हैं। लाखों भारतवासी महामारी, हैज़ा, ताऊन इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों से मर जाते हैं। करोड़ों दुर्भिक्ष भी अन्न बिना प्राण त्यागते हैं, तो उसका उत्तरदायित्व किस पर है? रह गया धन का व्यय, सो इतना धन तो भले आदमियों के विवाहोत्सवों में व्यय हो जाता हे। गणमान व्यक्तियों की तो केवल विलासिता की सामग्री का मासिक व्यय करना होगा, जितना कि हमने एक षड्यंत्र के निर्माण में व्यय किया। हम लोगों को डाकू बताकर फांसी और काले पानी की सजाएं दी गई हैं। किन्तु हम समझते हैं कि वकील और डॉक्टर हमसे कहीं बड़े डाकू हैं। वकील-डॉक्टर दिन-दहाड़े बड़े-बड़े ताल्लुकेदारों की जायदादें लूटकर खा गए। वकीलों के चाटे हुए अवध के ताल्लुकेदारों को ढूंढ़े रास्ता भी दिखाई नहीं दे और वकीलों की ऊंची अट्टालिकाएं उन पर खिलखिला कर हंस रही हैं। इस प्रकार लखनऊ में डॉक्टरों के भी ऊंचे-ऊंचे महल बन गए। किन्तु राज्य में दिन के डाकुओं की प्रतिष्ठा है। अन्यथा रात में साधारण डाकुओं और दिन के इन डाकुओं (वकीलों तथा डॉक्टरों) में कोई भेद नहीं, दोनों अपने-अपने मतलब के लिए शुद्धि की कुशलता से प्रजा का धन लूटते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से हम लोगों के कार्य का बहुत बड़ा मूल्य है। जिस प्रकार भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि गिरी हुई अवस्था में भी, भारतवासी यवुकों के हृदय में स्वाधीनता होने के भाव विराजमान हैं। वे स्वतंत्र होने की यथाशक्ति चेष्टा भी करते हैं। यदि परिस्थितियां अनुकुल होती तो यही इने-गिने नवयुवक अपने प्रयत्नों से संसार को चकित कर देते। उस समय भारतवासियों को भी फ्रांसीसियों की भांति कहने का सौभाग्य प्राप्त होता जो कि उस जाति के नवयुवकों ने फ्रांसीसी प्रजातंत्र की स्थापना करते हुए कहा था The monoument so raised, may serve as a lesson to the oppressors and an instance to the oppressed. अर्थात् स्वाधीनता का जो स्मारक निर्माण किया गया है, वह अत्याचारियों के लिए शिक्षा का कार्य करे और अत्याचार पीड़ितों के लिए उदाहरण बने।

गाज़ी मुस्तफा कमलापाशा जिस समय तुर्की से भागे थे, उस समय

केवल इक्कीस युवक आपके साथ थे। कोई साज़ो-सामान न था, मौत का वारंट पीछे-पीछे घूम रहा था। पर समय ने ऐसा पलटा खाया कि उसी कमाल ने अपने कमाल से संसार को आश्चर्यान्वित कर दिया। वहीकातिल कमालपाशा टर्की का भाग्य निर्माता बन गया। महामना लेनिन को एक दिन शराब के पीपों में छिपकर भागना पड़ा था, नहीं तो मृत्यु में कुछ देर न थी। वही महात्मा लेनिन रूस के भाग्यविधाता बने। श्री शिवाजी डाकू और लुटेरे समझे जाते थे, पर समय आया जब कि हिन्दू जाति ने उन्हें अपना सिरमौर बना, गौर ब्राह्मण-रक्षक छत्रपति शिवाजी बना दिया। भारत सरकार को भी अपने स्वार्थ के लिए छत्रपति के स्मारक निर्माण कराने पड़े। क्लाइव एक उदण्ड विद्यार्थी था, जो अपने जीवन से निराश हो चुका था। समय के फेर ने उसी उदण्ड विद्यार्थी को अंग्रेज जाति का राज्य स्थापनकर्त्ता लार्ड क्लाइव बना दिया। श्री सुनयात सेन चीन के अराजकतावादी पलातक (भागे हुए) थे। समय ने ही उसी पलातक को चीनी प्रजातंत्र का सभापति बना दिया। सफलता ही मनुष्य के भाग्य का निर्माण करती है। असफल होने पर उसी को बर्बर, डाकू, अराजक, राजद्रोही तथा हत्यारे के नामों से विभूषित किया जाता है। सफलता उन्हीं सब नामों को बदलकर दयालु, प्रजापालक, न्यायकारी, प्रजातंत्रवादी तथा महात्मा बना देती है।

भारतवर्ष के इतिहास में हमारे प्रयत्नों का उल्लेख करना ही पड़ेगा, किन्तु इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि भारतवर्ष की राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक किसी प्रकार की परिस्थिति इस समय क्रांतिकारी आंदोलन के पक्ष में नहीं है। इसका कारण यही है कि भारतवासियों में शिक्षा का अभाव है। वे साधारण से साधारण सामाजिक उन्नति करने में भी असमर्थ हैं। फिर राजनीतिक क्रांति की बात कौन कहे? राजनीतिक क्रांति के लिए सर्वप्रथम क्रांतिकारियों का संगठन ऐसा होना चाहिए कि अनेक विघ्न तथा बाधाओं के उपस्थित होने पर भी संगठन में किसी प्रकार त्रुटि न आए। सब कार्य यथावत् चलते रहें। कार्यकर्त्ता इतने योग्य तथा पर्याप्त संख्या में होने चाहिए कि एक की अनुपस्थिति में दूसरा स्थान-पूर्ति के लिए सदा उद्यत रहे। भारतवर्ष में कई बार कितने ही षड्यंत्रों का भण्डा फूट गया और सब किया-कराया काम चौपट हो गया। जब क्रांतिकारी दलों की यह अवस्था है तो फिर क्रांति के लिए उद्योग कौन करे? देशवासी इतने शिक्षित हों कि वे वर्तमान सरकार की

नीति को समझकर अपने हानि-लाभ को जानने में समर्थ हो सकें। वे यह भी पूर्णतया समझते हों कि वर्तमान सरकार को हटाना आवश्यक है या नहीं साथ ही साथ उनमे इतनी बुद्धि भी होनी चाहिए कि किस रीति से सरकार को हटाया जा सकता है? क्रांतिकारी दल क्या है? वह क्या करना चाहता है? क्यों करना चाहता है? इस सारी बातों को जनता की अधिक संख्या समझ सकें, क्रांतिकारियों के साथ जनता को पूर्ण सहानुभूति हो, तब कहीं क्रांतिकारी दल को देश में पैर रखने का स्थान मिल सकता है। यह तो क्रांतिकारी दल की स्थापना की प्रारंभिक बातें हैं। रह गई क्रांति, सो वह तो बहुत दूर की बात है। क्रांति का नाम ही बड़ा भंयकर है। प्रत्येक की क्रांति विपक्षियों को भयभीत कर देती है। जहां रात्रि होती है तो दिन का आगमन जान निशिचरों को दुःख होता है। ठंडी जलवायु में रहने वाले पशु-पक्षी गरमी के आने पर उस देश को भी त्याग देते हैं। फिर राजनीतिक क्रांति तो बड़ी भयावनी होती है। मनुष्य अभ्यासों का समूह है। अभ्यासों के अनुसार ही उसकी प्रकृति भी बन जाती है। उसके विपरीत जिस समय कोई बाधा उपस्थित होती है, तो उनको भय प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सरकार के सहायक अमीर और जमींदार होते हैं। ये लोग कभी नहीं चाहते कि उनके ऐशो-आराम में किसी प्रकार की बाधा पड़े। इसलिए वे हमेशा क्रांतिकारी आंदोलन को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। यदि किसी दूसरे देशों की सहायता लेकर, समय पाकर क्रांतिकारी दल क्रांति के उद्योग में सफल हो जाए, देश में क्रांति हो जाए तो भी योग्य नेता न होने से अराजकता फैलकर व्यर्थ की नरहत्या होती है और उस प्रयत्न में अनेकों सुयोग्य वीरों तथा विद्वानों का नाश हो जाता है। इसका ज्वलन्त उदाहरण सन् 1857 ई. का गदर है। यदि फ्रांस तथा अमेरीका की भांति क्रांति द्वारा राजतंत्र को पलटकर प्रजातंत्र स्थापित भी कर लिया जाए तो बड़े-बड़े धनी पुरुष अपने धन, बल से सब प्रकार के अधिकारों को दबा बैठते हैं। कार्यकारिणी समितियों में बड़े-बड़े अधिकार धनियों को प्राप्त हो जाते हैं। देश के शासन में धनियों का मत ही उच्च आदर पाता है। धन-बल से देश के समाचार-पत्रों, कल-कारखानों तथा खानों पर उनका ही अधिकार हो जाता है। मजबूरन जनता की अधिक संख्या धानिकों का समर्थन करने को बाध्य हो जाती है। जो दिमाग वाले होते हैं, वे भी समय पाकर बुद्धिबल से जनता को खरी

कमाई से प्राप्त किये अधिकारों को हड़प कर बैठते हैं। स्वार्थ के वशीभूत होकर वे श्रमजीवियों तथा कृषकों को उन्नति का अवसर नहीं देते। अन्त में ये लोग भी धनिकों के पक्षपाती होकर राजतंत्र के स्थान में धनिकतंत्र की ही स्थापना करते हैं। रूसी क्रांति के पश्चात् यही हुआ था। रूस के क्रांतिकारी इस बात को पहले से ही जानते थे। अतएव उन्होंने राज्य-सत्ता के विरुद्ध युद्ध करके राजतंत्र की समाप्ति की। इसके बाद जैसे ही धनी तथा बुद्धिजीवियों ने रोड़ा अटकाना चाहा कि उसी समय उनसे भी युद्ध करके उन्होंने वास्तविक प्रजातंत्र की स्थापना की।

अब विचारने की बात यह है कि भारतवर्ष में क्रांतिकारी आंदोलन के समर्थक कौन-कौन से साधन मौजूद हैं? पूर्व पृष्ठों में मैंने अपने अनुभवों का उल्लेख करके दिखला दिया है कि समिति के सदस्यों की उदर-पूर्ति तक के लिए कितना कष्ट उठाना पड़ा। प्राणपण से चेष्टा करने पर भी असहयोग आंदोलन के पश्चात् कुछ थोड़े-से ही गिने-चुने युवक युक्त प्रांत में ऐसे मिल सके, जो क्रांतिकारी आंदोलन का समर्थन करके सहायता देने को उद्यत हुए। इन गिने-चुने व्यक्तियों में भी हार्दिक सहानुभूति रखने वाले, अपनी जान पर खेल जाने वाले, कितने थे, उसका कहना ही क्या है। कैसी बड़ी-बड़ी आशाएं बंधाकर इन व्यक्तियों को क्रांतिकारी समिति का सदस्य बनाया गया था और इस अवस्था में जबकि असहयोगियों ने सरकार की ओर से घृणा उत्पन्न कराने में कोई कसर न छोड़ी थी, खुले रूप में राजद्रोही बातों का पूर्ण प्रचार किया गया था। इस पर भी बोलशेविक सहायता की आशाएं बंधा-बंधा कर तथा क्रांतिकारियों को ऊंचे-ऊंचे आदर्शों तथा बलिदानों का उदाहरण दे-देकर प्रोत्साहन दिया जाता था। नवयुवकों के हृदय में क्रांतिकारियों के प्रति बड़ा प्रेम तथा श्रद्धा होती हैं। उनकी अस्त्र-शस्त्र रखने की स्वाभाविक इच्छा तथा रिवाल्वर या पिस्तौल से प्राकृतिक प्रेम उन्हें क्रांतिकारी जवीन में एक भी युवक ऐसा न देखा, जो एक रिवाल्वर या पिस्तौल अपने पास रखने की इच्छा न रखता हो। जिस समय उन्हें रिवाल्वर के दर्शन होते हैं, वे समझते हैं कि इष्टदेव के दर्शन प्राप्त हुए, आधा जीवन सफल हो गया। उसी समय से वे समझते हैं कि क्रांतिकारी दल के पास इस प्राकर के सहस्त्रों अस्त्र होंगे, तभी तो इतनी बड़ी सरकार से युद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। सोचते हैं कि धन की भी कोई कमी न होगी। अब क्या, अब समिति के व्यय से

देश-भ्रमण का अवसर भी प्राप्त होगा, बड़े-बड़े त्यागी महात्माओं के दर्शन होंगे, सरकारी गुप्तचर विभाग का भी हाल मालूम हो सकेगा, सरकार द्वारा जब्त किताबें कुछ तो पहले ही पढ़ा दी जाती हैं, रही-सही की भी आशा रहती है कि बड़ा उच्च साहित्य देखने को मिलेगा, जो यों कभी प्राप्त नहीं हो सकता। साथ ही साथ ख्याल होता है कि क्रांतिकारियों ने देश के राजा-महाराजाओं को तो अपने पक्ष में कर ही लिया होगा। अब क्या, थोड़े दिन की ही कसर है, लौटा दिया सरकार का राज्य! बम बनाना सीख ही जाएंगे। अमर बूटी प्राप्त हो जाएगी, इत्यादि। परंतु जैसे ही एक युवक क्रांतिकारी दल का सदस्य बनकर हार्दिक प्रेम से समिति के कार्यों में योग देता है, थोड़े दिनों में ही उसे विशेष सदस्य होने के अधिकार प्राप्त होते हैं, वह ऐक्टिव (कार्यशील) मेम्बर बनता है, उसे संस्था का कुछ असली भेद मालूम होता है, तब समझ में आता है कि कैसे भीषण कार्य में उसने हाथ डाला है। फिर तो वही दशा हो जाती है, जो 'नकटा पंथ' के सदस्यों की थी। जब चारों ओर से सफलता तथा अविश्वास की घटाएं दिखाई देती हैं, तब यही विचार होता है कि ऐसे दुर्गम पथ में ये परिणाम तो होते ही हैं। दूसरे देश के क्रांतिकारियों के मार्ग में भी ऐसी ही बाधाएं उपस्थित हुई होंगी। वीर वही कहलाता है जो अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ता, इसी प्रकार की बातों से मन को शांत किया जाता है। भारत के जनसाधारण की तो कोई बात ही नहीं। अधिकांश शिक्षित समुदाय भी यह नहीं जानता कि क्रांतिकारी दल क्या चीज है, फिर उनसे सहानुभूति कौन रखे? बिना देशवासियों की सहानुभूति के अथवा बिना जनता की आवाज के सरकार भी किसी बात की कुछ चिन्ता नहीं करती। दो-चार पढ़े-लिखे एक-दो अंग्रेजी अखबार में दबे हुए शब्दों में यदि दो-एक लेख लिख दें, तो वे अरण्यरोदन के समान निष्फल सिद्ध होते हैं। उनकी ध्वनि व्यर्थ में ही आकाश में विलीन हो जाती है। तमाम बातों को देखकर अब तो मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि अच्छा हुआ जो मैं गिरफ़्तार हो गया और भागा नहीं। भागने की मुझे सुविधाएं थी। गिरफ़्तारी से पहले ही मुझे अपनी गिरफ़्तारी का पूरा पता चल गया था। गिरफ़्तारी के पूर्व भी यदि इच्छा करता तो पुलिस वालों को मेरी हवा भी न मिलती, किन्तु मुझे तो अपनी शक्ति की परीक्षा करनी थी। गिरफ्तारी के बाद सड़क पर आधे घंटे तक बिना किसी बंधन के घूमता रहा। पुलिस वाले शांतिपूर्वक

बैठे हुए थे। जब पुलिस कोतवाली में पहुंचा, दोपहर के समय पुलिस कोतवाली के दफ़्तर में बिना किसी बंधन के खुला बैठा हुआ था। केवल एक सिपाही निगरानी के लिए पास बैठा हुआ था, जो रातभर का जागा था। सब पुलिस अफसर भी रात-भर के जगे हुए थे, क्योंकि गिरफ़्तारियों में लगे रहे थे। सब आराम करने चले गए थे। निगरानी वाला सिपाही भी घोर निन्द्रा में सो गया। दफ्तर में केवल एक मुंशी लिखा-पढ़ी कर रह थे। यह भी श्रीयुत रोशनसिंह अभियुक्त के फूफीजात भाई थे। यदि मैं चाहता तो धीरे उठकर चल देता। पर मैंने विचारा की मुंशीजी महाशय बुरे फंसेंगे। मैंने मुंशीजी को बुलाकर कहा कि यदि भावी आपत्ति के लिए तैयार हों तो मैं जाऊं। वे मुझे पहले से जानते थे। पैरों पड़ गए कि गिरफ़्तार हो जाउंगा, बाल-बच्चे भूखों भर जायेंगे। मुझे दया आ गई। एक घंटे बाद श्री अशफ़ाकउल्ला खां के मकान की तलाशी लेकर पुलिस वाले लौटे। श्री अशफ़ाकउल्ला खां के भाई की कारतूसी बन्दूक और कारतूसों की भरी हुई पेटी लेकर उन्हीं मुंशीजी के पास रख दी गई और मैं पास ही कुर्सी पर खुला हुआ बैठा था। केवल एक सिपाही खाली हाथ पास में खड़ा था। इच्छा हुई कि बन्दूक उठाकर कारतूसों की पेटी गले में डाल लूं, फिर कौन सामने आता है। पर फिर सोचा की मुंशीजी पर आपत्ति आएगी, विश्वासघात करना ठीक नहीं। उस समय खुफिया पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट सामने छत पर आए उन्होंने देखा कि मेरे एक ओर कारतूस और बन्दूक पड़ी है, दूसरी ओर श्रीयुत प्रेमकृष्ण का माउज़र पिस्तौल तथा कारतूस रखे हैं, क्योंकि सब चीजें मुंशीजी के पास आकर जमा होती थीं और मैं बिना किसी बंधन के बीच में खुला हुआ बैठा हूं। डि.सु. को तुरंत संदेह हुआ, उन्होंने बन्दूक तथा पिस्तौल को वहां से हटवाकर मालखाने में बंद करवाया। निश्चय किया कि अब भाग चलूं। पाखाने के बहाने से बाहर निकाला गया। एक सिपाही कोतवाली से बाहर दूसरे स्थान में शौच के निमित्त लिवा गया। दूसरे सिपाहियों ने उससे बहुत कुछ कहा कि रस्सी डाल लो। उसने कहा, मुझे विश्वास है यह भागेंगे नहीं। पाखाना नितान्त निर्जन स्थान में था। मुझे पाखाने भेजकर वह सिपाही खड़े होकर सामने कुश्ती देखने लगा। मैंने दीवार पर पैर रखा और चढ़कर देखा कि सिपाही महोदय कुश्ती देखने में मस्त हैं। हाथ बढ़ाते ही दीवार के ऊपर और एक क्षण में बाहर हो जाता, फिर मुझे कौन पाता? किन्तु तुरंत विचार

आया कि जिस सिपाही ने विश्वास करके तुम्हे इतनी स्वतंत्रता दी, उसके साथ विश्वासघात करके भागकर उसको जेल में डालेंगे? क्या यह अच्छा होगा? उसके बाल-बच्चे क्या कहेंगे? इस भाव ने हृदय पर एक ठोकर लगाई। एक ठण्डी सांस भरी, दीवार से उतरकर बाहर आया, सिपाही महोदय को साथ लेकर कोतवाली की हवालात में आकर बंद हो गया।

लखनऊ जेल में काकोरी के अभियुक्तों को बड़ी भारी आजादी थी। राय साहब पं. चम्पालाल जेलर की कृपा से हम कभी न समझ सके कि जेल में हैं या किसी रिश्तेदार के यहां मेहमानी कर रहे हैं। जैसे माता-पिता से छोटे-छोटे लड़के बात-बात पर बिगड़ जाते हैं, यही हमारा हाल था। हम लोग जेल वालों से बात-बात पर ऐंठ जाते। पं. चम्पालालजी का ऐसा हृदय था कि वे हम लोगों से अपनी संतान से भी अधिक प्रेम करते थे। हममें से किसी को जरा-सा कष्ट होता था, तो उन्हें बड़ा दुःख होता था। हमारे तनिक -से कष्ट को भी वह स्वयं न देख सकते थे और हम लोग ही क्यों, उनके जेल में किसी कैदी या सिपाही, जमादार या मुंशी किसी को भी कोई कष्ट नहीं। सब बड़े प्रसन्न रहते थे। इसके अतिरिक्त मेरी दिनचर्या तथा नियमों का पालन देखकर पहरे के सिपाही अपने गुरु से भी अधिक मेरा सम्मान करते थे। मैं यथानियम जाड़े, गर्मी तथा बरसात में प्रातःकाल तीन बजे से उठकर संध्यादि से निवृत्त हो नित्य हवन भी करता था। प्रत्येक पहरे का सिपाही देवता के समान मेरा पूजन करता था। यदि किसी के बाल-बच्चे को कष्ट होता था, तो वह हवन की भभूत ले जाता था। कोई जंत्र मांगता था। उनके विश्वास के कारण उन्हें आराम भी होता था तथा उनकी श्रद्धा और भी बढ़ जाती थी। परिणामस्वरूप जेल से निकल जाने का पूरा प्रबंध कर लिया। जिस समय चाहता चुपचाप निकल जाता। एक रात्रि को तैयार होकर उठ खड़ा हुआ। बैरक के नम्बरदार तो मेरे सहारे पहरा देते थे। जब जी में आता सोते, जब इच्छा होती बैठ जाते, क्योंकि वे जानते थे कि यदि सिपाही या जमादार सुपरिण्टेण्डेट के सामने जेल में पेश करना चाहेंगे, तो मैं बचा लूंगा। सिपाही तो कोई चिन्ता ही न करते थे। चारों ओर शान्ति थी। केवल इतना प्रयत्न करना था कि लोहे की कटी हुई सलाखों को उठाकर बाहर हो जाऊं चार महीने पहले से लोहे की सलाखें काट ली थीं। काटकर वे ऐसे ढंग से जमा दी थीं कि सलाखें धोई गई, रंगत लगवाई गई, तीसरे दिन झाड़ी

जातीं, आठवें दिन हथौड़ें से ठोंकी जाती और जेल के अधिकारी नित्य प्रति सायंकाल घूमकर सब ओर दृष्टि डाल जाते थे, पर किसी को कोई पता न चला। जैसे ही मैं जेल से भागने का विचार करके उठा था, ध्यान आया कि जिन पं. चम्पालाल की कृपा से सब प्रकार के आनंद भोगने की स्वतंत्रता जेल में प्राप्त हुई, उनके बुढ़ापे में जबकि थोड़ा सा समय ही उनकी पेंशन के लिए बाकी है तथा उन्हीं के साथ विश्वघात करके निकल भागूं? सोचा जीवन भर किसी के साथ विश्वासघात न किया। अब भी विश्वासघात न करूंगा। उस समय मुझे यह भली-भांति मालूम हो चुका था कि मुझे फांसी की सजा होगी, पर उपरोक्त बात सोचकर भागना स्थगित ही कर दिया। ये सब बातें चाहे प्रलाप ही क्यों न मालूम हों, किन्तु सब अक्षरशः सत्य है, सबके प्रमाण विद्यमान हैं।

मैं इस समय इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि यदि हम लोगों ने प्राणपण से जनता को शिक्षित बनाने में पूर्ण प्रयत्न किया होता, तो हमारा उद्योग क्रांतिकारी आंदोलन से कहीं अधिक लाभदायक होता, जिसका परिणाम स्थायी होता। अति उत्तम होगा यदि भारत की भावी संतान तथा नवयुवकवृन्द क्रांतिकारी संगठन करने की अपेक्षा जनता की प्रकृति को देश-सेवा की ओर लगाने का प्रयत्न करें और श्रमजीवी तथा कृषकों का संगठन करके उनको जमींदारों तथा रईसों के अत्याचारों से बचाएं। भारतवर्ष के रईस तथा जमींदार सरकार के पक्षपाती हैं। मध्य श्रेणी के लोग किसी-न किसी प्रकार इन्हीं तीनों के आश्रित हैं। कोई तो नौकरीपेशा हैं और जो कोई व्यवसाय भी करते हैं, उन्हें भी इन्हीं के मुंह की ओर ताकना पड़ता है। रह गए श्रमजीवी तथा कृषक-सो उनको उदर-पूर्ति के उद्योग से ही समय नहीं मिलता, जो धर्म, समाज तथा राजनीति की ओर कुछ ध्यान दे सकें। मद्यपानादि दुर्व्यसनों के कारण उनका आचरण भी ठीक नहीं रह सकता। व्यभिचार-संतान-वृद्धि, अल्पायु में मृत्यु तथा अनेक प्रकार के रोगों से जीवन-भर उनकी मुक्ति नहीं हो सकती। कृषकों में उद्योग का तो नाम भी नहीं पाया जाता। यदि एक किसान को जमींदार की मजदूरी करने या हल चलाने की नौकरी करने पर ग्राम में आज से बीस वर्ष पूर्व दो आने रोज या चार रुपये मासिक मिलते थे, तो आज भी वही वेतन बंधा चला आ रहा है। बीस वर्ष पूर्व वह अकेला था, अब उसकी स्त्री तथा चार संतानें भी हैं। पर

उसी वेतन में उसे निर्वाह करना पड़ता है। उसे उसी पर संतोष करना पड़ता है। सारे दिन जेठ की लू तथा धूप में गन्ने के खेत में पानी देते-देते उसको रतौंधी आने लगती है। अंधेरा होते ही आंख से दिखाई नहीं देता, पर उसके बदले में आधा सेर सड़े हुए शीरे का शरबत या आधा सेर चना तथा छः पैसे रोज मजदूरी मिलती है, जिसमें ही उसे अपने परिवार का पेट पालना पड़ता है।

जिसके हृदय में भारतवर्ष की सेवा के भाव उपस्थित हों, या जो भारतभूमि को स्वतंत्र देखने या स्वाधीन बनाने की इच्छा रखते हों, उसे उचित है कि ग्रामीण संगठन करके कृषकों की दशा सुधारकर, उनके हृदय से भाग्य-निर्भरता को हटाकर उद्योगी बनने की शिक्षा दें। कल-कारखाने, रेलवे, जहाज, तथा खानों में जहां कहीं श्रमजीवी हों, उनकी दशा को सुधारने के लिए श्रमजीवियों के संघ की स्थापना की जाए, ताकि उनकी अपनी अवस्था का ज्ञान हो सके और कारखानों के मालिक मनमाने अत्याचार न कर सकें और अछूतों को, जिनकी संख्या इस देश में लगभग छः करोड़ है, पर्याप्त् शिक्षा प्राप्त कराने का प्रबंध हो तथा उनको सामाजिक अधिकारों में समानता मिले। जिस देश में छः करोड़ मनुष्य अछूत समझे जाते हों, उस देश के वासियों को स्वाधीन बनाने का अधिकार ही क्या है? इसी के साथ-ही-साथ स्त्रियों की दशा भी इतनी सुधारी जाए कि वे अपने आपको मनुष्य जाति का अंग समझने लगें। वे पैर की जूती तथा घर की गुड़िया न समझी जाएं। इतने कार्य हो जाने के बाद जब भारत की जनता का अधिकांश भाग शिक्षित हो जाएगा, वे अपनी भलाई-बुराई समझने के योग्य हो जाएंगे, उस समय प्रत्येक आंदोलन जिसका शिक्षित जनता समर्थन करेगी, अवश्य सफल होगा। संसार की बड़ी-से-बड़ी शक्ति भी उसको दबाने में समर्थ न हो सकेगी। रूस में जब तक किसान संगठन नहीं हुआ, रूस सरकार की ओर से देश-सेवकों पर मनमाने अत्याचार होते रहे। जिस समय से 'कैथोराइन' ने ग्रामीण-संगठन का कार्य अपने हाथ लिया, स्थान-स्थान पर कृषक-सुधारक संघों की स्थापना की, घूम-घूमकर रूस के युवक साथ युवतियों ने ज़ारशाही के विरुद्ध प्रचार आरम्भ किया, तभी से किसानों को अपनी वास्तविक अवस्था का ज्ञान होने लगा और वे अपने मित्र तथा शत्रु को समझने लगे, उसी समय से ज़ारशाही की नींव हिलने लगी। श्रमजीवियों के संघ भी स्थापित हुए। रूस में हड़तालों

का आरंभ हुआ। उसी समय से जनता की प्रवृत्ति को देखकर मदान्धों के नेत्र खुल गए।

भारतवर्ष में सबसे अधिक कमी यही है कि इस देश के युवकों में शहरी जीवन व्यतीत करने की बान पड़ गई है। युवकवृन्द साफ-सुथरे कपड़े पहनने, पक्की सड़कों पर चलने, मीठा, खट्टा तथा चटपटा भोजन करने, विदेशी सामग्री से सुसज्जित बाजारों में घूमने, मेज-कुर्सी पर बैठने तथा विलासिता में फंसे रहने के आदी हो गए हैं। ग्रामीण जीवन को वे नितान्त नीरस तथा शुष्क समझते हैं। उनकी समझ में ग्रामों में अर्धसभ्य या जंगली लोग निवास करते है। यदि कभी किसी अंग्रेजी स्कूल या कॉलेज में पढ़ने वाला विद्यार्थी किसी कार्यवश अपने किसी सम्बन्धी के यहां ग्राम में पहुंच जाता है, तो उसे वहां दो-चार दिन काटना बड़ा कठिन हो जाता है। वह यह तो कोई उपन्यास साथ ले जाता है, जिसे अलग बैठे पढ़ा करता है या पड़े-पड़े सोया करता है। किसी ग्रामवासी से बातचीत करने से उसका दिमाग थक जाता है, या उससे बातचीत करना वह अपनी शान के खिलाफ समझता है। ग्रामवासी जमींदार या रईस जो अपने लड़कों को अंग्रेजी पढ़ाते हैं, उनकी भी यही इच्छा रहती है कि जिस प्रकार हो सके उनके लड़के कोई सरकारी नौकरी पा जाएं। ग्रामीण बालक जिस समय शहर में पहुंचकर शहरी शान को देखते हैं, इतनी बुरी तरह से उन पर फैशन का भूत सवार हो जाता है कि उनके मुकाबले फैशन बनाने की चिंता किसी को भी नहीं। थोड़े दिनों में उनके आचारण पर भी इसका प्रभाव पड़ता है और वे स्कूल के गंदे लड़कों के हाथ में पड़कर बड़ी बुरी-बुरी कुटेवों के घर बन जाते हैं। उनसे जीवनपर्यन्त अपना ही सुधार नहीं हो पाता। फिर वे ग्रामवासियों का सुधार क्या खाक कर सकेंगे?

असहयोग आंदोलन में कार्यकर्त्ताओं की इतनी अधिक संख्या में होने पर भी सब-के-सब शहर के प्लेटफार्मों पर लेक्चरबाजी करना ही अपना कर्तव्य समझते थे। ऐसे बहुत थोड़े कार्यक र्त्ता थे, जिन्होंने ग्रामों में कुछ कार्य किया। उनमें भी अधिकतर ऐसे थे, जो केवल हुल्लड़ कराने में ही देशोद्धार समझते थे। परिणाम यह हुआ कि आंदोलन में थोड़ी-सी शिथिलता आते ही सब कार्य अस्त-व्यस्त हो गया। इसी कारण महामना देशबन्धु चितरंजनदास ने अंतिम समय में ग्राम-संगठन को ही अपने जीवन का ध्येय बनाया था। मेरे

विचार से ग्राम संगठन की सबसे सुगम रीति यही हो सकती है कि युवकों में शहरी जीवन छोड़कर ग्रामीण जीवन के प्रति प्रीति उत्पन्न हो। जो युवक मिडिल, एण्ट्रेन्स, एफ.ए., बी.ए. पास करने में हजारों रुपए नष्ट करके दस, पन्द्रह, बीस या तीस रुपए की नौकरी के लिए ठोकरें खाते फिरते है उन्हें नौकरी का आसरा छोड़कर कोई उद्योग जैसे-बढ़ईगीरी, लुहारगिरी, दर्जी का काम, धोबी का काम, जूते बनाना, कपड़ा बुनना, मकान बनाना, राजगिरी इत्यादि सीख लेना चाहिए। यदि जरा साफ-सुथरे रहना हो तो वैद्यक सीखें। किसी बड़े ग्राम या कस्बे में जाकर काम शुरू करें। उपरोक्त कामों में से कोई काम भी ऐसा नहीं है, जिसमें चार या पांच घंटा मेहनत करके तीस रुपए मासिक की आय न हो जाए। ग्राम में तीस रुपए मासिक शहर के साठ रुपए से अधिक हैं, क्योंकि ग्राम में लकड़ी या कपड़ों का मूल्य बहुत कम होता है और यदि किसी जमींदार की कृपा हो गई और एक सूखा हुआ वृक्ष कटवा दिया तो छः महीने के लिए ईंधन की छुट्टी हो गई। शुद्ध घी, दूध सस्ते दामों में मिल जाता है और स्वयं एक या दो गाय या भैंस पाल ली, तब तो आम-के-आम गुठलियों के दाम ही मिल गए। चारा सस्ता मिलता है। घी-दूध बाल-बच्चे खाते हैं। कंडों का ईंधन होता है और यदि किसी की कृपा हो गई तो फसल पर एक या दो भुस की गाड़ी बिना मूल्य ही मिल जाती है। अधिकतर कामकाजियों को गांव में चारा, लकड़ी के लिए पैसा खर्च नहीं करना पड़ता। हजारों अच्छे-अच्छे ग्राम हैं, जिनमें वैद्य, दर्जी, धोबी निवास ही नहीं करते। उन ग्रामों के लोगों को दस, बीस कोस दूर दौड़ना पड़ता है। वे इतने दुःखी होते हैं कि जिसका अनुमान करना कठिन है। विवाह आदि के अवसरों पर यथासमय कपड़े नहीं मिलते। काष्टादिक औषधियां बड़े-बड़े कस्बों में नहीं मिलती। यदि मामूली अतार बनकर ही कस्बे में बैठ जाएं और दो-चार किताबें देखकर ही औषधि दिया करें तो भी तीस-चालीस रुपए मासिक की आय तो कहीं गई ही नहीं। इस प्रकार उदर निर्वाह तथा परिवार का प्रबंध हो जाता है। ग्रामों की अधिक जनसंख्या से परिचय हो जाता है। परिचय ही नहीं, जिसका एक समय जरूरत पर काम निकल गया, वह आभारी हो जाता है। उसकी आंखें नीची रहती हैं। आवश्यकता पड़ने पर वह तुरंत सहायक होता है। ग्राम में कौन ऐसा पुरुष है जिसका लुहार, बढ़ई, धोबी, दर्जी, कुम्हार या वैद्य से काम नहीं पड़ता? मेरा पूर्ण अनुभव है कि

इन लोगों की भले-भले ग्रामवासी खुशामद करते रहते हैं।

रोजाना काम पड़ते रहने से और संबंध होने से यदि थोड़ी-सी चेष्टा की जाए और ग्रामवासियों को थोड़ा-सा उपदेश देकर उनकी दशा सुधारने का प्रयत्न किया जाए तो बड़ी जल्दी काम बने। अल्प समय में ही वे सच्चे स्वदेश-भक्त खद्दरधारी बन जाएं। यदि उनमें एक-दो शिक्षित हों तो उत्साहित करके उसके पास एक समाचार-पत्र मंगाने का प्रबंध कर दिया जाए। देश की दशा का भी उन्हें कुछ ज्ञान होता रहे। इसी तरह सरल-सरल पुस्तकों की कथाएं सुनाकर उनमें से कुप्रथाओं को भी छुड़ाया जा सकता है। कभी-कभी स्वयं रामायण या भागवत की कथा भी सुनाया करें। यदि नियमित रूप से भागवत की कथा कहें तो पर्याप्त धन भी चढ़ावे में आ सकता है, जिससे एक पुस्तकालय स्थापित कर दें। कथा कहने के अवसर पर बीच-बीच में चाहे कितनी राजनीति का समावेश कर जाए, कोई खुफ़िया पुलिस का रिपोर्टर नहीं बैठा जो रिपोर्ट करे। वैसे यदि कोई खद्दरधारी ग्राम में उपदेश करना चाहे तो तुरंत ही जमींदार पुलिस में खबर कर दे और यदि कस्बे में वैद्य, लड़के पढ़ाने वाले अथवा कथा कहने वाले पंडित कोई बात कहें तो सब चुपचाप सुनकर उस पर अमल करने की कोशिश करते हैं और उन्हें कोई पूछता भी नहीं। इसी प्रकार अनेक सुविधाएं मिल सकती हैं, जिनके सहारे ग्रामीणों की सामाजिक दशा सुधारी जा सकती है। रात्रि-पाठशालाएं खोलकर निर्धन तथा अछूत जातियों के बालकों को शिक्षा दे सकते हैं। श्रमजीवी संघ स्थापित करने में शहरी जीवन तो व्यतीत हो सकता है, किन्तु इसके लिए उनके साथ अधिक समय खर्च करना पड़ेगा। जिस समय वे अपने-अपने काम से छुट्टी पाकर आराम करते हैं, उस समय उनके साथ वार्तालाप करके मनोहर उपदेशों द्वारा उनको उनकी दशा का दिग्दर्शन कराने का अवसर मिल सकता है। इन लोगों के पास वक्त बहुत कम होता है। इसलिए बहेतर यह होगा कि चित्ताकर्षण साधनों द्वारा किसी उपदेश करने की रीति से, जैसे लालटेन द्वारा तस्वीरें दिखाकर या किसी दूसरे उपाय से उनको एक स्थान पर एकत्रित किया जाए तथा रात्रि पाठशालाएं खोलकर उन्हें तथा उनके बच्चों को शिक्षा देने का भी प्रबंध किया जाए। जितने युवक उच्च शिक्षा प्राप्त करके व्यर्थ में धन व्यय करने की इच्छा रखते हैं, उनके लिए उचित है कि वे अधिक-से-अधिक अंग्रेजी के दसवें दर्जे तक की योग्यता

प्राप्त कर किसी कला-कौशल के सीखने का प्रयत्न करें और उस कला-कौशल द्वारा ही अपना जीवन निर्वाह करें।

जो धनी-मानी स्वदेश-सेवार्थ बड़े-बड़े विद्यालयों तथा पाठशालाओं की स्थापना करते हैं, उनको चाहिए कि विद्यापीठों के साथ-साथ उद्योगपीठ शिल्पविद्यालय तथा कला-कौशल भवनों की स्थापना करें। इन विद्यालयों को विद्यार्थियों की नेतागिरी के लोभ से बचाया जाए। विद्यार्थियों का जीवन सादा हो और विचार उच्च हों। इन्हीं विद्यालयों में एक-एक उपदेशक विभाग भी हो, जिसमें विद्यार्थी प्रचार करने का ढंग सीख सकें। जिन युवकों के हृदय में स्वदेश सेवा का भाव हो, उन्हें कष्ट सहन करने की आदत डालकर सुसंगठित रूप से ऐसा कार्य करना चाहिए, जिसका परिणाम स्थायी हो, केथोराइन ने इसी प्रकार कार्य किया था। उदर-पूर्ति के निमित्त केथोराइन के अनुयायी ग्रामों में जाकर कपड़े सीते या जूते बनाते और रात्रि के समय किसानों को उपदेश देते थे। जिस समय से मैंने केथोराइन की जीवनी **(The Grandmother of the Russian Revolution)** का अंग्रेजी भाषा में अध्ययन किया, मुझ पर उसका प्रभाव हुआ। मैंने तुरंत उसकी जीवनी 'केथोराइन' नाम से हिन्दी में प्रकाशित कराई। मैं भी उसी प्रकार करना चाहता था, पर बीच में ही क्रांतिकारी दल में फंस गया। मेरा तो अब यह दृढ़ निश्चय हो गया है कि अभी पचास वर्ष तक क्रांतिकारी दल को भारतवर्ष में सफलता नहीं मिल सकती, क्योंकि यहां की स्थिति उसके उपयुक्त नहीं। अतएव क्रांतिकारी दल का संगठन करके व्यर्थ में नवयुवकों के जीवन को नष्ट करना और शक्ति का दुरुपयोग करना आदि बड़ी भारी भूलें हैं। इससे लाभ के स्थान में हानि की संभावना बहुत अधिक है। नवयुवकों को मेरा अंतिम संदेश यही है कि यह रिवाल्वर या पिस्तौल को अपने पास रखने की इच्छा को त्याग कर सच्चे देश-सेवक बनें। पूर्ण स्वाधीनता उनका ध्येय हो और यह वास्तविक साम्यवादी बनने का प्रयत्न करते रहें। फल की इच्छा छोड़कर सच्चे प्रेम से कार्य करें, परमात्मा सदैव ही उनका भला करेगा।

यदि देश-हित मरना पड़े मुझको सहस्त्रों बार भी,
तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊं कभी।
हे ईश भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो।।

अंतिम समय की बातें

आज 16 दिसम्बर 1927 ई. को निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेखकर रहा हूं, जबकि 19 दिसम्बर, 1927 ई. सोमवार (पौष कृष्ण 11 सम्वत् 1984 वि.) को साढ़े छह बजे प्रातःकाल इस शरीर को फांसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी है। अतएव नियत समय पर इहलीला संवरण करनी होगी। यह सर्वशक्तिमान प्रभु की लीला है। सब कार्य उसकी इच्छानुसार ही होते हैं। यह परमपिता परमात्मा के नियमों का परिणाम हैं कि किस प्रकार किसको शरीर त्यागना होता है। मृत्यु के सकल उपक्रम निमित्त मात्र हैं। जब तक कर्म क्षय नहीं होता, आत्मा को जन्म-मरण के बंधन में पड़ना ही होता है, यह शास्त्रों का निश्चय है। यद्यपि यह बात वह परब्रह्म ही जानता है कि किन कर्मों के परिणामस्वरूप कौन-सा शरीर इस आत्मा को ग्रहण करता होगा किन्तु अपने लिए यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि मैं उत्तम शरीर धारण कर नवीन शक्तियों सहित अति शीघ्र ही पुनः भारतवर्ष में ही किसी निकटवर्ती सम्बन्धी या इष्ट मित्र के गृह में जन्म ग्रहण करूंगा, क्योंकि मेरा जन्म-जन्मान्तर उद्देश्य रहेगा कि मनुष्य मात्र को सभी प्रकृति पदार्थों पर समानाधिकार प्राप्त हो। सारे संसार में जनतंत्र की स्थापना हो। वर्तमान समय में भारतवर्ष की अवस्था बड़ी शोचनीय है। अतएव लगातार कई जन्म इसी देश में ग्रहण करने होंगे और जब तक कि भारतवर्ष के नर-नारी पूर्णतया सर्वरूपेण स्वतंत्र न हो जाएं, परमात्मा से मेरी यह प्रार्थना होगी कि वह मुझे इसी देश में जन्म दे, ताकि उसकी पवित्र- 'वेदवाणी' का अनुपम घोष मनुष्य मात्र के कानों तक पहुंचाने में समर्थ हो सकूं। सम्भव है कि मैं मार्ग-निर्धारण में भूल करूं, पर इसमें मेरा विशेष दोष नहीं, क्योंकि मैं भी तो अल्पज्ञ जीव मात्र ही हूं। भूल न करना केवल सर्वज्ञ से ही सम्भव है। हमें परिस्थितियों के अनुसार ही सब कार्य करने पड़े और करने होंगे। परमात्मा अगले जन्म में सुबुद्धि प्रदान करे ताकि मैं जिस मार्ग का अनुसरण करूं, वह त्रुटि रहित ही हो।

अब मैं उन बातों का भी उल्लेख कर देना उचित समझता हूं, जो काकोरी षड्यंत्र के अभियुक्तों के सम्बन्ध में सेशन जज के फैसला सुनाने के पश्चात् घटित हुई। 6 अप्रैल सन् 1927 ई. को सेशन जज ने फैसला सुनाया था। 18 जुलाई सन् 1927 ई. को अवध चीफ कोर्ट में अपील हुई। इसमें कुछ सजाएं बढ़ी और एकाध की कमी भी हुई। अपील होने की तारीख से पहले

मैंने संयुक्त प्रांत के गवर्नर की सेवा में एक मेमोरियल भेजा था, जिसमें प्रतिज्ञा की थी कि अब भविष्य में क्रांतिकारी दल से कोई सम्बन्ध न रखूंगा। इस मेमोरियल का जिक्र मैंने अपनी अंतिम दया-प्रार्थना पत्र में, जो मैंने चीफ कोर्ट के जजों को दिया था, कर दिया था, किन्तु चीफ कोर्ट के जजों ने मेरी किसी प्रकार की प्रार्थना स्वीकार न की। मैंने स्वयं ही जेल से अपने मुकदमे की बहस लिखकर भेजी जो छापी गई। जब यह बहस चीफ कोर्ट के जजों ने सुनी उन्हें बड़ा संदेह हुआ कि बहस मेरी लिखी हुई न थी। इन तमाम बातों का नतीजा यह निकला कि चीफ कोर्ट अवध द्वारा मुझे महाभयंकर षड्यंत्रकारी की पदवी दी गई। मेरे पश्चाताप पर जजों को विश्वास न हुआ और उन्होंने अपनी धारणा को इस प्रकार प्रकट किया कि यदि यह (रामप्रसाद) छूट गया तो फिर वही कार्य करेगा। बुद्धि की प्रखरता तथा समझ पर प्रकाश डालते हुए मुझे 'निर्दयी हत्यारे' के नाम से विभूषित किया गया। लेखनी उनके हाथ में थी, जो चाहे सो लिखते, किन्तु काकोरी षड्यंत्र का चीफ कोर्ट का आद्योपांत फैसला पढ़ने से भली-भांति विदित होता है कि मुझे मृत्यु-दण्ड किस ख्याल से दिया गया। यह निश्चय किया गया कि रामप्रसाद ने सेशन जज के विरुद्ध अपशब्द कहे हैं, खुफ़िया विभाग के कार्यकर्त्ताओं पर लांछन लगाए हैं अर्थात् अभियोग के समय जो अन्याय होता था, उसके विरुद्ध आवाज उठाई है, अतएव रामप्रसाद सबसे बड़ा गुस्ताख मुलज़िम है। अब माफी चाहे वह किसी रूप में मांगे, नहीं दी जा सकती।

चीफ कोर्ट से अपील खारिज हो जाने के बाद यथानियम प्रांतीय गवर्नर तथा फिर वाईसराय के पास दया-प्रार्थना की गई। रामप्रसाद 'बिस्मिल', राजेंद्र लाहिड़ी, रोशन सिंह तथा अशफ़ाकउल्ला खां के मुत्यु-दण्ड को बदलकर अन्य दूसरी सजा देने की सिफारिश करते हुए संयुक्त प्रांत की कौंसिल के लगभग सभी निर्वाचित हुए मेम्बरों ने हस्ताक्षर करके निवेदन-पत्र दिया। मेरे पिता ने ढाई सौ रईस, ऑनरेरी, मजिस्ट्रेट तथा जमींदारों के हस्ताक्षर से एक अलग प्रार्थना-पत्र भेजा, किन्तु श्रीमान सर विलियम मेरिस की सरकार ने एक न सुनी। उसी समय लेजिस्लेटिव असेम्बली तथा कौंसिल ऑफ स्टेट के 78 सदस्यों ने हस्ताक्षर करके वाइसराय के पास प्रार्थना-पत्र भेजा कि 'काकोरी षड्यंत्र के मुत्यु-दण्ड पाए हुओ को मृत्यु-दण्ड की सज़ा बदलकर दूसरी सज़ा कर दी जाए, क्योंकि दौरा जज ने सिफ़ारिश की है कि

यदि ये लोग पश्चाताप करें तो सरकार दण्ड कम दे। चारों अभियुक्तों ने पश्चाताप प्रकट कर दिया है।' किन्तु वाइसराय महोदय ने भी एक न सुनी।

इस विषय में माननीय पं. मदनमोहन मालवीयजी ने तथा असेम्बली के कुछ अन्य सदस्यों ने वाइसराय से मिलकर भी प्रयत्न किया था कि मृत्यु-दण्ड न दिया जाए। इतना होने पर सबको आशा थी कि वाइसराय महोदय अवश्यमेव मृत्यु-दण्ड की आज्ञा रद्द कर देंगे। इसी हालत में चुपचाप विजयदशमी से दो दिन पहले जेलों को तार भेज दिए गए कि दया नहीं होगी। सबकी फांसी की तारीख मुकर्रर हो गई। जब मुझे सुपरिण्टेण्डेण्ट ने जेल में तार सुनाया, तो मैंने भी कह दिया कि आप अपना काम कीजिए किन्तु सुपरिन्टेंडेन्ट जेल के अधिक कहने पर कि एक तार दया-प्रार्थना का सम्राट के पास भेज दो, क्योंकि यह उन्होंने एक नियम-सा बना रखा है कि प्रत्येक फांसी के कैदी की ओर से जिसकी दया-भिक्षा की अर्जी वायसराय के यहां से खारिज हो जाती है, वह एक तार सम्राट के नाम से प्रांतीय सरकार के पास अवश्य भेजते हैं। कोई दूसरा जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट ऐसा नहीं करता। उपरोक्त तार लिखते समय मेरा कुछ विचार हुआ कि प्रिवी-कौंसिल इंग्लैण्ड में अपील की जाए। मैंने श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना वकील लखनऊ को सूचना दी। बाहर किसी को वायसराय द्वारा अपील खारिज करने की बात पर विश्वास भी न हुआ। जैसे-तैसे करके श्रीयुत मोहनलाल द्वारा प्रिवी-कौंसिल में अपील कराई गई। नतीजा तो पहले से मालूम था। वहां से भी अपील खारिज हुई। यह जानते हुए कि अंग्रेज सरकार कुछ भी न सुनेगी मैंने सरकार को प्रतिज्ञा-पत्र क्यों लिखा? क्यों अपीलों पर अपीलें तथा दया-प्रार्थनाएं की? इस प्रकार से प्रश्न उठ सकते हैं। मेरी समझ में सदैव यही आया कि राजनीति एक शतरंज के खेल के समान है। शतरंज के खेलने वाले भली-भांति जानते हैं कि आवश्यकता होने पर किस प्रकार अपने मोहरें मरवा देने पड़ते हैं। बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के छोड़ने या उन पर खुली अदालत में मुकदमा चलाने के प्रस्ताव जब असेम्बली में पेश किए गए तो सरकार की ओर से बड़े जोरदार शब्दों में कहा गया कि सरकार के पास पूरा सबूत है। खुली अदालत में अभियोग चलाने से गवाहों पर आपत्ति आ सकती है। यदि आर्डिनेन्स के कैदी लेखबद्ध प्रतिज्ञा-पत्र दाखिल कर दें कि वे भविष्य में क्रांतिकारी आंदोलन से कोई सम्बन्ध न रखेंगे, तो सरकार उन्हें

रिहाई देने के विषय में विचार कर सकती है। बंगाल में दक्षिणेश्वर तथा शोभा बाजार बम-केस आर्डिनेन्स के बाद चले खुफिया विभाग के डिप्टी सुपरिन्टेंडेन्ट के कत्ल का मुकदमा भी खुली अदालत में हुआ और भी कुछ हथियारों के मुकदमें खुली अदालत में चलाए गए, किन्तु कोई एक भी दुर्घटना या हत्या की सूचना पुलिस न दे सकी। काकोरी षड्यंत्र केस पूरे डेढ़ साल तक अदालतों में चलता रहा। सबूत की ओर से लगभग तीन सौ गवाह पेश किए गए। कई मुखबिर तथा इकबाली खुले तौर से घूमते रहे, पर कहीं कोई दुर्घटना या किसी को धमकी देने की कोई सूचना पुलिस ने न दी। सरकार की इन बातों की पोल खोलने की गरज से मैंने लेखबद्ध बंधेज सरकार को दिया। सरकार के कथनानुसार जिस प्रकार बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के सम्बन्ध में सरकार के पास पूरा सबूत था और सरकार उनमें से अनेकों को भंयकर षड्यंत्रकारी दल का सदस्य तथा हत्याओं का जिम्मेदार समझती तथा कहती थी, तो इस प्रकार काकोरी के षड्यंत्रकारियों के लेखबद्ध-प्रतिज्ञा करने पर कोई गौर क्यों न किया? बात यह है कि जबरा मारे रोने न देय। मुझे तो भली-भांति मालूम था कि संयुक्त-प्रांत में जितने राजनैतिक अभियोग चलाए जाते हैं, फैसले खुफिया पुलिस की इच्छानुसार लिखे जाते हैं। बरेली पुलिस कांस्टेबलों की हत्या के अभियोग में नितांत निर्दोष नवयुवकों को फंसाया गया और सी.आई.डी. वालों ने अपनी डायरी दिखलाकर फैसला लिखाया। काकोरी षड्यंत्र में भी अंत में ऐसा ही हुआ। सरकार की सब चालों को जानते हुए मैंने सब कार्य उनकी लम्बी-लम्बी बातों की पोल खोलने के लिए ही किए। काकोरी के मृत्यु-दण्ड पाए हुओं की दया-प्रार्थना न स्वीकार करने का कोई विशेष कारण सरकार के पास नहीं। सरकार ने बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, जो काकोरी वालों ने किया। मृत्यु-दण्ड को रद्द कर देने से देश में किसी प्रकार की शांति भंग होने अथवा किसी विप्लव हो जाने की सम्भावना न थी। विशेषतया जब कि देशभर के सब प्रकार हिन्दू-मुसलमान असेम्बली के सदस्यों ने इसकी सिफारिश की थी। षड्यंत्रकारियों की इतनी बड़ी सिफ़ारिश इससे पहले कभी नहीं हुई। किन्तु सरकार तो अपना पासा सीधा रखना चाहती थी। उसे अपने बल पर विश्वास है। सर विलियम मेरिस ने ही स्वयं शाहजहांपुर तथा इलाहाबाद के हिन्दू-मुस्लिम दंगें के अभियुक्तों के मृत्यु-दण्ड रद्द कर दिए हैं,

जिनकों कि इलाहाबाद हाईकोर्ट से मृत्यु-दण्ड ही देना उचित समझा गया था और उन लोगों पर दिन-दहाड़े हत्या करने के सीधे सबूत मौजूद थे। ये सजाएं ऐसे समय माफ की गई थीं, जबकि नित्य नए हिन्दू-मुस्लिम दंगे बढ़ते ही जाते थे। यदि काकोरी के कैदियों को मृत्यु-दण्ड माफ करके, दूसरी सजा देने से दूसरों का उत्साह बढ़ता तो क्या इसी प्रकार मजहबी दंगों के सम्बन्ध में भी नहीं हो सकता था? मगर वहां तो मामला कुछ और ही है जो अब भारतवासियों के नरम से नरम दल के नेताओं के भी शाही कमीशन के मुकर्रर होने और उनमें एक भी भारतवासी के न चुने जाने, पार्लियामेण्ट में भारत सचिव लार्ड बर्कन हेड के तथा अन्य मजदूर दल के नेताओं के भाषणों से भली-भांति समझ में आया है कि किस प्रकार भारतवर्ष की गुलामी की जंजीरों में जकड़े रहने की चालें चली आ रही है।

मैं प्राण त्यागते समय निराश नहीं कि हम लोगों के बलिदान व्यर्थ गए। मेरा तो विश्वास है कि हम लोगों की छिपी हुई आहों का ही यह नतीजा हुआ कि लार्ड बर्कनहेड के दिमाग में परमात्मा ने एक विचार उपस्थित किया कि हिन्दुस्तान के हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों का लाभ उठाओ और भारतवर्ष की जंजीरें और कस दो। गए थे रोजा छोड़ने और नमाज़ गले पड़ गई। भारतवर्ष के प्रत्येक विख्यात राजनैतिक दल ने और हिन्दुओं के तो लगभग सभी तथा मुसलमानों के भी अधिकतर नेताओं ने एक स्वर होकर रायल कमीशन की नियुक्ति तथा उसके सदस्यों के विरुद्ध घोर विरोध किया है और अगली कांग्रेस (मद्रास) पर सब राजनैतिक दल के नेता तथा हिन्दू-मुसलमान एक होते जा रहे हैं। वाइसराय ने जब हम काकोरी के मृत्यु-दण्ड वालों की दया-प्रार्थना अस्वीकार की थी, उसी समय मैंने श्रीयुत मोहनलालजी को पत्र लिखा था कि हिन्दुस्तानी नेताओं को तथा हिन्दू-मुसलमानों को अगली कोंग्रेस एकत्रित हो हम लोगों की याद मनानी चाहिए। सरकार ने अशफ़ाकउल्ला को रामप्रसाद का दाहिना हाथ करार दिया। अशफ़ाकउल्ला कट्टर मुसलमान होकर पक्के आर्य-समाजी रामप्रसाद का क्रांतिकारी दल के सम्बन्ध में यदि दाहिना हाथ बन सकते हैं, तब क्या भारतवर्ष की स्वतंत्रता के नाम पर हिन्दू-मुसलमान अपने निजी छोटे-छोटे फायदों का ख्याल न करके आपस में एक नहीं हो सकते?

परमात्मा ने मेरी पुकार सुन ली और मेरी इच्छा पूरी होती दिखाई

देती है। मैं तो अपना कार्य कर चुका। मैंने मुसलमानों में से एक नवयुवक निकालकर भारतवासियों को दिखला दिया, तो सब परीक्षाओं में उर्तीण हुआ। अब किसी को यह कहने का साहस न होना चाहिए कि मुसलमानों पर विश्वास न करना चाहिए। पहला तजुर्बा था, जो पूरी तरह से कामयाब हुआ। अब देशवासियों से यही प्रार्थना है कि यदि वे हम लोगों के फांसी पर चढ़ने से जरा भी दुःखित हुए हों, तो उन्हें यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हिन्दू-मुसलमान तथा सब राजनैतिक दल एक होकर कांग्रेस को अपना प्रतिनिधि मानें। जो कांग्रेस तय करे, उसे सब पूरी तौर से मानें और उस पर अमल करें। ऐसा करने के बाद वह दिन बहुत दूर न होगा जबकि अंग्रेजी सरकार को भारतवासियों की मांग के सामने सिर झुकाना पड़े और यदि ऐसा करेंगे तब तो स्वराज्य कुछ दूर नहीं। क्योंकि फिर तो भारतवासियों को काम करने का पूरा मौका मिल जाएगा। हिन्दू-मुस्लिम एकता ही हम लोगों की मददगार तथा अंतिम इच्छा है, चाहे वह कितनी कठिनता से क्यों न प्राप्त हो। जो मैं कह रहा हूं वही श्री अशफ़ाकउल्ला खां वारसी का भी मत है, क्योंकि अपील के समय हम दोनों लखनऊ जेल में फांसी की कोठरियों में आमने-सामने कई दिन तक रहे थे। आपस में हर तरह की बातें हुई थी। गिरफ्तारी के बाद हम लोगों की सजा बढ़ने तक श्री अशफ़ाकउल्ला खां की बड़ी भारी उत्कृष्ट इच्छा यही थी कि वहीं एक बार मुझसे मिल लेते, जो परमात्मा ने पूरी तक दी।

श्री अशफ़ाकउल्ला खां तो अंग्रेजी सरकार से दया-प्रार्थना करने पर राजी ही न थे। उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबन्द करीम के अलावा किसी दूसरे से दया-प्रार्थना नहीं करनी चाहिए, परंतु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूं, जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफ़ाकउल्ला खां को उनके दृढ़ निश्चय से विचलित किया। मैंने एक पत्र द्वारा अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृ-द्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल से श्री अशफ़ाउल्ला खां को पत्र लिखकर क्षमा-प्रार्थना की थी। परमात्मा जाने कि वह पत्र उनके हाथों तक पहुंचा भी या नहीं। खैर! परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी कि हम लोगों को फांसी दी जाए, भारतवासियों के जले हुए दिलों पर नमक पड़े, वे बिलबिना उठें और हमारी आत्माएं उनके कार्य को देखकर सुखी

हों। जब हम नवीन शरीर धारण करके देश-सेवा में योग देने को उद्यत हों, उस समय तक भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति पूर्णतया सुधरी हुई हो। जनसाधारण का अधिक भाग सुशिक्षित हो जाए। ग्रामीण लोग भी अपने कर्तव्य समझने लग जाएं।

प्रिवी-कौंसिल में अपील भिजवाकर मैंने जो व्यर्थ का अपव्यय करवाया, उसका भी एक विशेष अर्थ था। सब अपीलों का तात्पर्य यह था कि मृत्यु-दण्ड उपयुक्त नहीं। क्योंकि न जाने किसकी गोली से आदमी मारा गया। अगर उकैती डालने की जिम्मेदारी के ख्याल से मृत्यु-दण्ड दिया गया तो चीफ कोर्ट के फैसले के अनुसार भी मैं ही डकैतियों का जिम्मेदार तथा नेता था, और प्रांत का नेता भी मैं ही था। अतएव मुत्यु-दण्ड तो अकेला मुझे ही मिलना चाहिए था। अन्य तीन को फांसी नहीं देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त दूसरी सजाएं सब स्वीकार होतीं। पर ऐसा क्यों होने लगा? मैं विलायती न्यायालय की भी परीक्षा करके स्वदेशवासियों के लिए उदाहरण छोड़ना चाहता था कि यदि कोई राजनीतिक अभियोग चले तो वे कभी भूल करके भी उत्कट अंग्रेजी अदालत का विश्वास न करे। तबियत आए तो जोरदार बयान दें। अन्यथा मेरी तो यही राय है कि अंग्रेजी अदालत के सामने न तो कभी कोई बयान दें और न कोई सफाई पेश करें। काकोरी षड्यंत्र के अभियोग से शिक्षा प्राप्त कर लें। इस अभियोग में सब प्रकार के उदाहरण मौजूद हैं। प्रिवी-कौंसिल में अपील दाखिल कराने का एक विशेष अर्थ यह भी था कि मैं कुछ समय तक फांसी की तारीख टलवा कर यह परीक्षा करना चाहता था कि नवयुवकों में कितना दम है और देशवासी कितनी सहायता दे सकते हैं। इसमें मुझे बड़ी निराशापूर्ण असफलता प्राप्त हुई। अन्त में मैंने निश्चय किया था कि यदि हो सके, तो जेल से निकल भागूं। ऐसा हो जाने से सरकार को अन्य तीनों फांसी वालों की सजा माफ कर देनी पड़ेगी और यदि न करते तो मैं करा लेता। मैंने जेल से भागने के अनेकों प्रयत्न किये, किन्तु बाहर से कोई सहायता न मिल सकी। यही तो हृदय पर आघात लगता है कि जिस देश में मैंने इतना बड़ा क्रांतिकारी आंदोलन तथा षड्यंत्रकारी दल खड़ा किया था, वहां मुझे प्राण-रक्षा के लिए एक रिवाल्वर तक न मिल सका। एक नवयुवक की सहायता को न आ सका। अन्त में फांसी पा रहा हूं। फांसी पाने का मुझे कोई भी शोक नहीं, क्योंकि मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि

परमात्मा को यही मंजूर था। मगर मैं नवयुवकों से फिर भी नम्र निवेदन करता हूं कि जब तक भारतवासियों की अधिक संख्या सुशिक्षित न हो जाए, जब तक उन्हें कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान न हो जाए, तब तक वे भूलकर भी किसी प्रकार के क्रांतिकारी षड्यंत्रों में भाग न लें। यदि देश-सेवा की इच्छा हो तो खुले आंदोलनों द्वारा यथाशक्ति कार्य करें, अन्यथा उनका बलिदान उपयोगी न होगा। दूसरे प्रकार से इससे अधिक देश-सेवा हो सकती है, जो ज्यादा उपयोगी सिद्ध होगी। परिस्थिति अनुकूल न होने से ऐसे आंदोलनों में परिश्रम प्रायः व्यर्थ जाता है। जिनकी भलाई के लिए करो, वहीं बुरे-बुरे नाम धरते हैं और अंत में मन ही मन कुढ़-कुढ़ कर प्राण त्यागने पड़ते हैं।

देशवासियों से यही अंतिम विनय है कि जो कुछ करें, सब मिलकर करें और सब देश की भलाई के लिए करें। इसी से सबका भला होगा।

मरते बिस्मिल' 'रोशन' 'लहरी' 'अशफ़ाक' अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों वीर इनके रुधिर की धार से।।

thearyasamaj.org

मेरी डायरी का एक पृष्ठ

(बिस्मिल के घनिष्ठ मित्र-शिव वर्मा)

मां फिर रो पड़ीं।

अशफ़ाक और बिस्मिल का यह शहर कॉलेज के दिनों में मेरी कल्पना का केन्द्र था। फिर क्रांतिकारी पार्टी का सदस्य बनने के बाद काकोरी के मुखबिर की तलाश में काफी दिनों तक इसकी धूल छानता रहा था। अस्तु, यहां जाने पर पहली इच्छा हुई बिस्मिल की मां के पैर छूने की। काफी पूछताछ के बाद उसके मकान का पता चला। छोटे-से मकान की एक कोठरी में दुनियां की आंखों से अलग वीर-प्रसविनी अपने जीवन के अंतिम दिन काट रही है- **Unknown, unnoticedI** पास जाकर मैंने पैरे छुए। आंखों की रोशनी प्रायः समाप्त-सी हो चुकने के कारण पहचाने बिना ही उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और पूछा, ''तुम कौन हो?'' क्या उत्तर दूं, कुछ समझ में नहीं आया। थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर पूछा, ''कहां से आए हो बेटा?'' इस बार साहस करके मैंने परिचय दिया- ''गोरखपुर जेल में अपने साथ किसी को ले गई थी, अपना बेटा बनाकर?'' अपनी ओर खींचकर सिर पर हाथ फेरते हुए मां ने कहा, ''तुम वही हो बेटा?'' कहां थे अब तक? मैं तो तुम्हें बहुत याद करती रही, पर जब तुम्हारा आना एकदम बंद हो गया तो समझी कि तुम भी कहीं उसी रास्ते पर चले गए।'' मां का दिल भर आया। कितने ही पुराने घावों पर एक साथ ठेस लगी। अपने अच्छे दिनों की याद, बिस्मिल की याद, फांसी, तख्ता, रस्सी और जल्लाद की याद, जवान बेटे की जलती हुई चिता की याद और न जाने कितनी यादों से उनके ज्योतिहीन नेत्रों में पानी भर आया- वह रो पड़ीं। बात छेड़ने के लिए मैंने पूछा, ''रमेश (बिस्मिल का छोटा भाई) कहां है?'' मुझे क्या पता था कि मेरा प्रश्न उनकी आंखों में बरसात भर लाएगा। वे जोर से रो पड़ी। बरसों का रुका बांध टूट पड़ा सैलाब बनकर। कुछ देर बाद अपने को संभालकर उन्होंने कहानी सुनाना शुरू की।

---

1. प्राण निकल जाने तक गले में फंदा डालकर लटका दिया जाय।

आरंभ में लोगों ने पुलिस के डर से उनके घर आना छोड़ दिया। वृद्ध पिता की कोई बंधी हुई आमदनी न थी। कुछ साल बाद रमेश बीमार पड़ा दवा-इलाज के अभाव में बीमारी जड़ पकड़ती गई। घर का सब कुछ बिक जाने पर भी रमेश का इलाज न हो पाया। पथ्य और उपचार के अभाव में तपेदिक का शिकार बनकर एक दिन वह मां को निपूती छोड़कर चला गया। पिता को कोरी हमदर्दी दिखाने वालों से चिढ़ हो गई। वे बेहद चिड़चिड़े हो गए। घर का सब कुछ तो बिक ही चुका था। अस्तु फाकों से तंग आकर एक दिन वे भी चले गए, मां को संसार में अनाथ और अकेली छोड़कर! पेट में दो दाना अनाज तो डालना ही था। अस्तु, मकान का एक भाग किराए पर उठाने का निश्चय किया। पुलिस के डर से कोई किरायेदार भी नहीं आया और जब आया तब पुलिस का ही एक आदमी। लोगों ने बदनाम किया कि मां का सम्पर्क तो पुलिस से हो गया है। उनकी दुनिया से बचा हुआ प्रकाश भी चला गया। पुत्र खोया, लाल खोया, अंत में बचा था नाम, सो वह भी चला गया।

उनकी आंखों से पानी की धार बहते देखकर मेरे सामने गोरखपुर फांसी की कोठरी घूम गई। काकोरी के चारों अभियुक्तों के जीवन का फैसला हो चुका था- '**To be hanged by the neck till they dead**'[1] फांसी के एक दिन पहले अंतिम मुलाकात का दिन था। समाचार पाकर पिता गोरखपुर आ गए। मां का कोमल हृदय शायद इस आघात को संभाल न सके, यही समझकर उन्हें वे साथ न लाए थे। प्रातः हम लोग जेल के फाटक पर पहुंचे तो देखा कि मां वहां पहले से भी मौजूद हैं। अन्दर जाने के समय सवाल आया मेरा, मुझे कैसे अन्दर ले जाया जाए। उस समय मां का साहस और पटुता देखकर सभी दंग रह गए। मुझे खामोश रहने का आदेश देकर उन्होंने मुझे अपने साथ ले लिया। पूछने पर यह कह दिया, ''मेरी बहन का लड़का है।'' हम लोग अन्दर पहुंचे। मां को देखकर रामप्रसाद रो पड़े, किन्तु मां की आंखों में आंसुओं का लेश भी न था। उन्होंने ऊंचे स्वर में कहा- ''मैं तो समझती थी कि मेरा बेटा बहादुर है, जिसके नाम से अंग्रेजी सरकार भी कांपती है। मुझे नहीं पता था कि वह मौत से डरता है। तुम्हें यदि रोकर ही मरना था तो व्यर्थ इस काम में आए।'' आंसू मौत से डर कर नहीं वरन् मां के प्रति मोह के थे। ''मौत

1. प्राण निकल जाने तक गले में फंदा डालकर लटका दिया जाय।

से मैं नहीं डरता मां, तुम विश्वास करो।'' मां ने मेरा हाथ पकड़कर आगे कर दिया। यह तुम्हारे आदमी हैं। पार्टी के बारे में जो चाहों इनसे कह सकते हो। उस समय मां का स्वरूप देखकर जेल के अधिकारी तक कहने को बाध्य हुए कि ऐसी मां का बेटा ही ऐसा बहादुर हो सकता है-

उस दिन समय पर विजय हुई थी मां की और आज मां पर विजय पाई है समय ने। आघात पर आघात देकर उसने उनसे बहादुर हृदय को भी आतुर बना दिया है। जिस मां की आंखों के दोनों ही तारे विलीन हो चुके हों उनकी आंखों की ज्योति यदि चली जाए तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? वहां तो रोज ही अंधेरे बादलों से बरसात उमड़ती रहेगी।

कैसी है यह दुनिया, मैंने सोचा। एक ओर 'बिस्मिल जिन्दाबाद' के नारे और चुनाव में वोट लेने के लिए बिस्मिल द्वार का निर्माण और दूसरी ओर उनके घर वालों की परछाई तक से भागना और उनकी निपूती बेवा मां पर बदनामी की मार! एक ओर शहीद परिवार सहायक फण्ड के नाम पर हजारों का चन्दा और दूसरी ओर पथ्य और दवादारू तक के लिए पैसों के अभाव में बिस्मिल के भाई का टी.बी. से घुटकर मरना! क्या यही है शहीदों का आदर और उनकी पूजा?

शहीदों की चिताओं पर जुड़गें हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।।

फिर आऊंगा मां, कहकर मैं चला आया, मन पर न जाने कितना बड़ा भार लिए।

(बिस्मिल के घनिष्ठ मित्र)

23 फरवरी, 1946

-शिव वर्मा
शाहजहांपुर

मेरे भाई बिस्मिल

(रामप्रसाद बिस्मिल की छोटी बहन)

मेरा जन्म सन् 1901 में हुआ था। भाई रामप्रसाद बिस्मिल के चार साल बाद मैं पैदा हुई थी। भाईजी मुझ पर बहुत स्नेह रखते थे। मेरे पिता के खानदान में लड़कियों को होते ही मार देते थे। मेरे मारने के लिए बाबा और दादी ने मेरी माताजी को कहा, मगर माताजी ने नहीं मारा। भाई बहुत रोते थे कि बिटिया को मत मारो। मैं तीन महीने की हो गई थी, तब दादी ने माताजी से फिर ताना मारकर कहा कि क्या लड़का है, जो इसकी इतनी हिफ़ाजत करती है। माताजी ने बाबा जी के पास से अफीम मंगाकर मुझे पिला दी। पड़ोस में थानेदार का मकान था। उनकी पत्नी हमारे घर आती थी उन्होंने मेरी खराब हालत देखी और कहा कि इसे क्या दे दिया? मैं दरोगाजी से कहूंगी। उन्होंने दरोगाजी से भी कह दिया। दरोगाजी ने दादी को बुलाकर कहा कि मैं सबको गिरफ्तार करा दूंगा। तुम लोगों ने कन्या की क्यों हत्या की? तब मेरा ईलाज किया गया। तीसरे दिन मुझे होश आया। फिर मां को दूध नहीं पिलाने दिया। कभी-कभी गाय का दूध छिपाकर माताजी पिला देती थीं। तीन साल तक अफीम के नशे में रखा। एक मुंसिफ साहब पड़ोस में रहते थे। उनके कोई बच्चा न था। मुंसिफ की पत्नी हमारे ही घर से दूध मोल लेकर मुझे पिलाती रहीं। मैं चंगी होती गई। दो साल के बाद उनके भी बालक हुआ, मगर वह मेरी हिफ़ाजत करती रहीं। कहने लगीं, इस कन्या के भाग से मेरे पुत्र हुआ। उनकी बदली हुई, तो मुझे मांगा और कहा, मैं ही शादी करूंगी, मगर घरवालों ने नहीं दिया। भाई ने रोना शुरू किया कि मैं अपनी बिटिया को नहीं दूंगा। भाई को स्त्री समाज से बहुत प्रेम हो गया। मुझे बराबर साथ-साथ संध्या हवन सिखाया। आप क्रांतिकारियों के साथ चले जाते थे। मेरे से कह जाते थे, किसी से कुछ न कहना। जो कह दिया तो जान से मार दूंगा। मैं डर से किसी से नहीं कहती थी। मैं लोअर मिडिल में जब पढ़ती थी, तब आपने रात को इश्तहार छपवा कर सरकारी जगहों पर अड़तालीस जिलों में लगवा दिए। पुलिस को पता चल गया कि

रामप्रसाद ही सब में शामिल हैं। तब तक आप चार मित्र सलाह करके वायसराय को मारने कलकत्ता को रवाना हो चुके थे। बीच में इलाहाबाद ठहरे गंगासिंह, राजाराम, देवनारायण और रामप्रसाद। इन चारों में बहुत झगड़ा हो गया। रामप्रसाद का कहना था कि एक वायसराय को मारने से स्वराज नहीं हो सकता। जिस तरह एक रात में इश्तहार लगा दिए, इसी तरह सारे हिन्दुस्तान के अंग्रेज खत्म कर दिए जाएं, तो अच्छा हो। इन लोगों ने सलाह करके कहा कि पहले रामप्रसाद को ही खत्म कर दो, यही काम नहीं चलने देगा। सब अंग्रेज किस तरह खत्म हो सकते हैं। प्रातःकाल त्रिवेणी के तट पर श्री रामप्रसाद जी संध्या कर रहे थे कि एक ने तमंचा छोड़ दिया। पहली गोली का पता न चला क्योंकि ध्यान प्राणायाम में था। दूसरी गोली कान के नजदीक होकर निकली। कुछ सनसनाहट मालूम होने पर आंख खोलकर देखा, तो सामने तमंचा ताने खड़े हैं। उठकर भागे। कपड़े और अपना तंमचा वही छूट गया। जान बचाकर एक पंडित तिवारी जी के यहां पहुंचे। पंडितजी ने धीरज बंधाया, कहा कि क्या आफत आ गई? वे अपनी पहचान के थे। कुछ देर वहां ठहरे और फिर अचानक गायब हो गए। तब तक वे सभी तिवारीज के यहां पहुंच गए। पूछा कि यहां रामप्रसाद आए हैं? इन्होंने कह दिया कि यहां नहीं आए। इन लोगों ने बहुत ढूढ़ा, मगर कहीं पता न मिला। ये लोग वापस शाहजहांपुर आ गए रामप्रसाद बंगाल की तरफ चले गए। उन लोगों ने समझा कि गोली लगने से त्रिवेणी में गिर कर मर गए। शाहजहांपुर में आकर कह दिया कि रामप्रसाद मारे गए। हमारे घरवालों ने सच मान लिया कि मर गए। उनका सब कारज भी कर दिया, फिर पिताजी बहुत घबराए कि लड़कियों की शादी भी करनी है। मैं अकेला कमाने वाला हूं। उन्होंने मेरा पढ़ना बन्द करा दिया और अपने देश में आकर शादी का इंतजाम किया। जिला आगरा में पिनाहट के पास एक मौजा है। उसमें मेरे पिता की ननसाल थी, उसी के पास मेरी भी ननसाल थी। वहीं से शादी का प्रबंध किया। भाई का कहना था कि खूब पढ़ाकर अच्छे घर में शादी करूंगा, मगर भाई के न होने से एक गरीब किसान के यहां कोसमा में शादी की गई। मैं भला क्या कह सकती थी, जिस दिन शादी थी, उसी दिन भाई शाहजहांपुर आ गए। दादी ने कहा कि आज तुम्हारी बहन की शादी है, तो बहुत घबराए और उसी समय चल दिए। दूसरे दिन वहां पहुंच गए। शादी हो चुकी थी। माता-पिता

तो खुशी में देखने आए कि रामप्रसाद आ गए, सब लोग खुशी मनावें, मगर वह अफसोस में बैठे आंसुओं से मुंह धो रहे थे। लोगों ने कहा कि क्या बात है? बहुत पूछने पर बोले कि मेरी बहन की तकदीर फूट गई, जो ऐसे घर में शादी हुई। मैंने तो अच्छा घर देखा था। अभी तो बहन की पढ़ाई भी तो बाकी है। खैर जो हुआ सो अच्छा ही है। आप एक दिन ठहरे। माताजी से कुछ रुपए लेकर विदा हो, पहले लश्कर को चले गए, वहां हथियारों की तलाश कर और सौदा तय करके पिनाहट आए। मेरी चौथी चलाकर शाहजहांपुर को वापस आए। आप फिर लश्कर के दो तमंचे लाए। इतने में शाहजहांपुर में हद से जयादा चोरियां होने लगीं। पुलिस चोर-बदमाशों से मिल गई, तब इन लोगों ने, सेवा-समितियों ने अपने ऊपर इन्तजाम लिया। मिर्ज़ापुर से लाठियां मंगाई। बल्लमें गढ़वाई, रात-रात-भर पहरा दिया। तब चोरियां बन्द हुई, फिर आप लश्कर गए। दो बन्दूकें लाए। कोसमा में आकर मेरी विदा कराई। स्टेशन पर जाकर एकान्त जगह में मेरी दोनों जांघों में बन्दूक बांधकर भारी लहंगे में छिपा दीं। फिर फर्रुखाबाद धर्मशाला में ठहरे। बिस्तर में बन्दूक बांध मेरे सिरहाने रात-भर रखी रहीं। आप दूर लेटे। सवेरे फिर उसी तरह बांध दीं। मैं कुछ खड़ी रहूं, कुछ सहारे से पैर फैलाकर बैठ भी जाती थी। बारह बजे दिन के बरेली पहुंच गए, वहां स्टेशन मास्टर ने भाई को पहचान कर उतार लिया। उनकी मित्रता थी। बहुत कहा कि अभी मत रोको, फिर आऊंगा, मगर वह मुझे पकड़कर ले चले। मैंने बहुत कहा कि गठिया से मेरी टांगों में दर्द होता है। चलने से मजबूर हूं, मगर वे लिवा ले गए। धीरे-धीरे चले गए। भाई उदास हो गए। मगर मैं तो समझ गई। उन्होंने खाना बनवाया। मैं बहार निकल आई और चल पड़ी। मैंने कहा- 'मैं नहीं रहूंगी' 'उन्होंने बहुत कहा' 'खाकर चली जान।' मैं रोने लग गई। मेरी टांगों में दर्द से बैठने में बहुत तकलीफ होती है, घर ही जाऊंगी। मैं चल पड़ी। पीछे से भाई भी चल दिए। जब गाड़ी में बैठ गए, तब बोले-''बिट्टों तुम बहुत होशियार निकलीं। अब तो मैंने समझ लिया कि तुम सहायता दोगी।'' शाहजहांपुर स्टेशन से तांगे में बैठ घर पहुंच गए। मगर माताजी को कुछ न बताया। मुझे भी मना कर दिया कि किसी को न बताना। एक महीने बाद मैं कोसमा आ गई। फिर माताजी ने फुसला कर, कुछ रोजगार करना चाहता हूं पिताजी से न कहना, रुपए लेकर फिर हथियार लाना शुरु कर

दिया। मैं शाहजहांपुर तक पहुंचा देती थी। एक दिन अचानक पुलिस ने घर पर छापा मारा। भाई खाना खाने बैठे ही थे कि राजाराम को गिरफ्तार करके मेरे दरवाजे को जो आए सो मैंने भागकर कहा कि पुलिस आ गई। भाई बोले कि कुण्डी बन्द करके मेरी सन्दूक में जितनी किताबें हों, सब मिट्टी का तेल डालकर जला दो। मैं तो जाता हूं। आप छतों-छतों सड़क पर कूद गए, सीधे स्टेशन पहुंच गाड़ी में बैठकर आगरा आ गए। फिर पिनाहट पहुंच गए। वहां कौन पकड़ सकता था? पुलिसवालों ने किवाड़ तोड़ डाले। कुंडी खोल दी। ''यह क्या जला दिया?'' घुड़की दी। ''रामप्रसाद कहां है? जल्दी बताओ।'' हम लोगों ने कहा कि पता नहीं, ढूंढ़ लो। सारे सन्दूक खोल डाले। जो मिला ले गए, साईकिल उठा ले गए। पिताजी कचहरी में थे, दादी भी नहीं थीं। अकेली माताजी और लड़कियां रोती रह गई। छोटा भाई सुशीलचन्द्र गोदी में था। हम चार बहन दो भाई थे। तीन बहनों की शादी हो गई, एक दस बरस की मर गई, दो बहनें विवाह के बाद मर गई, एक छोटी बहन तो जहर खाकर मर गई। भाई को फांसी का हुक्म हुआ, सुनकर उसने जहर खा लिया। उसकी शादी भाई ने एक जमींदार के साथ की थी। वह हम से छः मील की दूरी पर थी कुचेला के मौजे में। छोटा भाई बीमार हो गया, तपेदिक हो गई थी। पिताजी अस्पताल में भर्ती कर आए, डॉक्टर ने कहा कि दो सौ रुपए दो, तो हम ठीक कर सकते हैं। पिताजी ने कहा कि मेरे पास अगर रुपए होते तो यहां क्यों आता? मुझे तो गवर्नमेंट ने भेंट दिया, लड़का भी गया, पैसा भी गया। अब तो बहुत दिन हो गए। गणेशशंकर विद्यार्थी पन्द्रह रुपए मासिक देते हैं, उससे गुजर करता हूं। एक हफ्ता अस्पताल में रहा, उसे खून के दस्त हुए, चौबीस घंटे में खत्म हो गया। दसवां दर्जा पास था। वह भी बोलने में अच्छा था। लोग कहते थे कि यह भी रामप्रसाद की तरह काम करेगा। अब इस समय मायके के सारे खानदान में मैं ही अकेली अभागिनी रह गई हूं। फिर भाई तो कुछ दिन कोसमा, कुछ दिन पिनाहट, कुछ दिन रूहर बरवाई रहे। उनके साथी बहुत पकड़े गए। मैनपुरी षड्यंत्र केस चला। आपके साथी मैनपुरी में भी थे। जो हथियार आप लाते थे मेरे यहां रखे रहते थे। मैं इसी तरह पहुंचा देती थी। साथियों को भी लाया करते थे, फिर माता-पिता भी बहुत दुःखी होकर पिनाहट में ही रहने लगे। भाई दो साल गायब रहे। पिनाहट में आपने खेती के साथ-साथ

साहित्य रचना भी की। आपने छह किताबें छपाई-मन की लहर, बोलशेविकों की करतूत, केथोराइन, स्वदेशी रंग एवं दो बंगला से अनूदित कीं। बंगला के अच्छे जानकार थे। कुछ दिनों आगरे में डॉक्टरी भी की। अपना नाम यहां बदल दिया था। रूपसिंह रखा था। विरोधी लोगों को ज्ञान नहीं हुआ कि यह फरार है, नहीं तो पकड़वा देते। वारंट में दो हजार रुपये का ईनाम था। एक दिन माताजी ने नाराज होकर पानी भरने के लिए कहा कि क्या लिखता रहता है पानी भर दे। कुछ देर हो गई। माताजी को क्रोध आ गया कि हम सब तेरे पीछे बरबाद हो गए। तेरे पढ़ने में पैसा लगाया कि कुछ पैदा करेगा। सो घर-बार से भी भेंट दिया, तेरे होने का क्या सुख, मुसीबत ही है। उसी समय आप चल पड़े। न कुछ कहा, खाली धोती-आधी ओढ़े आधी पहने। सर्दी का मौसम था। शाहजहांपुर तीसरे दिन रात को पहुंचे। एक पैसा भी पास न था। अठारह कोस आगरा पैदल गए। रास्ते में शेर मिला। आप एक बबूल के पेड़ से खड़े होकर ईश्वर से प्रार्थना करने लगे कि मेरा कोई कसूर है जो काल आ गया। ईश्वर की कृपा से शेर उल्टा ही लौट गया। आप खड़े-खड़े देखते रहे कि वह फिर न लौट पड़े, मगर वह चला गया। आप कुछ देर बार वहां से फिर चल दिए। आगरा पहुंचकर बिना टिकट छिपकर गाड़ी में बैठ गए। रात के बारह बज रहे थे। दादी को पुकारा धीरे-धीरे आवाज दी। दादी ने समझा कि कोई पुलिस का आदमी है। बोलीं, 'क्यों मुझे सताते हो!' आपने कहा 'मैं रामप्रसाद हूं। दादी, कुंडी खोल दो, मैं पिनाहट से आया हूं।' दादी ने कुंडी खोली। बोले-' दादी आग जला दो, कुछ खाने को रखा हो तो दे दो, भूख के मारे दम निकल रहा है, तब बात कहूंगा।'

दादी ने कहा कि एक रोटी छीके पर रखी है, वह सूख गई होगी। बोले, मुझे जल्दी दे दो, वह खाकर पानी पी लिया, तब बात निकली। कहा-''माताजी मुझसे नाराज हुई इससे चला आया'' दादी ने कहा- ''तेरा तो वारण्ट जारी है।'' दूसरे दिन कप्तान साहब के सामने हाजिर हुए। कप्तान बोला कि आप तो खत्म थे, अब जिन्दा कहां से आ गए। कहां रहे? तब जवाब दिया कि मैं आगरा रहा। क्या काम करते रहे? कहा कि कुछ दिनों इलाज करते रहे। अस्पताल में डॉक्टर की ऐवजी में रहे थे। डॉक्टर मेल का था, वह छुट्टी पर चला गया था, कुछ दिनों कविता करते रहे, वह किताबें भी दिखाई। कप्तान ने छह महीने की नाराजगी बोल दी। इतने में आपने एक

रेशम के कारखाने में आठ रुपए की नौकरी कर ली। पहली तनखा पिताजी के नाम भेज दी। लिख दिया कि माताजी मेरे अपराध को क्षमा कीजिए। यह रुपए रख लीजिए। अब मैं आपके ऋण को ही चुकता करूंगा। माता जी को बहुत दुःख हुआ कि रामप्रसाद को मेरा कहना बुरा मालूम हुआ। इसलिए नंगा-भूखा चला गया। कुछ दिनों पता नहीं दिया। माताजी बहुत दुःखित रहती थीं। पत्र तथा रुपए आने पर शांति आई। आपने छह महीने नौकरी की। बाद को आधे हिस्सेदार बन गए साझे में कारखाना था। उस समय हम तीनों बहन मौजूद थीं। बढ़िया तीन साड़ी बनारसी कामदार बनाई। कार्तिक दौज को बहनों को दूंगा। बड़े बहनोई को साफा बनाया। काफी पैसा पैदा किया, फिर मां-बाप को भी बुला लिया। क्रांतिकारी का काम बराबर करते रहे। फिर दो बढ़िया पिस्तौल, दो बार मैं पहुंचा सकी। एक वकील के यहां रखी और रकम भी उन्हीं के यहां रखते थे। घर खर्चे को ही देते थे। वकील साहब को पिताजी और उनकी पत्नी को माताजी कहते थे। उनके दो लड़के थे। वह भाई के समान थे। बहुत ही विश्वास था। कारखाने का नाम छोटे भाई सुशीलचन्द्र के नाम से रखा और सुशील माला भी छपवाई थी। भाई रामप्रसाद दयावान भी अधिक थे। कोई गरीब भिक्षा मांगे तो पांच रुपए से लेकर दस रुपए तक दे देते थे। किसी को जाड़े से ठिठुरते देखते, तो अपने तन का कपड़ा उतार कर दे देते थे, चाहे कितना ही कीमती क्यों न हो। एक दिन दादी नाराज हुई कि क्या अपनी बहन का भी ख्याल है, जो गरीब है? तू लोई इतनी कीमती क्यों फकीरों को दे आया। कोई हल्के मोड का कपड़ा दे देता। लोई बहन को ही दे आता। वैसे तो हथियारों के लाने को बड़ी बिटिया है। औरों को दुशाले। अगर वह पकड़ी जाए, तो जेल ही में सड़े इतना पैसा भी नहीं, जो छूट सके। आप बोले कि बिटिया का मुझे बहुत ख्याल है। मैं दिवाली पर जाऊंगा, तब उसका सारा कर्जा निबटा दूंगा और जो साड़ी बनी रखी है वे तीनों को दे आऊंगा। बड़ी बिटिया से हिसाब पूछ आया हूं कि कुल कितना कर्जा है। चार सौ रुपए बतलाए हैं। उसे तो मैं रेशम ही पहनाऊंगा। उसने मेरे बहुत काम निकाले, हथियार लाना, उनकी हिफाजत करना, मेरे न होने पर भी सम्भाल रखना। जब मैं शाहजहांपुर रहती थी, तब एक चौड़ा गड्ढ़ा था, उसमें सारे सामान रखे रहते थे। ऊपर एक तख्ता डाल दिया और मिट्टी डाल दी। आठवें दिन सफाई, तेल लगाना,

सुखाना पड़ता था। जब कहीं ले गए तो निकाल लिए, कुछ सामान बंब का भी रखते थे। एक दिन बारूद में रगड़ के जोर से आवाज हुई। आप बच गए। निकलकर बाहर आ गए। हम लोग बहुत ही डरे, मगर मिट्टी से सब ढंक दिया। एक छोटा सा मकान अलग था। उसी में सब रहता था। उसी में उनके साथी भी छिपे रहते थे। मैं सबको खाना खिलाती थी। दूसरा कोई उस घर में नहीं जाता था। कुछ लोग आवाज सुनकर जग पड़े। बंदूकें कहां चली, हम लोग भी कहने लगे, देखो कहां आवाज हुई, हम लोग तो सोते से जग पड़े। रामप्रसाद कहां है मालूम नहीं, वह तो कल से ही नहीं आया, गांव गया है, आप खड़हर गांव में पहुंच गए। पांच दिन बाद आए। थाना नजदीक था। सिपाही भी आ गए। फिर मोती चौक में एक खाली मकान था, उसमें अपना काम करने लगे। बनारसीलाल ने ही काकोरी केस में मुखबरी की थी। विष्णु शर्मा चौदह साल की जेल भुगतकर आ गए-काकोरी केस में। फिर रामप्रसाद सावन में मुझे लेने आए। यहां से मुझे नहीं भेजा। आप कार्तिक की कह गए कि हम आवेंगे तब तक आप कुंआर की नौ दुर्गा में गिरफ्तार हो गए। नौमी का दिन था। प्रातः समय आप दातुन कर रहे थे कि पुलिस ने छापा मारा। रामप्रसाद जल्दी निकलो। आपने किवाड़ खोले दिये। एक पर्चा दे दिया, उसे आप पढ़कर बोले, अभी चलता हूं। माताजी से कुछ बात करनी है। अच्छा यहीं जो कुछ कहना हो कह दीजिए। माता-पिता दोनों खड़े ही थे। पिताजी के पैर छूकर कहा, माफी दीजिए। माताजी के पैरों में सिर रखकर बोले, ''मैं आपकी सेवा कुछ भी न कर पाया, माताजी धीरज रखना।'' फिर छोटे भाई सुशीलचन्द्र को हृदय से लगाया, और कहा, ''मैं तो जाता हूं न जाने आया या न आया। देश-सेवा पर चाहे मेरा बलिदान ही क्यों न हो, मगर काम यहीं करूंगा। करने से मुझे कोई डर नहीं। जेल से डर नहीं, शेर ही कटघरे में फांसे जाते हैं न कि गीदड़।'' सबको प्रणाम करते हुए हंसते हुए चल दिए। सन् 1924 में गिरफ्तार हुए। ढाई साल मुकदमा चला। सन् 25 में छोटी बहन खत्म हो गई। मेरे पुत्र पैदा हुआ। आप लखनऊ की जेल में थे, भानजे की सुनकर उत्सव मनाया। बहन की जहर खाकर आत्म-हत्या की बात सुनकर शोक भी किया। अपनी जीवनी में सारी बातें लिखी हैं, जो उनके हाथ की लिखी हुई है। उसमें से कुछ बातें छोड़ दी हैं, हां मुख्य-मुख्य बातें आत्मकथा में हैं। आपके मुकदमें में जो कुछ था पिताजी ने लगा दिया। पिताजी बहुत

दुःखित हुए। रामप्रसाद ने कहा कि अब तो बिल्कुल ही रोटी को भी तबाह हो चुके, मैं परवश हूं। तब आपने .....को पत्र लिखा कि जो कुछ पैसा मेरे हिस्से में हो वह मेरे पिताजी को देना, कुछ सब कारखाने का हिसाब 20,000 रुपए का था, आधा दस हजार चाहिए, उसमें 1700 रुपए का कपड़ा कलकत्ता, 12 रुपए का मद्रास, 1500 रुपए का लाहौर, 200 रुपये का शाहजहांपुर उधार बंटा हुआ था। उन्होंने लिखा कि लाहौर से जो पैसा मिले वह हमारी बहन को दे देना। मैंने उसको देने को कहा था, बाकी थोड़ा-थोड़ा करके मेरे पिताजी को देते रहना। मगर..... ने एक पैसा नहीं दिया। कारखाने का समान उनके पकड़े जाने के बाद सब अपने घर को लदवा ले गए। मेरी माताजी ने कहा कि एक चरखा मेरी पुत्री को दे दो। वह अपने हाथ से ही कातकर कपड़ा बुनती है, उसी को पहनती है, मगर कुछ भी ध्यान न दिया। पछताकर बैठना पड़ा। फिर भी रामप्रसाद ने कई बार लिखा, कुछ भी न दिया, बल्कि अकड़कर पिताजी से लड़े। फिर वकील को लिखा कि अब मैं तो जेल में, पिताजी मेरे जो कुछ रुपए आपके यहां हैं, मेरे पिताजी को दे दीजिए। पांच हजार जमा थे। दो हजार अभी दे देना। फिर मैं लिखूं तब देना। उन्होंने एक पाई भी न दी। कहते रहे कि वे दे देंगे। अब पिताजी बहुत दुःखी हुए। माताजी बिल्कुल दुःख से कमजोर से हो गई। गणेश शंकर विद्यार्थीने कानपुर में 2000 रुपए चन्दा करके मुकदमे में सहायता की। फिर भी मेरे भाई को फांसी की सजा मिली। वकील साहब को अंतिम पत्र में लिखा, ''पिताजी, माताजी आप लोगों ने मुझसे अच्छा प्यार किया। अब एक अंतिम निवेदन है कि एक बंदूक मेरी बहन को दे देना। बाकी छह हथियार आपके यहां रह जाएंगे। मेरे लिए आपने एक पत्र लिखा, माताजी को दिया कि बड़ी बिटिया को दे देना और उसे धीरज बंधाती रहना। वह पत्र माताजी से कहीं किसी ने ले किया। फिर न दिया। मातजी से मालूम होने पर मुझे बहुत ही दुःख हुआ। पिताजी की हालत दुःख से खराब हुई। तब विद्यार्थी जी पन्द्रह रुपए मासिक खर्च देने लगे। उससे कुछ गुजर चली रही। तब विद्यार्थी जी भी शहीद हो गए। वे मुझे भी बहन से ज्यादा समझते थे, समय-समय पर खर्चा भेजते थे। माता-पिता, दादी, भाई, दो गाय थीं। रहने के लिए हरगोविन्द ने एक टूटा-फुटा मकान बता दिया था, उसमें गुजर करने लगे। वर्षों में बहुत मुसीबत उठानी पड़ी। फिर पांच सौ रुपए पं. जवाहर

लालजी ने भेजे। तब माताजी ने कहा कि कुछ जगह ले लो। इस तरह के दुःख से तो बचें। नई बस्ती में जमीन अस्सी वर्ग गज ले ली। एक छप्पर एक कोठरी थी। उसमें गुजर की। पिताजी भी चल बसे। माताजी बहुत दुखित हुई। एक महीने के बाद मैं भी विधवा हो गई, अब दोनों मां बेटी दुःखित थी। मेरे पास एक पुत्र तीन साल का था, माताजी बोलीं कि मैं तो शरीर से कमजोर हूं, किस तरह दूसरे की मजदूरी करूं। बिटिया अब क्या करना चाहिए। मैंने कहा कि जहां तक मुझसे होगा, माताजी आपकी सेवा करूंगी, आप धीरज बाँधो। ईश्वर की यही इच्छा थी। माताजी के पास रामप्रसादजी के सोने के तीन तोले के बटन थे। उन्होंने किसी को नहीं बताया, छिपाए रहीं। जाने कैसा समय हो, इसलिए कुछ तो पास रखना चाहिए। पिताजी के स्टाम्प खजाने में दाखिल किए, दो सौ रुपए वह मिले, फिर बटन बेच दिए। फिर मैंने ईंट-लकड़ी लगाकर एक तिवारा तथा उनके ऊपर एक अटारी बनवाई। ऊपर माताजी ने गुजर की। नीचे का हिस्सा आठ रुपए में किराए पर उठा दिया। आठ रुपए में मैं, माताजी तथा बच्चा रहते थे बहुत ही मुसीबत से। एक समय वह भी, कभी-कभी खाना प्राप्त होता था। मैंने एक डॉक्टर के यहां खाना बनाने का काम छह रुपए में कर लिया। कपड़े की कमी से बहुत ही दुःखित रहे। बच्चा सयाना हुआ। माताजी ने सबसे फरियाद की कि कोई इस बच्चे को पढ़ा दो। कुछ कर खायेगा। मगर शाहजहांपुर में किसी ने ध्यान नहीं दिया। मैंने अपनी मेहनत से पांचवां दर्जा पास करा दिया, फिर तो पैसे का काम था। मजबूर होकर मजदूरी से गुजर की। कोसमा में तीन बीघा खेत था वह भी कर्जे में रखा, कभी-कभी कोसमा में भी रह जाती थी। बिना पैसे कौन किसका होता है? यहां के लोगों में से कोई भी मुंह से नहीं बोलता था। मैं अपनी मुसीबतों को लिख नहीं सकती। बहुत ही दुःख उठाए। मेरी माताजी भी बहुत दुःखित रहीं। मेरा दुःख उनको बहुत सताता था। विष्णु शर्मा चौदह साल जेल काटकर छूटकर आए तो माताजी के दर्शन को आए। माताजी जाड़े के मारे ठिठुर रही थीं। उनका दुःख देखकर चकित रह गए। पूछा, आपको किसी भाई ने मदद नहीं दी। माताजी रोकर बोलीं कि मदद देने वाला तो परमात्मा है। आंसुओं की धारा लग गई। बोल बड़ी देर में निकला कि मेरी पुकार ईश्वर भी नहीं सुनते, जो इस शरीर से छुटकारा दें। विष्णु शर्मा ने अपना कम्बल उतार कर उन्हें उढ़ा दिया। बोले, माताजी

मैं आपकी सेवा जो होगी करूंगा। फिर उन्होंने बहुत कोशिश की। स्वराज्य होने पर माताजी की पेंशन साठ रुपए हो गई। फिर माताजी के साथ मेरी गुजर होने लगी। मोटा खाना-पहनना चलता रहा। पर माताजी के स्वर्गवास के बाद पेंशन बन्द हो गई और मुझ पर आफत का पहाड़ टूट पड़ा। लड़के को पढ़ाने को पैसा न हो सका। फिर मैंने मैनपुरी के नेता लोगों से भी फरियाद की कि आप लोग मेरे लड़के को पढ़ा दें, तो इसका जीवन संभल जाए। मगर अपने सुख के सामने गरीबों की कौन सुनता है? यह तो कोई नहीं सोचता कि कितने भाई कुर्बान हो गए, कितने जेलों में सड़े और आप आज एम.एल.ए. और मिनिस्टर बने बैठे हैं। जिन्होंने अपने को बलिवेदी पर चढ़ा दिया, उनके खानदान वाले भूखों मर रहे हैं। आज दिन जो मैं अनाथ दुखिता हूं, मेरे भाई रामप्रसादजी होते तो अपने भानजे को कितना पढ़ाते। मेरी सहायता करते। स्वराज्य में आज मैं हर तरह की मुसीबत उठा रही हूं। पर मेरी बात किसी ने भी न सुनी। मगर ईश्वर की महिमा कोई नहीं जानता। मैं बहुत दुःखी फाके कर रही थी। मेरा लड़का कुसंग में फंस गया था। वह घर से निकल गया था। एक महीने तक पता न मिला। मैं और बहू दोनों अपने दुःख में सलाह कर रहे थे कि चलो गंगाजी में डूब जाएं, कहां तक भूखों मरे? कपड़े को नंगे, एक दिन तो नहीं जो काट लें। इतने में किसी ने आवाज दी कि माताजी आपसे कोई मिलने आया है। मैं फटी धोती पहने थी। शर्म से ढंक कर उठी और बोली, ''भाई साहब! कैसे तकलीफ उठाई?'' उन्होंने कहा- ''चतुर्वेदी ओंकारनाथ पाण्डे मेरा नाम है। बहनजी, मैं आपके ही दर्शन को आया हूं।'' फिर मैंने बार-बार धन्यवाद दिया। फिर पाण्डेजी ने कहा कि मेरे पास भाई बनारसीदास चतुर्वेदी का पत्र आया है कि कोसामा में शहीद रामप्रसाद बिस्मिलजी की बहनजी हैं। उनके यहां आप खुद जाकर देखो कि वे किस तरह गुजर करती हैं? कितनी जमीन है? वे सब देखकर मेरे लिए लिखो। मैंने अपना घर दिखाया कि आप भीतर जाकर देख सकते हैं कि मेरे पास तो पांच सेर दाने भी न होंगे, ज्यादा कहूं? मेरी हालत देखकर पाण्डेजी ने पांच रुपये दिये। मैंने चार रुपए की एक धोती ले ली, एक रुपया और खर्च में किया। उन्होंने चतुर्वेदीजी को सारा हाल लिखा जो कुछ आप खुद देख गए थे। फिर चतुर्वेदी ने मेरे लिए पत्र लिखा कि अपना कुछ हाल लिखो। मैंने पत्र में थोड़ा-सा समाचार अपना दिया। भाई बनारसीदास चतुर्वेदीजी ने

मुझ दीन की पुकार सुनी। आपने अपील निकाली, तो अनेक भाइयों को दया, आ गई। सहायता भी मिलने लगी। राष्ट्रपति महोदय और श्री कृष्णकुमार बिड़ला से लेकर छोटे-बड़े सबने मुझ पर दया की। पर मैं संकोच से उसमें से पैसा न खर्च कर सकी। चतुर्वेदी ने लिखा कि आप संकोच न करें, यह पैसा आपका ही है। आप कपड़ा बनवा लीजिए। अन्न भी लेकर रख लीजिए। अब आप मुसीबत न उठाइए। बहुत दुःख आपने सहे। मैं आपको दुःखी न होने दूंगा। चतुर्वेदीजी ने बहुत कोशिश करके मेरी पेंशन चालीस रुपए करवा दी है। उनको मैं कहां तक धन्यवाद दूं। उसी से हम तीनों प्राणियों की जैसे-तैसे गुजर-बसर हो रही है।

-शास्त्री देवी

(अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की बहन)

thearyasamaj.org

बिस्मिल की गज़लें और कविताएं

सरफ़रोशी की तमन्ना

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाजु-ए-क़ातिल में है
रहबरे-राहे-मुहब्बत रह न जाना राह में
लज़्ज़ते-सहरा-नवर्दी दूरिए-मंज़िल में है
आज मक़्तल में ये क़ातिल कह रहा है बार-बार
अब भला शौक़े-शहादत भी किसी के दिल में है
वक्त आने दे बताएंगे तुझे ऐ आसमां!
हम अभी ये क्या बताएं क्या हमारे दिल में है
ऐ शहीदे-मुल्को-मिल्लत! हम तेरे ऊपर निसार
अब तेरी हिम्मत का चर्चा ग़ैर की महफ़िल में है
अब न अगले वल्वले हैं और न अरमानों की भीड़
एक मिट जाने की हसरत अब दिले-'बिस्मिल' में हैं

हसरते-दिल

देखना है किस क़दर दम ख़ंजरे-कातिल में है
अब भी यह अरमान यह हस्रत दिले-बिस्मल में है
ग़ैर के आगे न पूछो इसमें है इस खास राज़
फिर बता देंगे तुझे जो कुछ हमारे दिल में है
खीच कर लायी है हमको क़त्ल होने की उम्मीद
आशिक़ों का आज जमघट कूचए-क़ातिल में है
फिर रहे चारों तरफ़ क्यों हाथ में ख़ंजर लिये
आज है यह क्या इरादा आज यह क्या दिल में है
एक से करता नहीं क्यों दूसरा कुछ बातचीत
देखता हूं मैं जिसे वह चुप तेरी महफ़िल में है
उनपे आफ़त आ गयी यक रोज़ मर ही जायेंगे

वह तो दुनिया में नहीं जो क़ब्जा-ए-क़ातिल में है
एक जानिब है मसीहा, एक जानिब है क़ज़ा
किस कशाकश में पड़ी, यह जान किस मुश्किल में है
जख़्म खाकर भी उसे है जख़्म खाने की हवस
हौंसला कितना तड़पने का तेरे 'बिस्मिल' में है

उम्मीद-ए-सुखन

कभी तो कामयाबी पर मेरा हिन्दोस्तां होगा।
रिहा सय्याद के हाथों से अपना आशियां होगा।
चखायेंगे मज़ा बर्बादि-ए-गुलशन का गुलचीं को।
बहार आयेगी उस दिन जब ये अपना बागवां होगा।।
वतन की आबरू का पास देखें कौन करता है?
सुना है आज मक़्तल में हमारा इम्तहां होगा।।
जुदा मत हो मेरे पहलू से ऐ दर्दे-वतन हरगिज़।
न जाने बाद मुर्दन मैं कहां और तू कहां होगा?
ये आये-दिन की छेड़ अच्छी नहीं ऐ ख़ंज़रे-कातिल।
बता कब फैसला उनके-हमारे दरमियां होगा?
शहीदों की चिताओं पर जुडेंगे हर बसर मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाक़ी निशां होगा।।
कभी वह दिन भी आयेगा जब अपना राज देखेंगे।
कि जब 'बिस्मिल' ज़मीं अपनी और अपना आस्मां होगा।।

सदा-ए-सर्द

लाखों हमारे भाई, फाक़ों से मर रहे हैं,
उफ़! जिनके पास ज़र है वो चैन कर रहे हैं।
दुःख-दर्द की असीरों के, कुछ खबर नहीं है,
ये ग़ैर क़ौम वाले, जाम अपना भर रहे हैं।
उफ़! इन्क़िलाबे-दुनिया, अल्लाह दौरे-गर्दू,
नाज़ों पले क़फ़स में, कुढ़-कुढ़ के मर रहे हैं।
मुफ़्लिस जो आजकल हैं, इनके बुजर्गे-दामन,

इम्दादे-ग़ैर ही में, दौलत के सर रहे है।
हुआ क़हत हमदमी का, ग़र इस तरह मुरव्वज,
मांगेंगे भीख कल, जो पेट आज भर रहे हैं।
हिन्दोस्तानियों की, अक़्ले ऐसी चर गयी है,
चारा उन्हीं को देंगे, जो खेत चर रहे हैं।
अग़यार खा रहे हैं, खेती हमारी सारी,
हम भूखों मर रहे हैं, वो मौज़ कर रहे हैं
'बिस्मिल' सुना है हमने, ऐसा भी था ज़माना,
जिनसे हैं ज़ेर अब हम, उन पर ज़बर रहे हैं।।

विश्वासघात

न मालूम था कि वह ज़ालिम हमें इतना सताएगा;
फंसाकर दामे-उल्फ़त में, हमें बन्दी बनाएगा।
छुड़ा करके वतन हमसे, बनाएगा हमें कैदी,
दिखाकर आबोदाना, जाल में हमको फंसाएगा।
बनाने को हमें क़ैदी, बनेगा बाग़ का माली;
छिपाकर शक्ल असली, नक़्ल दीगर की दिखाएगा।
बनाकर के हमें बन्दी, करेगा ऐसी सय्यादी;
हमारे सामने ही पास, ग़ैरों को बिठाएगा।
समझकर नातवां हमको, करेगा इतनी जल्लादी;
जलाकर बालो-पर सारे, हमें 'बिस्मिल' बनाएगा।

मादरे-हिन्द की आवाज़

मेरे ग़म की है कहानी, मुझे क़िस्साख़्वां न समझो;
अभी सुन के रो पड़ोगे, इसे दास्तां न समझो।
बड़े शौक से उड़ा दो, मेरे तन के टुकड़े-टुकड़े;
न रुकेगा जज़्बए-दिल, मुझे बेजुबां न समझो।
कभी औज है किसी की, कभी है किसी की पस्ती;
ये फ़लक की गर्दिशें हैं; दौरे-ज़मां न समझो।
मेरे लाल! आंख खोलो, ज़रा हाथ-पांव धो लो;

न जगे तो अपनी हस्ती, ज़ेरे-आस्मां न समझो।
वही रोब, शानो-शौकत, वही है जलाल अपना;
हूं, ज़ईफ़ लाख लेकिन, अभी नातुवां न समझो।
मुझे भूलता है पागल, मैं तेरी ही ख़ास मां हूं;
मैं हूं क़ौम की इबादत, मुझे ख़मोख़ां न समझो।
तहे-ख़ाक में मिले हैं, मेरी हज़ारों 'बिस्मिल';
मैं मादरे-वतन हूं, मुझे बेनवा न समझो।

मेरा क़ौल (1)

अदू के तेज़ खंजर से मुझे डरना नहीं आता;
बहुत मज़बूत हूं, टेढ़ा मुझे बनना नहीं आता।
जहालत को मिटा दूंगा, अगर है ज़िन्दगी बाक़ी,
बचाकर राहे-हक़ से थे क़दम धरना नहीं आता।
है मेरा जिस्मो-जां कुर्बान प्यारे देश की ख़ातिर;
वतन के वास्ते इन्कार करना ही नहीं आता।
अमर है आत्मा मेरी, मुख़ालिफ़ ग़ौर से सुन लें;
चढ़ा दें, दार पर, पीछे मुझे हटना नहीं आता।
हक़ीक़त की तरह मैं सर कटा कर ख़ूं से भर दूंगा;
तुम्हें जामे-शहादत को अगर भरना नहीं आता।
मैं अपने धर्म को शैदा हूं 'बिस्मिल' मिस्ले-परवाना;
करूं क्या, नर्म बिस्तर पर मुझे मारना नहीं आता।

सरफ़रोशाने-वतन

सरफ़रोशाने-वतन फिर देख लो मक़्तल में हैं
मुल्क़ पर कुर्बान हो जाने के अर्मा दिल में हैं
तेरा है ज़ालिम की यारो! और गला मज़्लूम का
देख लेंगे हौंसला कितना दिले-क़ातिल में है
शोरे-महशर बावफ़ा है मारिक़ा है धूम का
वल्वले-जोशे-शाहदत हर रग-बिस्मिल में है

क्या है?

मेरी तरफ़ में ये बदख़याली न जाने उसका ख़्याल क्या है?
न रुख़ मिलावें न मुंह से बोलें, खुदा ही जाने क्या मलाल क्या है?
इसी तमन्ना में मर मिटे हम कि जख़्मे-दिल पर लगेगा मरहम?
मगर न पूछा ये उसने इक दम मरीज़े-ग़म तेरा हाल क्या है?
वतन पे शैदा, वतन पे मुफ़्तूं, वतन है लैला मैं उसका मजनूं।
हक़ूक़ अपने ही चाहता हूं, बस और मेरा सवाल क्या है?
इधर रहे रास्तों पे क़ायम न जान जाने कुछ भी है ग़म।
ऊधर चढ़ी त्योरियां है पैहम, खुदा ही हाफ़िज जमाल क्या है?
दरे-मुहब्बत का जो ग़दा हो, मुसीबतों से घिरा हुआ हो।
जो खुद ही फ़ाक़ो से मर चुका हो, उसे जो मारा कमाल क्या है?
हज़ार आफ़त हों लाख मुश्किल कभी न घबराओ हज़रते-दिल।
पहुंच ही जाओगे तावे-मंज़िल, जनूब क्या है शुमाल क्या है?
जो काम करना खुशी से करना, मुसीबतों से कभी न डरना।
नतीजा यक दिन मिलेगा 'बिस्मिल', जुदाई कैसी बिसाल क्या है?

मेरा कौल (2)

उन्हें यह फ़िक्र है हरदम नई तर्ज़े-जफ़ा क्या है?
हमें यह शौक़ है देखें सितम की इन्तहा क्या है?
गुनहगारों में शामिल हैं गुनाहों से नहीं वाक़िफ़?
सज़ा को जानते हैं हम, खुदा जाने ख़ता क्या है?
ये रंगे-बेकसी रंगे-जुनूं बन जाएगा ग़ाफ़िल,
समझ लो यासे-हिर्मा के मरज़ की इन्तहा क्या है?
चमकता है शहीदों का लहू कदुरत के पर्दे में,
शफ़क़ का हुस्न क्या है, फूल की रंगे बक़ा आखिर है,
उम्मीदें मिल गई मिट्टी में ज़ब्त आख़िर है,
सदाए-ग़ैब बतला दे हमें हुक्मे-खुदा क्या है?
नहीं 'बिस्मिल' हूं मैं वाक़िफ़ अभी रस्मे-शहादत से,
बता दे अब तू ही ज़ालिम तड़पने की अदा क्या है?

सच्ची प्रतीज्ञा

वतन के वास्ते हम, लाख तकलीफ़ें उठाएंगे;
ज़रूरत गर पड़ेगी, जान पर भी खेल जाएंगे।
बला से तीर बरसें, या कि गर्दन पर चलें ख़ंजर;
मगर रखकर क़दम आगे, न हम पीछे हटाएंगे।
वतन महबूब है अपना, है उस पर जिस्मो-जां क़ुर्बा;
मुख़ालिफ़ वार कर देखें, न हम गर्दन हिलाएंगे।
खुशी से गोलियां खाकर, सहेंगे मार सीने पर;
न बाज़ आएं कभी हम, सोए आलम को जगाएंगे।
न डर है जेल का हमको, न खौफ़े-हथकड़ी कुछ भी;
न ज़िल्लत देखकर भी हम, शिकन माथे पे लाएंगे।
न ख़्वाहिश हमको इज़्ज़त की, नहीं परवाह ज़िल्लत की;
हक़ीक़त की तरह 'बिस्मिल', हम अपना सर कटाएंगे।

फ़ाक़ामस्त बलिदानी

शहीदाने-वतन होंगे, हज़ारों, बेवतन पहले,
फलेगा इंडिया पीछे, भरेगा 'अण्डमान' पहले।
मुसीबत आ! कयामत आ!! कहां ज़ंजीरें-जिन्दां हैं,
यहां तैयार बैठे हैं, ग़रीबाने-वतन पहले।
यकायक जुल्म से थर्रा उठेगी तेग़ ज़ालिम की,
कि होंगे सामने जब सरफ़रोशाने-वतन पहले।
हमें दुख भोगना मंजूर है, पर क़ौम सुख पाए,
ये दिल में ठान कर बैठे हैं सारे मर्दो-जन पहले।
उन्हीं के सर बंधे सेहरा, उन्हीं पर ताजे-कुर्बानी,
जिन्होंने फाड़कर अपने रखा सर पर कफ़न पहले।
न हम इज़्ज़त के तालिब हों, न दौलत की करें परवा,
फ़िदा इस मुल्क पर कर देंगे तन-मन और धन पहले।
ज़मीने-हिन्द भी फूले-फलेगी एक दिन, लेकिन,
मिलेंगे खाक़ में 'बिस्मिल' हमारे गुलबदन पहले।

अर्ज़े-खुदा

वतन की ग़मशुआरी के, कोई सामान पैदा कर।
जिगर में जोश, दिल में दर्द, तन में जान पैदा कर।।
उड़ा ले जायें दम भर में, जहां की जो खुराफ़ातें;
बला का ऐसा मह्शर, या कोई तूफ़ान पैदा कर।।
हम अपनी शान की ख़ातिर, खुशी से जान पर खेले;
कि हों हम आन पर कुर्बान, वह एहसान पैदा कर।।
क़दमबोसी को चलके, सर के बल आएगी आज़ादी
तू मर मिटने की ख़्वाहिश, ऐ दिले-नादान पैदा कर।।
खुदा को नेस्त कर आएँ, बजाएँ जंग का डंका;
कुछ ऐसे मनचले दिलदार, मर्द-इन्सान पैदा कर।।
न मरकर ज़ीस्त को देखूं, न जीकर क़ौम की हालत;
दिले-'बिस्मिल' में बेचैनी, मेरे भगवान! पैदा कर।।

निवेदन

हमें आज़ाद करने की, मुहब्बत अपनी रहने दो।
अमानतदार का घर है, अमानत अपनी रहने दो।।
कभी आबाद करते हो, कभी बर्बाद करते हो।
बड़े चालाक हो हज़रत, रिफ़ाक़त अपनी रहने दो।।
बला से आपकी ज़िन्दा रहें, हम या कि मर जाएं।
न हो इन्साफ़ तो झूठी हिमायत अपनी रहने दो।।
डराया है, सताया है, ये दिल में सोच लो अपने।
बिगड़ जाएंगे हम बस-बस, शिकायत अपनी रहने दो।।
वज़ाहिर मेहरबानी है, तो दिल में बदगुमानी है।
सलाम ऐसी इनायत को, इनायत अपनी रहने दो।।
हमारी नाला-ओ-फ़रियाद, इक दिन बाअसर होगी।
दबाया है बहुत हमको, अदावत अपनी रहने दो।।
अब उनकी बेनियाज़ी से, ग़रज़ तुमको है क्या 'बिस्मिल'।
ये ताअत अपनी रख छोड़ो, इबादत अपनी रहने दो।।

अफ़सोस

मिट गया जब मिटने वाला फिर सलाम आया तो क्या,
दिल की बर्बादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या।
काश! अपनी ज़िन्दगी में हम वो मंजर देखते,
यूं सरे-तुर्बत कोई मह्शर-ख़िराम आया तो क्या।
मिट गई जब सब उम्मीदें मिट गये जब सब ख़याल,
उस घड़ी ग़र नामाबर लेकर पयाम आया तो क्या।
ऐ दिले-नाकाम। मिट जा तू भी कूए-यार में,
फिर मेरी नाकामियों के बाद काम आया तो क्या।
आख़िरे-शब दीद के क़ाबिल थी 'बिस्मिल' की तड़प,
सुब्हो-दम कोई अगर बालाए-बाम आया तो क्या।

फ़र्यादे-बुलबुल (1)

शाद भी होता रहे, होता रहे बेदाद भी;
सब गबारा है हमें, सुनते रहो फ़र्याद भी।
बाग़ से जाने नहीं देता है यह लालच हमें;
फांसकर दो चार बुलबुल, फंस गया सय्याद भी।
इस चमन में रहने वालों! यह कभी मुम्किन नहीं;
बाग़बां भी खुश रहे, राज़ी रहे सय्याद भी।
उस बुते-बेपीर से मिलकर के यह उक्दा खुला;
भोली भाली सूरतों में, होते हैं जल्लाद भी।
दिल में रक्खो शौक से, उल्फ़त रक़ीबों की मगर,
हो जगह इतनी कि आ जाये हमारी याद भी।
तुम जो कहते थे बिगड़कर हम न आयेंगे कभी;
यह भी कह दो फिर न, आयेगी हमारी याद भी।
हाय! क्या हस्त्रतज़दा था, मेरा दिल 'बिस्मिल' कभी;
हो गया दो दिन में ही, आबाद भी बर्बाद भी।

फर्यादे-बुलबुल (2)

नाज़ भी होते रहें, होते रहें बेदाद भी
सब गवारा है अगर सुनते रहो फ़र्याद भी

बुलबुलो! बाग़े-जहां देखो हमेशा ग़ौर से
बुलबुलें हम जैसी फंसकर हो गयीं बर्बाद भी
इख़्तियार पहले-पहल की उसने तर्ज़े-बाग़बां
जब था फांसा दाम में हमको लगा सय्याद भी
फंस चुके जब दाम में बाकी रहा कुछ भी नहीं
तब तो वह सय्याद था अब हो गया जल्लाद भी
हम मरें तड़पा करें यों ही वतन की याद में
पर रह्म का ज़िक्र क्या, सुनता वहीं फ़र्याद भी
खुद-ब-खुद बुत हो गया कल तक था जो अब्रे-खुदा
उस बुते-बेपीर से मिलकर के यह उस्ताद भी
अब तो 'बिस्मिल' ने किया है इस तरह पर फ़ैसला
जो कि ज़ालिम हैं, रहें वो शाद भी आबाद भी

अरमाने-दिल

पूछते हो क्या कि क्या अरमा हमारे दिल में है
कुछ वतन की याद में आहे-दमें-'बिस्मिल' में है
साक़ियानो-बाग़े-आलम सब रिहाई पा चुके
यक हमीं आफ़त के मारे क़ैद की मुश्किल में हैं
देश वालो! दामने-हिम्मत कभी छोड़ा नहीं
इम्तहाने-इश्क़ की हम पहली ही मंज़िल में हैं
आ ही पहुंचेगी किनारे क़श्ती-ए-भारत कभी
कोई दम में देखना हम दामने-साहिल में हैं
जोशे-तूफां शोरे-दर्या बर्के-लर्जा बादे-तुन्द
क़श्तीए-उम्रे-रबां या रब! बड़ी मुश्किल में है
ज़िन्दाबाद ऐ जाने-उल्फ़त जानो-दिल तुझ पर निसार
क्योंकि इक तेरे सबब से याद उसकी दिल में है
बज़्म में बर्क़े-नज़र है सद-तमन्ना आफ़्रीं
दिल में है महफ़िल कोई या दिल मेरा महफ़िल में है

अच्छे दिन आने वाले हैं

मादरे-हिन्द! ग़मगीन न हो, अच्छे दिन आने वाले हैं।
आज़ादी का पैग़ाम तुझे, हम जल्द सुनाने वाले हैं।।

मां तुझको जिन जल्लादों ने, दी है तकलीफ ज़ईफ़ी में।
मायूस न हो मग़रूरों को, हम मज़ा चख़ाने वाले हैं।
कमज़ोर हैं और मुफ़्लिस हैं हम, गो कुंजे-क़फ़स में बेबस हैं।
बेकस हैं लाख मगर माता! हम आफ़त के पर्काले हैं।।
हिन्दू और मुसलमां मिल करके, जो चाहें सो कर सकते हैं।
अय चर्ख़े-कुहन! होशियार हो तू, पुरजोश हमारे नाले हैं।।
मेरी रूह को करना क़ैदे-क़फ़ास, इन्कास से बाहर है उनके।
आज़ाद है अपना दिल शैदा, गो लाख जुबां पर ताले हैं।
मग़्लूब है जो होंगे ग़ालिब, महकूम हैं जो होंगे हाकिम।
कब एक-सा वक़्त रहा किसका, कुदरत के तौर निराले हैं।।
आज़ादी के मतवालों ने, वह मंत्र चलाया है 'बिस्मिल'।
लर्ज़ा है जिससे अर्शे-समां, सरकार को जान के लाले हैं।।

वीर-गर्जना

भारत के शेरों जागो, बदला है अब ज़माना।
प्यारे वतन को यारो! आज़ाद है कराना।।
मत बुज़दिलों को हरगिज़ तुम पास दो फटकने।
आख़िर तो दम अदम को होगा कभी रवाना।।
देवी स्वतंत्रता के जल्दी बनो उपासक,
निज पूर्वजों का तुमको गर नाम है चलाना।।
परदेशियों का इस दम जो साथ दे रहे हैं,
उनको हराम है अब भारत का अन्न खाना।
माता की कोख नाहक़ करते हो तुम कलंकित,
वालण्टियर बनो तुम अब छोड़ दो बहाना।।
दिल में झिझक न लाओ, आगे क़दम बढ़ाओ,
है स्वर्ग के बराबर इस वक़्त जेलखाना।
'बिस्मिल' यही समय है अब कर लो देश-सेवा,
दो दिन की ज़िन्दगी है, इसका नहीं ठिकाना।।

देशभक्त की गर्जना

तेरी इस जुल्म की हस्ती को ऐ जालिम! मिटा देंगे,

जुबां से जो निकालेंगे वो हम करके दिखा देंगे।
हमारे सामने सख्ती है क्या इन जेलखानों की,
वतन के वास्ते सूली पे हम चढ़कर दिखा देंगे।
हमारी फ़ाकामस्ती एक दिन तो रंग लायेगी,
निशां तेरा मिटा देंगे तुझे जब बद्दुआ देंगे।
कुछ इसमें राज़ था मुद्दत से जो खामोश बैठे थे,
हम अब करने पे आये हैं तो कुछ करके दिखा देंगे।
अगर कुछ भेंट आज़ादी की देवी हमसे मांगेगी,
समझकर सब जहे-किस्मत हम अपना सर चढ़ा देंगे।
भड़क उट्ठेगी जिस दम सीना-ए-सोजां से खुद आतिश
तो हम इन सर्द-आहों से तुझे ज़ालिम जला देंगे।
हमारे आहो-नाले को मियां! बेसूद मत समझो,
जो हम रोने पर पे आयेंगे तो इक दरिया बहा देंगे।
हज़ारों देशभक्त अब क़ौम पर क़ुर्बान हैं'बिस्मिल'
हम उनके वास्ते सब मालो-ज़र अपना लुटा देंगे।

नोटः- *यह ग़ज़ल रामप्रसाद बिस्मिल ने भरी अदालत में स्पेशल मैजिस्ट्रेट अईनुद्दीन को सम्बोधित करके सुनायी थी। मियां! शब्द का सम्बोधन उन्हीं के लिए किया है।*

आहे-सर्द

कहूं क्यूंकर जुबां तो बन्द है सय्याद के डर से।
टपकती दास्तां मेरी है मेरे दीद-ए-तर से।।
जुबां खोली ही थी गुलशन में, बस सय्याद आ पहुंचा;
तमन्ना दिल की दिल में रह गई मेरे मुकद्दर से।
सुना है बाग़बां सय्याद में कुछ हो गई अनबन,
हवा बदली है शायद हो रिहाई अब सितमगर से।।
हैं काटे बालो-पर सारे, फंसा कर जाल में पहले;
क़फ़स है और मैं हूं कर दिया बेघर मुझे घर से।
ज़माने की यह नैरंगी, नहीं कुछ कर दिखाती है,
जो कल गुलशन का मालिक था, वो आज इक फूल को तरसे।।

रिहा करने के वादे सैकड़ों और फिर मुकर जाना,
ये मज़्लूमों की आहें, टल नहीं सकतीं तेरे दर से।
तुलू होने लगा सूरज है मश्रिक़ में, इधर कलियां,
चटकती हैं, खिलेंगे गुंचे गुलशन में नए सर से।।
नए पौधे उगें, शाखें फले-फूलें सभी 'बिस्मिल'
घटा से प्रेम का अमृत अगर बरसे तो यूं बरसे।।

हिन्दोस्तां मेरा (1)

ज़मीं मेरी वही है, पर नहीं है आस्मां मेरा,
बिरादर तक जुदा हैं आज, कल था कुल जहां मेरा।
ज़रा हुशियार रहना इससे ऐ चर्ख़े-सितमपेशा,
क़यामत है खुदा का क़हर है सोज़े-निहां मेरा।
किसी को क्या अगर मैं हाले-ग़म कहता हूं कहने दें,
है दिल मेरा, बयां मेरा, जुबां मेरी, दहां मेरा।
गुलो-नसरीनो-सुम्बुल की जगह अब खाक़ उड़ती है,
उजाड़ा हाय! किस बेदर्द ने यूं बोस्तां मेरा।
भलाई है वतन की गर तो अपनी भी भलाई है,
जुदा उससे कभी मुमकिन नहीं सूदो-ज़ियां मेरा।
ज़माने की है नैरंगी अब तहतस्सरा में है,
कभी अर्शे-मुअल्ला पर, अज़ीज़ो! था मकां मेरा।
दिलेरी में कभी था पास, अब भी जिसका जी चाहे,
करे आहो-फुग़ां में, दर्दो-ग़म में इम्तिहां मेरा।

हिन्दोतां मेरा (2)

पसे-मुर्दन भी होगा हश्र में यूं ही बयां मेरा।
मैं इस भारत की मिट्टी हूं, है ये हिन्दोस्तां मेरा।।
गुज़रती है जो दिल पर माजरा उसका कहूं किससे।
बजुज़ ज़ाते-खुदा के कौन है अब राज़दां मेरा।।
तबाही जिसकी क़िस्मत में लिखी बर्क़े-हसद से थी।
उसी गुलशन की शाख़ें-खुश्क पर है आशियां मेरा।।

न दिल में दर्द है उसका न दो आंसू हैं आंखों में।
भला किस मुंह से कहते हो कि है हिन्दोस्तां मेरा।।
वतन की रूह भी अब कांप उठती है यह कहने से।
मैं इस उजड़े हुए भारत के इक खंडहर का ज़र्रा हूं।
यही मेरा पता यारो! यही नामो-निशां मेरा।।
ख़िज़ां के हाथ मुरझाए हैं जिस गुलशन के ये पौधे।
मैं उस गुलशन की बुलबुल हूं, वही है गुलिस्तां मेरा।।
ये कल को मिट गया 'बिस्मिल' तो क्या मुंह ले के जाओगे।
खुदा के पास कहने को कि है हिन्दोस्तां मेरा।

आहे-सर्द (2)

ऐ सबा! क्यों बू-ए-जाना इस तरफ़ लाती नहीं,
कुछ वफ़ादारी के जौहर मुझको दिखलाती नहीं।
मर गये उल्फ़त में लाखों क़ैस मजनूं की तरह,
ऐ खुदा! बतला कि क्यों मेरी क़ज़ा आती नहीं।
इन्तज़ारी है किसी की या तुझे है ख़ौफ़े-हश्र,
जान है मेरी लबों पर क्यों निकल जाती नहीं।
दिल छुटा दिलबर छुटा 'बिस्मिल' ज़माना छुट गया,
वक़्ते-बद का कोई भी अब दोस्त या साथी नहीं।

जुबां तलवार की

बद्दुआ जालिम न ले तू बेकसो-लाचार की,
तुझको खा जायेगी आहे-बेकसो-ग़मख़्वार की।
हमसे ज़ांबाज़ों को करना क़त्ल क्या कुछ खेल है,
धार खुण्डा पड़ गयी जालिम तेरी तलवार की।
दम तेरा भरते थे जो अब वो भी बरगश्ता हुए,
खुल गयी सारी हकीकत जब से तेरे प्यार की।
हर किसी नाकस की गर्दन पर इसे रखना न था,
अपने हाथों खोयी इज्जत तुमने खुद तलवार की।
बेकसों के खून से रंगना इसे अच्छा नहीं,

रोजें-महशर खून उगलेगी जुबां तलवार की।
कर रिहा पीछा छुड़ा लो वरना फिर पछताओगे,
खैर पड़ जायेगी तुमको मांगनी फिर जान की।

वीरां चमन हो जायेगा

ग़र न कोई गुल खिला वीरां चमन हो जायेगा
पाक दामन खून से काला कफ़न हो जायेगा
हिन्द के गुलशन को सींचा ग़र जो अपने खून से
ग़म नहीं कुछ जो मेरा छलनी बदन हो जायेगा
शान इंग्लिस्तान की क़ायम न होगी जुल्म से
लाल छींटों से तेरा मैला वसन हो जायेगा
क़त्ल ग़र पौदें न उनके जुल्म से ख़ंजर से हों
चन्द रोज़ों में वतन बाग़े-अदन हो जायेगा
आबरू आख़िर मिलेगी इस ज़माने में उसे
केसरी बाने में जो शैदा-वतन हो जायगा
ग़र हुए 'बिस्मिल' फ़ना अपने वतन के वास्ते
शक नहीं इस कश्मश में फिर अमन हो जाएगा

तराना-ए-बिस्मिल

बाग़ से सर-सर का झोंका आशियाना ले गया
अन्दलीबों को क़फ़स में आबो-दाना ले गया
कुछ गुलो-गुल्चीं का शिकवा बुलबुले-भारत ने कर
तुझको पिंजरे में तेरा यह चहचहाना ले गया
कौन कहता है ज़बर्दस्ती से हम पकड़े गये
जेल में खुद हमको शौक़े-जेलखाना ले गया
क्यों घटा इद्बार की छाये न अह्ले-हिन्द पर
खींच कर योरोप सब मालो-ख़ज़ाना ले गया
देशभक्तों को सज़ा देनी उसें मन्जूर थी
ज़ाहिरा करके बग़ावत का बहाना ले गया
पूछते हो क्या ज़मींदारों की दौलत क्या हुई

कुछ वकील औ कुछ नशा कुछ मालियाना ले गया
शूमिए-क़िस्मत से इक दाने को हम तरसा किये
झोलियां भर कर बगरना कुल ज़माना ले गया
भूख से क्यों कर न तड़पें हिन्द के बच्चे यहां
लूट कर 'बिस्मिल' फ़िरंगी दाना-दाना ले गया

मए-ख़ूबी

तू वो मए-ख़ूबी है, ऐ जल्वए-जानाना;
हर गुल है तेरा बुलबुल, हर शम्अ है परवाना।।
सर मस्ती में भी अपना, साक़ी के क़दम पर हो;
इतना तो काम करना, ऐ लग्ज़िशे-मस्ताना।।
आंखें हैं तो उसकी हैं, क़िस्मत है तो उसकी है;
जिसने तुझे देखा है, ऐ जल्वए-जानाना।।
छेड़ो न फ़रिश्तो तुम, ज़िक्रे-ग़मे-जानाना
क्यों याद दिलाते हो, भूला हुआ अफ़साना।।
ये चश्मे-हक़ीक़ी भी, क्या तेरे सिवा देखें;
सिजदे से हमें मतलब, काबा हो या बुतख़ाना।।
साक़ी को दिखा देंगे, अन्दाज़-फ़क़ीराना;
फूटी हुई बोतल है, टूटा हुआ पैमाना।
बिस्मिल' इन्हीं हाथों से, पीते रहें मस्ताना;
या रब! वही साक़ी हो, या रब! वही पैमाना।।

गोरों को फटकार

अपने मतलब में ये गोरे किस क़दर हुशियार हैं,
हिक्मते-अमली के मानों ये ही ठेकेदार हैं।।
धोखा देने में न चूकेंगे ये अपने बाप से,
बेवफ़ा, बज्जत, फ़रेबी, झूठे औ' मक्क़ार हैं।
वक़्त जब इन पर पड़ा तब गिड़गिड़ा कर ये कहा,
जां बचाओ हिन्दियों! हम मुफ़्लिस-औ' लाचार हैं।।
और जब गुज़री मुसीबत तब ये कहते हैं, हरीफ़,

सब के सब ये हिन्द वाले बाग़ी औ' ग़द्दार हैं।।
क्या किया है आपने अब तक हमारे वास्ते,
जिससे हम समझें हमारे आप ही ग़मख़्वार है।।
कितनों को रोटी दुवक़्ता मिलती है भर कर के पेट,
कितने तालिमयाफ़्ता ह्यां पर सरे-रुज़्गार है?
कहते हैं क़ाबिल नहीं हो तुम हुकूमत के अभी,
क्योंकि हिन्दू और मुस्लिम बानि-ए-तकरार हैं।।
क्या ग़रज तुमको ज़नाबे-खाह! हम कुछ भी करें,
क़िस्से-क़ज़ियों के हमारे आप जुम्मेवार हैं।।
मेहरबां! तशरीफ़ ले जाओ यहां से जल्द अब
आपके हीनो-हवाले, सब के सब बेकार हैं।।
कह रहा 'बिस्मिल' यकीं करना ही इन पर छोड़ दो,
क्योंकि ये सब ललमुंहे बन्दर बड़े बदकार हैं।।

आप बीती

उरियानी न हैरानी न थे पांवों में छाले,
हम भी ये कभी आह! बड़े नाज़ों के पाले।
जुल खाया मिटे उड़ गयी आज़ादी ओ राहत,
अल्लाह! ये दिन अपने भी दुश्मन पे न डाले।
मारा है मिटाया है हमें आह! उन्होंने,
बैठे थे किये जानो-जिगर जिनके हवाले।
हमने तो हमेशा ही तेरी खुश्नुदी चाही,
खुद बिगड़े मगर काम तेरे सारे सम्हाले।
उसका ये सिला हमको मिला उफ़ री मुहब्बत,
बर्बाद किया डाल दिये जान के लाले।
बेबस हुई जलील हुए मिट तो चुके हम,
अब और कयामत भी जो ढाना हो सो ढाले।
सौगन्ध है तुझको तेरे उस जोरो-ज़फ़ा की,
जी भर के हमें जितना सताना हो सता ले।
किस्मत का कभी अपनी भी चमकेगा सितारा,

हम भी कभी देखेंगे आज़ादी के उजाले।
बदलेगी लहर तब तेरे सिर चढ़ के कहेगी,
था जहर पे केचुल से थे लाचार थे काले।

खूने-जिगर से लाल करते हैं

मुसीबत आ! तेरा हम दिल से इस्तिक़्बाल करते हैं,
शऐ-शमशीर सीना और ज़िगर को ढाल करते हैं।
खबर्दार! अह्ले-हिन्दोस्तां को जनती है वही सब्ज़ा,
जलाकर दस्त से जिस घास को पामाल करते हैं।
जो हम गाढ़े पसीने की कमाई दें तो क्या ग़म है,
यहां के जानवर तक नज़्र अपनी खाल करते हैं।
खुदा की मेहरबानी जानते हैं हिन्द के मुफ़्लिस,
सलूक इनसे जो आये-दिन बबा-ओ-काल करते हैं।
कोई और इस तरह क्या फाग खेलेगा लंगोटी में,
बिलायत को तुबंगर हिन्द के कंगाल करते हैं।
है मौसम फाग का खेलेंगे अब 'बिस्मिल' इसी से हम,
जमीने-हिन्द को खूने-जिगर से लाल करते हैं।

दिल के अरमान

पूछते हो क्या कि क्या अरमां हमारे दिल में हैं,
कुछ वतन की याद में आहें-दमे-बिस्मिल में हैं।
साकिनाने-बाग़े-आलम सब रिहायी पा चुके,
यह हमीं आफ़त के मारे क़ैद की मुश्किल में हैं।
देश वालों! दामने-हिम्मत कभी छोड़ी नहीं,
इम्तहाने-इश्क की हम पहली ही मंजिल में हैं।
आ ही पहुंचेगी किनारे हिन्द की कश्ती कभी,
कोई दम में देखना हम दामने-साहिल में है।

मुर्ग़े-दिल!

मुर्ग़े-दिल! मत रो यहॉ ऑसू बहाना है मना
अंदलीबों को क़फ़स में चहचहाना है मना

हाय जल्लादी तो देखो कह रहा जल्लाद यह
वक़्ते-ज़िबहा बुलबुलों को फड़फड़ाना है मना
वक़्ते-ज़िबह् जानवर तक को पिलाते हैं मगर
हज़रते-इन्सान को पानी पिलाना है मना
मेरे खूं से हाथ रंग कर बोले क्या अच्छा है रंग
पर हमें ताउम्र अब मरहम लगाना है मना
ऐ मेरे ज़ख़्मे-जिगर नासूर बनना है तो बन
क्या करूं इस ज़ख़्म पर कुछ भी लगाना है मना
खूने-दिल पीते हैं 'बिस्मिल' खाते हैं लख़्ते-जिगर
इस क़फ़स में कैदियों को आबो-दाना है मना

जब प्राण तन से निकलें

जगदीश! यह विनय है, जब प्राण तन से निकलें
'प्रिय देश! देश!' रटते, यह प्राण तन से निकलें
भारत वसुन्धरा पर, सुख-शान्ति-संयुता पर
शुचि शस्य-श्यामला पर यह प्राण तन से निकलें
देशाभिमान धरते, जातीय गान करते
निज बन्धु-व्याधि हरते, यह प्राण तन से निकलें
भारत का चित्रपट हो, युग नेत्र के निकट हो
श्री जाह्नवी का तट हो, तब प्राण तन से निकलें
दुख-दैत्य पर विजय हो, अज्ञान-रात्रि क्षय हो,
भारत समृद्धिमय हो, तब प्राण तन से निकलें
उद्योग शांति सुख हो, आलस्य हो न दुख हो
सबका प्रसन्न मुख हो, तब प्राण तन से निकलें
संकट न दुःख-भय हो, सर्वत्र ही विजय हो
ऐसा सुकाल जब हो, तब प्राण तन से निकलें
सब ही सतत सबल हों, विद्या-कला-कुशल हों
कर्त्तव्य पर अटल हों, तब प्राण तन से निकलें

देशोपकार करते, मन मातृ-भक्ति भरते
जय-जय स्वदेश रटते, यह प्राण तन से निकलें

ईश्वर-विनय

ईश्वर! दया हो हम पर, अब वल्वला नहीं है
दुख और जो उठावें, वह दम रहा नहीं है
बरसें हज़ारों बीतीं दुख सहते सहते हमको
क्या भाग्य में हमारे, अब सुख बदा नहीं है
हम गिर गए हैं इतने, हस्ती मिटी हमारी
पर हाथ क्यों दया का, अब तक उठा नहीं है
तुमने हमें बिसारा हे नाथ! क्या किया यह
हमने तो तुमको अब तक, दिल से तजा नहीं है
भूमी रही न अपनी न ये राज्य ही रहा है
पल्ले हमारे अब तो, कुछ भी रहा नहीं है
करते थे राज हम ही संसार-भर में इक दिन
आधीन दूसरों के, कोई रहा नहीं है
इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, स्पेन जर्मनी सब
आधीनता में पर की, कोई फंसा नहीं है
जापान, चीन, फारस, तुर्की, अमेरिका में
स्वच्छन्द वायु सदियों से, खूब बह रही है
इक रूस के निवासी दुख और पा रहे थे
स्वाधीनता की देवी अपना उन्हें रही है
क्या भाग्य में हमारे ही थी बदी गुलामी
सदियों से जन्मभूमी, जो दुख उठा रही है
परमेश! तुमने हमको ऐसा भुला दिया क्यों
कुरुक्षेत्र की प्रतिज्ञा, क्या याद अब नहीं है
बन्दी दुखी जनों का उद्धार आप करने
जन्मे थे जेल में ही, क्या ध्यान ही नहीं है
अन्याय कंस का प्रभु! तुमने ही था मिटाया
रावण को तुमने छोड़ा, लंका में भी नहीं है
अब देश की दशा फिर उससे अधिक है बिगड़ी

बल, बुद्धि, विद्या, लक्ष्मी कुछ भी रहा नहीं है
अतएव हे दयामय! सत्वर दया दिखाओ
अब और देरी करनी, 'बिस्मिल' उचित नहीं है

पूज्य मातृ-भू!

अपवर्ग से अनोखी मनमोहिनी छटाएं,
सुख-साज स्वर्ग का भी पाकर न भूल पाएं।।
हो पूज्य मातृ-भू की मन में पड़ी मड़ैया,
रमती रहे रंगों में निज रीति ओ 'रवैया'।।
तड़पें हवेलियों में टूटी कुटी गंवा के,
भूलें न दृश्य तेरी प्रिय पावनी प्रभा के।।
घर द्वार वृक्ष बाग़ों सरिता सरोवरों में,
भूला रहे हृदय यह उन आंगनों घरों में।।
जिनमें रहे बसे हैं, घुटनों जहां चले हैं,
शिशु से किशोर होकर जिसमें बढ़े पले हैं।।
मुट्ठी में ले के जिसकी रज चाटते रहे हैं,
हो लोट-पोट जिसमें दिन काटते रहे हैं।।
मलयानिली हवा के झोंके न चाहते हैं,
जिसमें जिए उसी को सुख-स्त्रोत मानते हैं।।
वे झील ताल गड्ढे मन में समा रहे हैं,
सम्मान मान सर का अतिशय बढ़ा रहे हैं।।
गल जायं हिम में चाहे उत्तप्त ताप से हों,
भगवान! किन्तु न्यारे मत भूमि-मात से हों।।
कल्याण-कारिणी है विस्तारिणी वही है,
सुखदायिनी सुवासी संसार में वही है।।
हैं वज्र के हृदय जो उसके लिए न तरसें,
वे नयन ही नहीं जो उसके लिए न बरसें।।
पाई हुई प्रतिष्ठा उस 'राम' ने गंवाई,
ले जन्म, जन्म-भू से जिसने न लौ लगाई।।

भारत-दुदर्शा

उजड़ा हुआ पड़ा है, सब गुलिस्ताने-भारत;

बरबार हो चुका है, जन्नत-निशाने-भारत।
पहले के बाक़ये सब, अब हो चुके फ़साने;
जाती रही यकायक, वह आने-बाने भारत।
हैं बुलबुलें क़फ़स में, सय्याद हंस रहा है;
गर्दिश में आ गया है, फिर आशियाने-भारत।
भारत की हाय! कश्ती गिर्दाब में फंसी है;
किस नींद सो रहे हो, अय कश्तीबाने-भारत।
उठ बैठो नौजवानों! अब तो इसे बचा लो;
कुछ-कुछ अभी है बाकी, नामो-निशाने-भारत।
मालूम है तुम्हें कुछ, रोज़े-अज़ल से सबके;
उस्ताद रहते आये हैं आलिमाने-भारत।
पर आज अपनी हालत, अब है रहम के क़ाबिल;
वह्शी कहा रहे हैं, बाशिंदगाने-भारत।
गर तुमको है मुहब्बत, इस गुलशने-वतन से;
तो अह्द दिल से कर लो, ऐ बुलबुलाने-भारत।
जब तक कि दम में दम है, हमदम बने रहेंगे;
यह सर नज़र है इसकी, यह जां है जाने-भारत।
'बिस्मिल' हमारा रुतबा, फिर कुल जहां में होगा;
मिलजुल के चल पड़ेगा, जब कारवाने-भारत।

शौक से मरना सीखो

देश के वास्ते कुछ काम भी करना सीखो,
तुमको मरना नहीं आता अभी मरना सीखो।
हर तरफ़ मुफ़्त में बेकार भटकते क्यों हो,
पांव मंज़िल की तरफ़ दौड़ के धरना सीखो।
डरते हो ख़ंजरे-क़ातिल से ये किस दिन के लिये,
तुम जो 'बिस्मिल' हो तो फिर शौक़ से मरना सीखो।।

फ़क़ीरों की फेरी

यदि तुझे देश की चिंता है तो हिन्दू जाति जगा बाबा,

यह ऊंच-नीच के भेद-भाव का घर से भूत भगा बाबा।
फंस दया-अहिंसा फंदे में हो गये हीजड़े ये पक्के,
कुछ जगे जोश मर्दों वाला अब ऐसा ज़ोर लगा बाबा।
बाईस कोटि हैं तो भी ये मर रहे मौत कुत्तों जैसी,
इस जग में नहीं रहा कोई इनका मां-बाप सगा बाबा।
'बिस्मिल' तू इन्हें सिखा गीता या भूषण जैसी कविताई,
लचका-लचका कर कमर चकाचक गन्दे गीत न गा बाबा।

शहीद-गर्जना

भारत न रह सकेगा, हरगिज़ गुलामखाना,
आजाद होगा होगा, आता है वह जमाना।
खूं खौलने लगा है, हिन्दोस्तानियों का,
कर देंगे जालिमों का, हम बन्द जुल्म ढाना।
क़ौमी तिरंगे झण्डे, पर जां निसार अपनी,
हिन्दू-मुसल्मां मिलकर, गाते हैं यह तराना।
अब भेड़ और बकरी, बनकर न हम रहेंगे,
इस पस्त-हिम्मती का, होगा नहीं ठिकाना।
परवाहा अब किसे है, जेल-ओ-दमन की यारो,
यक खेल हो रहा है, फॉसी पे झूल जाना।
भारत वतन हमारा, 'बिस्मिल' हम इसके बच्चे,
माता के वास्ते है, मन्जूर सर कटाना।

धर्म-हित मरना

जो मरता धर्म-हित समझो वो मरकर भी नहीं मरता,
अमरता उसको मिलती है जो मरने से नहीं डरता।।
है नश्वर देह, सब कहते हैं, मर जावें तो अचरज क्या,
सदा मरने में हमको चाहिए दिखलाना तत्परता।
नहीं जेलों से भय खाना, नहीं फॉसी से घबराना,
नहीं आत्मा पे है इनका ज़रा-सा भी असर पड़ता।
समर में कट के मर जाना भला शय्या पे मरने से,

वो मरकर स्वर्ग को जाता ये मरकर नरक में सड़ता।
निराशा मन में लाना है तेरे 'बिस्मिल' की कायरता,
उसे ही सिद्धि मिलती है जो भय का सामना करता।

मेरी भावना

न चाहूं मान दुनिया में, न चाहूं स्वर्ग को जाना,
मुझे वर दे यही माता, रहूं भारत पे दीवाना।
करूं मैं देश की सेवा, पड़े चाहे करोड़ों दुख,
अगर फिर जन्म लूं आकर तो हो भारत में ही आना।
मुझे हो प्रेम हिन्दी से, पढ़ूं हिन्दी लिखूं हिन्दी,
चलन हिन्दी चलूं, हिन्दी पहनाना ओढ़ना खाना।
रहे मेरे भवन में रोशनी हिन्दी चिराग़ों की,
स्वदेशी ही रहे बाजा बजाना राग का गाना।
लगें इस देश के ही अर्थ मेरे धर्म, विद्या, धन,
करूं मैं प्राण तक अर्पण, यही है सत्य प्रण ठाना।
सम्हल कर लो पहन भारत-बदन पर भक्ति का चोला,
चढ़ा लो प्रेम की रंगत, दुई का त्याग कर बाना।
नहीं कुछ भी असम्भव है जो चाहो दिल से तुम 'बिस्मिल'
उठा लो देश हाथों पर, न समझो अपना बेगाना।

फ़र्यादे-बुलबुल (2)

आता है याद हमको, गुजरा हुआ जमारा,
वह झाड़ियां चमन की, वह मेरा आशियाना।।
वह सबके साथ उड़ना, वह सैर आस्मां की,
वह बाग की बहारें, वह सबका मिलके गाना।।
पत्तों की टहनियों पर, वह झूमना खुशी से,
ठण्डी हवा के पीछे वह तालियां बजाना।।
लगती है चोट दिल पर, आता है याद जिस दम,
शबनम का सुबह आकर, फूलों का मुंह धुलाना।।
वह प्यारी-प्यारी सूरत, वह मोहनी-सी मूरत,

आवाद जिसके दम से, था मेरा आशियाना।।
आज़ादियां कहां वो, अब अपने घोंसले की,
अपनी खुशी से आना, अपनी खुशी से जाना।।
तड़पा रही है मुझको, रह रहके याद घर की,
तक़दीर में लिखा था, पिंजड़े का आबोदाना।।
'बिस्मिल' न रह सकेगा, भारत गुलामख़ाना,
आज़ाद होगा होगा, आता है वह ज़माना।।
इस क़ैद का इलाही! दुखड़ा किसे सुनाऊं।
डर है कहीं क़फ़स में घुट-घुटके मर न जाऊं।।
जी चाहता है मेरा उठकर चमन में जाऊं,
आज़ाद होके घूमूं और शेर होके गाऊं।
बेरी की शाख पर हो फिर इस तरह बसेरा,
उस उजड़े घोंसले को फिर जाके मैं बसाऊं।
चुगता फिरूं चमन में दाने जरा-जरा से,
साथ हैं जो पुराने, उनसे मिलूं मिलाऊं।।

शहीदों का सन्देश

दिन खून का हमारे यारो! न भूल जाना;
खुशियों में अपनी हम पर आंसू बहाते जाना।।
सय्याद ने हमारे चुन-चुन के फूल तोड़े;
वीरान इस चमन में अब गुल खिलाते जाना।।
गोली को खाके सोये जलियान-बाग में हम;
सूने मज़ारों पर तुम दीये जलाते जाना।।
हिन्दू औ मुस्लिमों की होती है आज होली;
खूं में हमारे अपना दामन भिगोते जाना।।
कुछ क़ैद में पड़े हैं कुछ कब्र में गड़े हैं;
'बिस्मिल' दो फूल इन पर प्यारे चढ़ाते जाना।।

चिंगारियां

होना तो भयभीत मृत्यु से कायरता है दुख है,

हंसकर चढ़ना बलि-वेदी पर निर्भयता है सुख है।
क्यों होते भयभीत मुत्यु से, आत्मा अजर अमर है,
बलि-वेदी पर चढ़ो वीर! जयमाल तुम्हारे सर है।
शिवा प्रताप समान देश पर शीश-प्रसून चढ़ा दो,
स्वतंत्रता के अमर शहीदों में निज नाम लिखा दो।
प्राणों से इतनी ममता फिर स्वतंत्रता का सौदा,
बिना तेल के दीप जलाने का यह कठिन मसौदा।
मोती बिखेरती बीतेंगी जलती जीवन-घड़ियां।
दुनिया में जीने का सबसे सुन्दर मधुर तक़ाज़ा,
ऐ 'बिस्मिल' उठने दे अपना फूलों भरा जनाज़ा।

तसल्ली भरा ख़त

कैसा दस्तूर है, जिसको नहीं जाना कोई,
जान भी खोता है ग़म से कहीं दाना कोई।
यूं कहा जाना कि, जंगल में है मंगल मुझको,
मेरा ज़ानिब से कभी, रंज न लाना कोई।
जी भरे रखना पिताजी का सभी मिल जुलकर,
पोंछना आंसू कोई, सब्र दिलाना कोई।
कोई समझाना कोई, दिल को लगाने के लिये,
पिछले इतिहास को, पढ़-पढ़ के सुनाना कोई।
मैं करीब आपके, क़दमों से बज़ाहिर हूं दूर,
दिल के आईने में, सूरत तो दिखाना कोई।
जाते हैं चौदह बरस, चुटकी बजाते कहना,
'राम' आ मिलते हैं, आंसू न बहाना कोई।
आयें जब भाई भरत, मेरी तरफ से कहना,
राज पाकर न कभी, नीति भुलाना कोई।
जब तलक लौटूं, पिता-माताजी को खुश रखना,
प्यारी परजा का कभी, दिल न दुखना कोई।

मेरी प्रतिज्ञा

निभाऊंगा प्रतिज्ञा मैं ये अपने प्राण के प्रण से,
उठेंगी देश-सेवा की उमंगें देह से मन से।
मरण उपरांत भी यदि जन्म लूं तो लूं यहीं आकर,
कि जिससे देश-सेवा हो नए तन से नए पन से।
नहीं कोई सहायक है, मेरे भाई ही दुश्मन हैं,
नहीं चिन्ता मुझे इसकी जो मैं हूं हीन भी धन से।
मेरा यह देश ईश्वर है, पिता-माता है सब कुछ है,
इसी ने प्यार से पाला मुझे दुख सहके बचपन से।
ये मेरे पांव भारत के लिए कर्मों में तत्पर हों,
ये मेरे हाथ भारत का करेंगे त्राण दुश्मन से।
ये मेरे चक्षु देखेंगे जयी-भारत के गौरव को,
जो पाएगा वो इक दिन मुक्त होकर अरि के बंधन से।
ये मेरे कान भारत का सुयश सुन-सुन के खुश होंगे,
मेरा मुख जग को भर देगा उसी के यश के गायन से।

समय की पुकार

भुलाकर संबलों को लो, पथिक वह दूर जा बैठा,
मगर तट पर पहुंच पतवार को नाविक भुला बैठा।
घने वन-पर्वतों को पार करने पर मिली मंज़िल,
मगर उसकी खुशी में बाग़बां खुद को मिटा बैठा।
शिखर के स्वार्थ ने हैं नींव के पाषाण भुलवाए,
समय की थपकियां पाकर हृदय के घाव अलसाए।
जला जब दीप सबने ज्योति की ही वन्दना गाई,
मटैले, दीप, जलते नेह, बाती की न सुधि आई।
पपीहे और चातक की गुहारों पर जलद बरसे,
मगर बरसात-भर उसकी पिपासा आह भर रोई।
मिली जब जय कहीं से ज्वार कुछ ऐसा उमड़ आया,
कि जिसने युद्ध की हर याद भी मन से मिटा धोई।
थपेड़ों में प्रलय के डूब-उतराकर मिला साहिल,
घटी उनके इरादों और सच के बीच की दूरी।

वतन खुशहाल हो, आज़ाद हो, आबाद हो, ऐसी,
तमन्ना, जिस किसी ने की, न जीते जी हुई पूरी।
बढ़ो उत्थान की ही आज जग में होड़ है साथी,
बढ़ो मंजिल नहीं ये राह का बस मोड़ है साथी,
धरा पर सत्य के, श्रम के नए अवतार पूजित हों,
शहीदों के हरेक सपने को सच-सच कर दिखाएं हम।
मिटा दें फूट को निर्माण के जय-घोष से 'बिस्मिल',
उसी सम्मान के आसन पे फिर मां को बिठाएं हम।

विनय

हे हरे! यह यातना अब तो सही जाती नहीं।
क्या दयामय! दुःख की सीमा कभी आती नहीं?
जन्म से अब तक जाने कष्ट हैं कितने सहे,
अब तो फटने से बचेगी यह कड़ी छाती नहीं।
देर करने से विरद की हानि होगी सर्वदा,
दीनबन्धु! दयालु! श्रुतियां क्या तुम्हें गाती नहीं?
हैं न तारे व्योम में तारे अधम जितने अहो!
क्यों दया हम पर तुम्हारी दृष्टि दिखलाती नहीं?
बस करो अब सब करो 'बिस्मिल' बहुत-कुछ हो चुकी,
यह कठिन क्रीड़ा तुम्हारी अब हमें भाती नहीं।

मातृभूमि-वियोग

हाय! जननी जन्मभूमी! छोड़कर जाते हैं हम,
वश नहीं चलता है रह-रह करके पछताते हैं हम।
स्वर्ग के सुख से भी ज़्यादा सुख मिला हमको यहां,
इसलिए तजते इसे हर बार शरमाते हैं हम।
ऐ नदी-नालो! दरख़्तो! पक्षियों! मेरा कसूर,
माफ़ करना जोड़कर कर तुमसे फ़रमाते हैं हम।
मातृभूमी! प्राण-प्यारी! दुख बहुत तुमको दिया,
कर क्षमा अपराध बारम्बार सिर नाते हैं हम।

कुछ भलाई भी न हम तुम सबकी खातिर कर सके,
हो गए बलिदान बस सन्तोष यूं पाते हैं हम
मां! तुझे इस जन्म में कुछ सुख न दे पाए कभी,
फिर जनम लेंगे यहीं यह कौल कर जाते हैं हम।
शीघ्र करके यत्न मेरे देश! फिर आकर तुझे,
दुश्मनों से छीन लेंगे, यह कसम खाते हैं हम।

ग़ज़ल

झूठ जो चीज है फिर उससे मुहब्बत कैसी
खाक हो जाये जो दम भर में वो सूरत कैसी!
रंग बदल जाय जो कुछ दिन में वो हालत कैसी!
जिन गुलों पर हो खिज़ां उनकी वो रंगत कैसी!
जो डुबादे सरे-मंझधार मुहब्बत कैसी!
चीज़ ग़ैरों की जो छीने तो वो कुव्वत कैसी!
जिसके परदे में मुसीबत हो वो राहत कैसी!
आखिरी वक़्त में दूरी हो तो कुर्बत कैसी!
दिल में परहेज़ की बू हो तो इनायत कैसी!
दिल कहीं और फंसा हो तो इबादत कैसी!
मेरा तेरा तो बखेड़ा है जहां में 'बिस्मिल',
मौत जब सर पे खड़ी हो तो सुकूनत कैसी!

दुःखानन्द

दुःख है प्यारा मुझे यह सुनके न होना नाशाद।
दुःख से खाना-ए-दिल जल्वये-हक से आबाद।
दुःख जो आ जाता है तो दुःख के बहाने से वहीं।
मुझको ऐ दोस्त! खुदा आता है रह-रह कर याद।।
ऐशो-इश्रत में भुला देता हूं दिल के हक को।
दुःख में याद आता है हक ताकि हूं दुःख से आजाद।।
दुःख न होता तो जमाने में फ़कत सुख होता।

हो गया होता जमाना भी कभी का बर्बाद।।
दुःख के पर्दे में निहां यार का जलवा देखा।।
दुःख में करता हूं मैं दिलदार से दो-दो फ़र्याद।।
मेरे हम में तेरा आना तो मुबारक अय दुःख।
चाह से देखता रहता हूं मैं तेरी उफ़्ताद।।

स्वदेशी-विस्तार

तन में वसन स्वदेशी, मन में लगन स्वदेशी
फिर से भवन-भवन में, विस्तार हो स्वदेशी।
सब हों स्वजन स्वदेशी, होवे चलन स्वदेशी,
मरते समय कफ़न भी, दरकार हो स्वदेशी।।
फूले फल चमन में, आनन्द औ अमन में,
कोयल कुहुक रही हो, किलकार हो स्वदेशी।
मस्जिद व मन्दिरों में, वन और कन्दरों में,
ऊंचे-बड़े घरों में, गुंजार हो स्वदेशी।।
हिन्दू हों या हों मुस्लिम, सिख हों या पारसी हों,
हर एक के गले का, गुलहार हो स्वदेशी।
है तन्त्र-मन्त्र जो कुछ, सब-कुछ यही स्वदेशी,
वीणा के तार से भी, झनकार हो स्वदेशी।
उमड़े दिलों में फिर से, गंगा बहे स्वदेशी,
माता व भगिनियों का, श्रृंगार हो स्वदेशी।
अरमान हों स्वदेशी, ईमान हो स्वदेशी,
व्यापार हो स्वदेशी, सरकार हो स्वदेशी।
कोरी चटक-मटक पर 'बिस्मिल' न धन लुटाएं,
फूल-फले ये भारत, गुलज़ार हो स्वदेशी।।

मातम

आओ आओ भाईयो! दिल खोलकर मातम करें
हम शहीदाने-वतन को बेक़सी का ग़म करें
साथ वालों ने खुशी से जान दे दी मुल्क पर
रह गये इस फ़िक्र में बैठे हुए क्या हम करें
राहे-हक़ में जो मरे जिन्दा हैं वे, ग़म उनका क्या
जीते-जी हम कर गये, जीने का अपने ग़म करें
मानने की जो न हो, वह बात क्योंकर मान लें
ग़ैर-मुमकिन है अदू के सामने सर ख़म करें
आप ही ख़िल्वत में काटें अपने भाई का गला
आप ही फिर बैठकर अहबाब में मातम करें
जब ये हालत ही हमारे मुल्क के इफ़्रात की
जुल्म ये अग़्यार के हम चश्म क्या पुरनम करें
रो लिये 'बिस्मिल' बहुत, अब रोने से होता है क्या
काम कुछ ऐसा करें अब आहो-नाला कम करें

विश्वास का अन्त

जुल्म हमसे नित नये अब तो सहे जाते नहीं
कब तलक हे दीनबन्धो! दिन वही आते नहीं
जिनको हम सर्वस्व समझे और सब-कुछ दे दिया
अब वही ज़ालिम बने, करते दया कुछ भी नहीं
गोरी चिट्टी शक्ल देखी और हम पागल हुए
दिल-जिगर सब दे दिया, समझे दग़ा कुछ भी नहीं,
थोड़े दिन ही बाद सारी अस्लियत खुलने लगी
वो तो ग़ैरों के हुए अब पास तक आते नहीं
जब बुलाते थे उन्हें हम बात करने के लिये
तब कहा करते यही हमको ज़रा फ़ुर्सत नहीं
ग़ैर से मिलकर हमारा नित गला घोंटा किये
हम लड़कपन जानकर कुछ ध्यान में लाये नहीं
हो चुके 'बिस्मिल' हमारी जान पर अब आ बनी
तब से समझे चाल है, विश्वास अब लाते नहीं

स्वदेशी-कथन

जिएं तो बदन पर स्वदेशी वसन हो।
मरें भी अगर तो स्वदेशी कफ़न हो।।

पराया सहारा है अपमान होना, ज़रूरी है निज शान का ध्यान होना। है वाजिब स्वदेशी पे कुर्बान होना, इसी से है सम्भव समुत्थान होना।।

लगन में स्वदेशी की हर मर्दो-जन हो
जिएं तो बदन पर स्वदेशी वसन हो।।

निछावर स्वदेशी पे कर मालो-ज़र दो, स्वदेशी से भारत का भंडार भर दो।

रहें चित्र से वह चकाचौंध कर दो, दिखा पूर्वजों के लहू का असर दो।।

स्वदेशी हो सज-धज, स्वदेशी चलन हो।
जिएं तो बदन पर स्वदेशी वसन हो।।

उठो कर्मवीरो! तुम्हें कौन भय है, स्वदेशी का संग्राम तो शान्तिमय है।

प्रथा पाप की पाप में आप लय है, विजय है, विजय है, तुम्हारी विजय है।।

स्वदेशी हो पूजन, स्वदेशी भजन हो।
जिएं तो बदन पर स्वदेशी वसन हो।।

करो प्रण कि आज़ाद होकर रहेंगे, जहां में या बरबाद होकर रहेंगे। सितमगर ही या शाद होकर रहेंगे, या हम शाहो-आबाद होकर रहेंगे।।

स्वदेशी हो 'बिस्मिल' स्वदेशी कथन हो।
जिएं तो बदन पर स्वदेशी वसन हो।।

लगन में स्वदेशी की हर मर्दो-ज़न हो, स्वदेशी हो सजधज स्वदेशी चलन हो।

स्वदेशी हो पूजन स्वदेशी भजन हो, मरें भी अगर तो स्वदेशी कफ़न हो।।

वीर-हृदय

देश का ख़ातिर मेरी दुनिया में यह ताबीर हो,
हाथ में हो हथकड़ी पैरों पड़ी ज़ंजीर हो
सर कटे फांसी मिले या कोई भी तद्बीर हो
पेट में ख़ंजर दुधारा या जिगर में तीर हो
आंख खातिर तीर हो, मिलती गले शम्शीर हो
मौत की रक्खी हुई आगे मेरे तस्वीर हो
मर के मेरी जान पर जह्मत बिला ताख़ीर हो
और गर्दन पर धरी जल्लाद ने शम्शीर हो
ख़ास कर मेरे लिये दोज़ख़ नया तामीर हो
अलग़रज जो कुछ हो मुम्किन वो मेरी तहक़ीर हो
हो भयानक से भयानक भी मेरा आख़ीर हो
देश की सेवा ही लेकिन इक मेरी तक़्सीर हो
इससे बढ़ कर और भी दुनिया में कुछ ताज़ीर हो
मन्जूर हो मन्जूर हो मन्जूर हो
मैं कहूंगा 'राम' अपने देश का शैदा हूं मैं
फिर करूंगा काम दुनिया में अगर पैदा हूं मैं

स्वतंत्रता का आह्वान

किया है हृदयासन तैयार, तुम्हारे आने भर की देर
अगर कुछ वाहन हो दरकार, खड़ा है साहस बनकर शेर
करेंगे सेवा हम सब दास, तुम्हें देंगे सब भांति सुवास
तुम्हारा लेकर नाम निराश, तोड़कर सारे बंधन-पाश
सत्य का झण्डा लेकर वीर, चलेंगे श्रीचरणों के साथ
पहन कर प्रभापूर्ण प्रिय चीर, देवि! अब आओ करो सनाथ
ज्ञान की धरी आरती साज, भारती करती है गुणगान
ध्यान-सर डूबा हुआ समाज, कमल पर पद है मधुप-समान
चढ़ाएंगे अक्षत ले शीश, करेंगे प्राणों का बलिदान
रहेगा देता जो जगदीश, करेंगे वह सब कुछ कुर्बान
चरण तब धोएंगे सस्नेह, डालकर सुदृढ़ प्रेम का पाथ

तुम्हारी ही होगी यह देह, देवि! अब आओ करो सनाथ
बहुत हम झेल चुके हैं कष्ट, तुम्हारे बिना बने पर-दास
हुए श्रीभ्रष्ट भाग्य के नष्ट, हो रहा पग-पग पर उपहास
यातना यम की नरक-निवास, नहीं क्या-क्या सह डाला हाय
घोर दारिद्रय कठिन उपवास, किन्तु मुंह से न निकाला हाय
करो अब दया देखकर दीन, बढ़ाओ मां करुणा का हाथ
बिना जल कैसे जीवै मीन, देवि! अब आओ करो सनाथ
जननि! प्रतिभा का करो प्रकाश, हृदय में भर दो वह उत्साह
करे जो निन्ध निराशा नाश और जिसमें हो प्रबल प्रवाह
बहा दे तन में जो नव रक्त, मिटा दे हृदयों की जो दाह
बना दे हमें तुम्हारा भक्त, निकलने दे न मूखों से आह
हिला दें हम वसुधा आकाश, गान कर-करके तब गुण-गाथ
और सब जगत कहे शाबाश! देवि! अब आओ करो सनाथ

आर्य-भू! क्यों है दुःखी?

आर्य-भू! तव शान्ति-जा रमणीयता वह है कहां?
क्यों म्लान है तेरा बदन, वह दीनता कैसी यहां?
क्या अग्निवर्षक धुंधकर ज्वालामुखी पर्वत फटा?
जिससे विकृत है आज, तेरी चारु नैसर्गिक छटा।
अथवा यहां भूकम्प ने है सर्वनाश किया अहो!
जिससे दबी तब दीन सन्तति, दुःख का कारण कहो।
क्या पड़ गया दुष्काल भारी या प्रलय-जल है वहां,
या युद्ध का है शोक छाया, प्लेग या पीड़क महा?
हे सदय पृच्छक! एक भी है बात इनमें से नहीं,
ज्वालामुखी, भूकम्प या जलपूर भी आया नहीं।
दुष्काल प्लेग-ज्वर महासंग्राम भयप्रद है नहीं,
अस्तित्व इनका दुःख इतना दे कभी सकता नहीं।
यह नित्य टकराता हुआ जल गिरि-नदी का शुद्ध है
सरवारि गंदला है इसी से क्योंकि वह अवरुद्ध है।
यह बात जन में, जाति में अरु देश में भी सत्य है,

जो अड़ गया वह सड़ गया, सिद्धान्त यह न असत्य है।
स्वाधीन जीवन के लिए चिर-शान्ति मानो काल है,
वह देह-मन-मस्तिष्क सब की बन्द करती चाल है।
ना स्थान है संसार में सालस्य सुप्तों का कहीं,
जो है सजग इस जगत में लड़ जीतता जीता वही।
हाय! जो तुम देखते हो आज यह दुखमय दशा,
उसका अखिल कारण यही है मैं बनी हूं परवशा।
मम बालको के पैर में है दासता-बेड़ी पड़ी,
है हाथ में उसके जड़ी निःशंकता की हथकड़ी।
रो नहीं सकते बिचारे, बोलना अपराध है,
मेरे यहां पर जन्म लेना आज पाप अगाध है।
गर्भ से ही दैन्य के संस्कार जिनको घेरते,
देखे नहीं वे पुत्र माता के दिनों को फेरते।
परेदेश के सब द्वार उनके हेतु बिलकुल बन्द हैं,
जा भी सकेंगे तो कुली बन, भाग्य उनके मन्द हैं।
यह भाग्य की विम्लानता मतिमन्द मुझको कर रही,
परवश्यता नैराश्यता में है मुझे ले जा रही।

फूल

फूल! तू व्यर्थ रह्यो क्यों फूल?
फूल! तू व्यर्थ रह्यो क्यों फूल?
हो मदान्ध निज निर्माता को गयो हृदय से भूल
रूप-रंग लखि करें चाह सब, कोउ लखे नहिं शूल
अन्त-समय पद-दलित होयगी निश्चय तेरी धूल
चलत समीर सुहावन जब लौं समय रहे अनुकूल
फूल! तू व्यर्थ रह्यो क्यों फूल?
फूल! तू व्यर्थ रह्यो क्यों फूल?
यौवन मद-मत्सर में काट्यो, पर-हित कियो न भूल
अम्ब कहां से मिल सकता है यदि बो दिये बबूल
नश्वर देह मिले माटी में होकर नष्ट समूल

प्यारे! घटत आयुक्षण पल-पल जय हरि मंगल मूल
फूल! तू व्यर्थ रह्यो क्यों फूल?
फूल! तू व्यर्थ रह्यो क्यों फूल?

बलिवेदी का सन्देश

नहीं लिया हथियार हाथ में, नहीं किया कोई प्रतिकार,
अत्याचार न होने देंगे, बस इतनी ही थी मनुहार।
सत्याग्रह के सैनिक थे ये सब, सहकर रहकर उपवास,
दास बन्दियों में स्वीकृत था हृदय-देश पर था विश्वास।।
मुरझा तन था, निश्छल मन था, जीवन ही केवल धन था
मुसलमान हिन्दूपन छोड़ा, बस निर्मल अपनापन था।
मंदिर में था चांद चमकता, मस्जिद में मुरली की तान,
मक्का हो चाहे वृन्दावन होते आपस में कुर्बान।।
सूखी रोटी दोनों खाते, पीते थे गंगा का जल,
मानो मल धोने को पाया, उसने अहा! उसी दिन बल।
गुरु गोविन्द! तुम्हारे बच्चे अब भी तन चुनवाते हैं,
पथ से विचलित न हों, अहा! गोली से मारे जाते हैं।।
गली-गली में अली! अली!! की गूंज मचाते हिल-मिलकर,
मारे जाते कर न उठाते, हृदय चढ़ाते खिल-खिलकर।
कहो! करें क्या? बैठे हैं हम, सुने मस्त आवाजों को,
धोते हैं रावी के जल से, हम इन ताजे घावों को।।
रामचन्द्र! मुखचन्द्र तुम्हारा, घातों से कब कुम्हलाया,
तुमको मारा नहीं वीर, अपने को उसने मरवाया।
जाओ जाओ प्रभु को पहुंचाओ स्वदेश-सन्देश,
गोली से मारे जाते हैं, भारतवासी हे सर्वेश।।

हकीकत के वचन

तुम प्रबल भय दिखला रहे इसका न मुझको ध्यान है,
मेरे हृदय में सर्वदा निज धर्म का ही मान है।
मै निज कठिन कर्त्तव्य-पथ से विमुख होने का नहीं,

आपत्तियां क्या दृढ़ हृदय को हैं हिला सकती कहीं?
अपनी भयानक मृत्यु का मुझको तनिक भी भय नहीं,
पर देखना संकट न आवे आपके ऊपर कहीं।
फांसी दिलाना, काटना सर, मारना आसान है,
पर हृदय पे अधिकार करना तनिक टेढ़ा काम है।
चाहे भले ही काट लो प्रत्येक अंग शरीर का,
विचलित कदापि न हो सकेगा मन हकीकत वीर का।
शतशः कृपाण-प्रहार तन पर एकदम यदि हो कहीं,
आनन्द से वही भी सहूंगा, धर्म छोड़ूंगा नहीं।
हे पूज्य गुरुवर! हे पिता! मन शांत अपना कीजिए,
कुछ भय न करके जाइए, घर धैर्य मां को दीजिए।
हां पूज्य जननी को सुनाना यह संदेशा तात का,
प्रिय जननि! दृढ़ विश्वास रखना मैं रहूंगा आपका।
प्रिय जाति के सम्मान हित निज प्राण देना धर्म है,
तन देश-वेदी पर चढ़ाना परम पावन कर्म है।
ये प्राण मेरे जायेंगे निज देश-सेवा के लिए
मैं त्यागता हूं देह, भावी विजय की आशा किए।
धिक्कार है वह जन्म जिससे जाति का कुछ हित न हो,
उस मृत्यु को धिक्कार है जो देश सेवा-हित हो।
जाति-सेवा लक्ष्य-च्युत सब कार्य को धिक्कार है,
निज देशप्रेम-विहीन मन, धिक्कार है! धिक्कार है!
मरता हकीकत एक है यदि आज अत्याचार से,
होंगे हकीकत सैकड़ों पैदा रुधिर की धार से।
उनके प्रबल उद्योग से उद्धार होगा देश का,
हां! नाश होगा उस समय दुख-शोक के लवलेश का।

मातृ-वन्दना

हे मातृभूमि! तेरे, चरणों में सिर नवाऊं,
मैं भक्ति भेंट अपनी, तेरी शरण में लाऊं।
माथे पे तू ही चन्दन, छाती पे तू हो माला,
जिह्वा पे गीत तू ही, तेरा ही नाम गाऊं।
जिससे सपूत उपजें, श्रीराम-कृष्ण जैसे,
उस धूल को मैं तेरी निज शीश पे चढ़ाऊं।
माई समुद्र जिसकी पदरज को नित्य धोकर,
करता प्रणाम तुझको, मैं वे चरण दबाऊं।
सेवा में तेरी माता! मैं भेदभाव तजकर;
वह पुण्य नाम तेरा, प्रतिदिन सुनूँ सुनाऊँ
तेरे ही काम आऊं, तेरा ही मन्त्र गाऊं,
मन और देह तुझ पर, बलिदान मैं चढ़ाऊं।

जीवित जोश

शक्ति का लुटता है सर्वस्व, होंगे हम उसके बटमार,
भक्ति का उठता है वर्चस्व, न होगा भारत मां के द्वार
व्यक्तियों के सिंहासन हिले, हिलाते नहीं हमारे हाथ
व्यक्ति के शूल स्वयं मिट चले, हमारा त्याग प्राण के साथ
आप से आप बिना सन्ताप बिना छल-पाप हटेंगे दोष
चरमता चंचलता की न हो, हृदय तुम में हो जीवित जोश!
अनय की अनुपम कुंजविहार छोड़ने लगे शुक्ल श्री कृष्ण
विनय-धन जीवित के उपहार सुदामा देते नहीं सतृष्ण
नहीं सब दूर रहे अक्रूर, जरासन्धों से उलझाा काम
बनेंगे विवश विश्व के लिए वीर रण छोड़ पलटकर नाम
न होगा इसका कारण कर्मरूप से पुण्य भूमि का तोष
परम परितोष पूर्ण निर्दोष करेगा जागृति जीवति जोश!
इधर से छूट रहे हैं बाण, हृदय हैं आदर से उस ओर
बचाओ यों न मिटाओ प्राण हाय है त्राण नरक की डोर

अकेले क्यों देते हो प्राण, बनेंगे ऐसे कई करोड़
बीज बोने की ही है देर, उपज में तो होती है होड़
देश का प्यारा पावस-काल, भरे भावों के सीकर-कोष
सींच बनमाली मानस-खेत, उगे जोरों से जीवित जोश!
हिन्द माता की दोनों आंख, नाक को रखकर बीचों-बीच
अश्रु को उज्जवल धारा छोड़, प्रेम का पौधा देंगे सींच
मुहम्मद पर सब-कुछ कुर्बान, मौत के हों तो हों मेहमान
कृष्ण की मुरली की सुन तान चलो, हों सब मिलकर बलिदान
करेंगे क्या यह वे जड़ जीव जिन्हें जननी-जायों पर रोष
तपस्वी रख सकते हैं टेक मिलाकर सादर जीवित जोश!
पधारों अकुला कर कह उठें, तनिक है देर हाय तू देर
विजय के भर के उज्जवल भाव विश्वमंण्डल को डाला घेर
पापियों पर तो होय प्रहार, चढ़ा दो अपने शुद्ध शरीर
हृदय-भाषण-कृति सब-कुछ एक, टेक के पक्के सच्चे वीर
आह के बदले निकले वाह, मुझे हो आने में सन्तोष
रचो बलिदानों के सोपान, लिखा हो जिन पर जीवित जोश!
देश के वन्दनीय वसुदेव कष्ट में लें न किसी की ओट
देवकी माताएं हों साथ, पदों पर जाऊंगा मैं लोट
जहां तुम मेरे हित तैयार सहोगे कर्कश अत्याचार
वहीं बस होगा मेरा वास गर्भ का सहचर कारागार
वर्ष टल गए महीने शेष, साधना साधो राखो होश,
उन्हीं हृदयों में लूंगा जन्म कहां हो निर्मल जीवति जोश!

फांसी की कल्पना

अमड़ आए आंखों में प्राण, श्वांस में आई अन्तिम वायु।
धूल में मिलने को अब चली, फूल-सम खिलकर मेरी आयु।।
यही था मन में मेरे भाव, बसूंगा मृत्यु-वधू के द्वार।
और निज रक्त-रंग से साज, शत्रु को दूंगा कुछ उपहार।।
वधिक, धिक! अधिक न कर अब देर, खींच तख़्ते को रस्स डार।
चलूं इस जीवन के उस पार, चखा दे मृत्यु-वधू का प्यार।।

मेरा जन्म

निज देश-सेवा हेतु मेरा जन्म है संसार में,
यह तुच्छ जन तत्पर सदा होगा स्वजाति-सुधार में।
विद्वेष-भावों को मिटाना मुख्य मेरा कर्म है,
जातीयता के भाव फैलाना प्रथम शुचि कर्म है।
मम शक्तियां होंगी सदा व्यय देशभक्ति-प्रचार में,
उद्देश्य होगा प्रेम फैलाना मनुज-परिवार में।
प्रिय देश सेवा-कार्य में ही प्राण मेरे जायेंगे,
मरते समय भी देश का उपकार कुछ कर जायेंगे,
मुझको निराश न कर सकेंगी विघ्न-बाधाएं कभी
आनन्दमय उद्योग-फल को वे बनाएंगी सभी।
जिस कार्य में बाधा न हो बस वह सरसताहीत है,
गुणवान बुद्धि-प्रयोग बिन निर्गुण-सदृश ही दीन है।
होगा हृदय में सर्वदा ही प्रेम भारत देश का ,
होगा प्रवाह शरीर में शुचि भक्ति के आवेश का।
अपने अपेक्षित कार्य में तत्पर रहूंगा मैं सदा,
उस देश सेवा कर्म में होगी सहायक आपदा।
है सान्सारिक सौख्य की मुझको कभी इच्छा नहीं,
उस वास्तविक सुख का न इसमें लेश मिलता है कहीं।
है किन्तु पूर्ण स्वदेश के उपकार की इच्छा मुझे,
आनन्द इसमें ही अनर्वचनीय है मिलता मुझे।
यदि देश सेवा-हित पड़े मरना सहस्त्रों बार भी,
तो भी न मैं इस क्लेश को निज ध्यान में लाऊं कभी।
हे ईश! भारतभूमि में शत बार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का देशापकारक कर्म हो।

मैनपुरी की प्रतिज्ञा

है देश को स्वाधीन करना ध्येय मम संसार में,
तत्पर रहूंगा मैं सदा अंग्रेज-दल संहार में।

अन्याय का बदला चुकाना मुख्य मेरा धर्म है,
मद-दलन अत्याचारियों का मम प्रथम शुचिकर्म है।
मेरी अनेकों भावनाएं उठ रहीं उर-धाम में,
अब शांत केवल कर सकूंगा मैं उन्हें संग्राम में।

स्वाधीनता का मूल्य बढ़कर है सभी संसार से,
बदला चुकेगा हरणकर्ता के रुधिर की धार से।
अंग्रेज-रुधिर-प्रवाह से निज पितृगण-तर्पण करूं,
अंग्रेज के सिर काटकर निज जननि को अर्पण करूं।

हो तुष्ट दुःशासन-रुधिर के स्नान से मॉ-द्रौपदी,
हो सहस्त्रबाहु-विनाश से यह रेणुका सुख में पगी।
हे कठिन अत्याचार का ऋण ब्रिटिश ने हमको दिया,
सह-ब्याज उसके ऋण का है कठिन प्रण हमने किया।

मैं अमर हूं मेरा कभी भी नाश हो सकता नहीं,
है देह तो नश्वर, न इसका त्राण हो सकता कहीं।
रहते हमारे मात जग में पददलित होगी नहीं,
रहते करोड़ों पुत्र क्या जननी दुखित होगी नहीं?

उद्धार हो जब देश का इस क्लेश-कारागार से,
भयभीत तब होंगे नहीं हम जेल से, तलवार से।
रहते हुए तन प्राण रण से मुंह न मोड़ेंगे कभी,
कर-शक्ति है जब तक न अपने शस्त्र छोड़ेंगे कभी।

परतन्त्र होकर स्वर्ग के भी वास की इच्छा नहीं,
स्वाधीनता होकर नकर में रहना भला उससे कहीं।

भजन

कोऊ न सुख सोया, करके प्रीति।
कोऊ न सुख सोया, अरे! करके प्रीति।
कोऊ न सुख सोया.....
सुन्दर कली सेमर की देखी, सुअना ने, मन मोहा
मोरी चोंच घुआ जब देखा, पटक-पटक सिर रोया
करके प्रीति, कोऊ न सुख सोया।
रामा! करके प्रीति, कोऊ न सुख सोया।

सुन्दर कली कमल की देखी, भंवरा ने, मन मोहा
सारी रैन सम्पुट में बीती, तड़प-तड़प जी खोया
करके प्रीति, कोऊ न सुख सोया।
भई! करके प्रीति, कोऊ ने सुख सोया।
सुन्दर छवि माता की देखी 'बिस्मिल' ने मन मोहा
सारी उमर जेल में बीती, फाँसी पा जी खोया
करके प्रीति, कोऊ न सुख सोया।
अरे! करके प्रीति कोऊ न सुख सोया।

प्रतिज्ञा

देश-हित पैदा हुए हैं देश पर मर जायेंगे
मरते-मरते देश को ज़िन्दा मगर कर जायेंगे
हमको पीसेगा फ़लक चक्की में अपनी कब तलक
ख़ाक बन कर आंख में उसकी बसर कर जायेंगे
फिर वही बाग़े-ख़िजां का वार्द-सर है दूर क्यों
पेश्वाए-फ़स्ते-गुल हैं खुद समर कर जायेंगे
ख़ाक में हमको मिलाने का तमाशा देखना
तुख़्मरेज़ी से नये पैदा शज़र कर जायेंगे
नौ-नौ आंसू जो रुलाते हैं हमें उनके लिये
अश्क के सैलाब से बरपा हशर कर जायेंगे
गर्दिशे-गिर्दाब में डूबे भी तो पर्वा; नहीं
बह्रे-हस्ती में नयी पैदा लहर कर जायेंगे
क्या कुचलते हैं समझकर वो हमें बर्गे़-हिना
अपने खूं से हाथ उनके तर-ब-तर कर जायंगे
नक़्शे-पा हैं क्यों मिटाता है हमें 'बिस्मिल' फ़लक
रहबरी का काम देंगे जो गुजर कर जायेंगे।

भारत जननि

भारत जननि! तेरी जय हो! विजय हो!!
भारत जननि! मेरी भारत जननि! तेरी जय हो! विजय हो!!
तू शुद्ध और बुद्ध श्रद्धा का आगार,
तेरा विजय-सूर्य माता उदय हो।

हों ज्ञान-सम्पन्न जीवन सुफल हो,
सन्तान तेरी अखिल प्रेममय हो।।
भारत जननि! तेरी जय हो! विजय हो!!
भारत जननि! मेरी भारत जननि! तेरी जय हो! विजय हो!!
आवें पुनः कृष्ण देखें दशा तेरी-
सरिता सरों में भी बहता प्रणय हो।
साबिर के संकल्प पूरण करें ईश,
विघ्न और बाधा सभी का प्रलय हो।।
भारत जननि! तेरी जय हो! विजय हो!!
भारत जननि! मेरी भारत जननि! तेरी जय हो! विजय हो!
गांधी रहें और तिलक फिर यहां आवें,
अरविंद, लाला, महेन्दर की जय हो।
मेरे लिए जेल हो स्वर्ग का द्वार,
बेड़ी की झनकार वीणा की लय हो।।
'बिस्मिल' कहें सारे हिन्दू-मुस्लमान
मिल करके गाओ, जननि! तेरी जय हो!
भारत जननि! तेरी जय हो! विजय हो!!
भारत जननि! मेरी भारत जननि! तेरी जय हो! विजय हो!!

ऐ मातृभूमि!

ऐ मातृभूमि! तेरी जय हो, सदा विजय हो।
प्रत्येक भक्त तेरा, सुख-शान्ति-कान्तिमय हो।।
अज्ञान की निशा में, दुख से भरी दशा में,
संसार के हृदय में, तेरी प्रभा उदय हो।
तेरा प्रकोप सारे जग का महाप्रलय हो।
तेरी प्रसन्नता ही आनन्द का विषय हो।।
वह भक्ति दे कि 'बिस्मिल' सुख में तुझे न भूले,
वह शक्ति दे कि दुख में कायर न यह हृदय हो।।

प्रार्थना

दुःख दूर कर हमारे, संसार के रचैया,
जल्दी से दे सहारा, मंझधार में है नैया।।
तुझ बिन कोई हमारा, रक्षक नहीं यहां पर,

ढूंढा जहान सारा, तुम-सा नहीं रखैया।।
दुनिया में खूब देखा, आंखें पसार करके,
साथी नहीं हमारा मां, बाप और भैया।।
सुख के सभी हैं साथी, दुनिया के मित्र सारे,
तेरा ही नाम प्यारा, दुख-दर्द से बचैया।।
दुनिया में फंस के हमको, हासिल हुआ न कुछ भी,
तेरे बिना हमारा, कोई नहीं सुनैया।।
चारों तरफ़ से हम पर, ग़म की घटा है छाई,
सुख का करो उजाला, हे प्रकाश के करैया।।
अच्छा बुरा है जैसा, राजी मैं 'राम' रहता,
चेरा है यह तुम्हारा, सुधि लेउ सुधि-लिवैया।।

स्वतंत्र-गान

अय अह्ले-हिन्द! कह दो सब इक ज़बान होकर,
हिन्दोस्तां रहेगा, हिन्दोस्तान होकर।
आपस में हम रहेंगे इक जिस्मो-जान होकर,
चमकेंगे आस्मां पर, क़ौमी-निशान होकर,
घबरायेंगे न हरगिज़ बिगड़े जो काम बनकर,
पर अब न हम रहेंगे उनके गुलाम बनकर।
अब नौजवानों तुम पर इज़्ज़त का ताज होगा।
भारत-निवासियों का जिस दिन स्वराज होगा।
दुनिया के लोग हम पर 'बिस्मिल' न अब हंसेंगे,
चालों में ग़ैर की हम मुत्लक़ न अब फंसेंगे।